विटगेन्स्टाइन के भाषा-सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण

(A Critical Examination of Wittgenstein's Theory of Language)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

●

प्रस्तुत कर्ता

उमाकान्त

●

पर्यवेक्षक

डा. डी. एन. द्विवेदी

रीडर, दर्शनशास्त्र विभाग
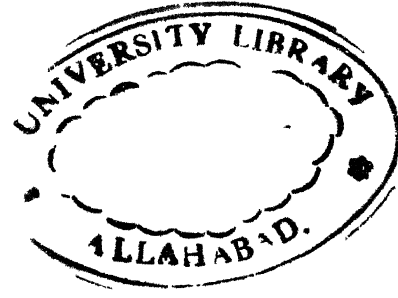
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सितम्बर १९८८

प्राक्कथन

विटगेंस्टाइन का भाषा-दर्शन समकालीन पाश्चात्य दर्शन में एक नव्य क्रान्ति है । उसकी प्रसिद्ध उक्ति है --" सम्पूर्ण दर्शन भाषा की मीमांसा है, न कि किसी सिद्धान्त, सत्य, ज्ञान आदि की गवेषणा । स्नातकोत्तर उत्तरार्द्ध कक्षा में विट-गेंस्टाइन के दर्शन को पढ़कर मैं उसके प्रभावशाली, सारगर्भित विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुआ और वह मुझे 20वीं शताब्दी के दार्शनिकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लगा । उसकी पुस्तकों ट्रैक्टेटसलाजिको फिलासाफिकस और फिलासाफिकल इन्वेस्टीगेशन्स को यद्यपि हम शीर्ष स्थान पर तो नहीं रख सकते फिर भी इस शताब्दी के अंग्रेजी भाषी जगत् की लगभग आधे दर्शन पुस्तकों के मध्य वे अत्यधिक प्रभावशाली है । ऐसा कहा जाता है कि विटगेंस्टाइन ने दर्शन जगत् में दो महत्वपूर्ण आन्दोलनों को उत्प्रेरित किया । पहला तार्किक प्रत्यक्षवाद के नाम से प्रचलित है और दूसरा भाषाई आन्दोलन के नाम से । विटगेंन्सटाइन का दर्शन समकालीन चिन्तन परम्परा में उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं के लिए अत्यधिक महत्व का है । पहले, उसकी प्रारम्भिक पुस्तक ट्रैक्टेटसलाजिको फिलासाफिकस और वियना सर्किल के कुछ सदस्यों के साथ विचार-विमर्श तथा दूसरे कैम्ब्रिज में उसके द्वारा दिये गये व्याख्यान और उसकी उन कृतियों की झलक , जिसको वह अपने जीवनकाल में नहीं प्रकाशित कर सका, बहुत से युवा दार्शनिकों को उत्प्रेरित एवं प्रभावित किया । इस विषय में सन्देह नहीं है कि उसके मस्तिष्क में सर्वथा नवीन विचार उपजे थे,जो कि उसके द्वारा स्वयं अनुभूत थे । विटगेंस्टाइन के दर्शन के विकास के दोनों चरण (पूर्ववर्ती और परवर्ती) दो भिन्न-भिन्न भाषा-विषयक दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करते हैं, जिनका सम्यक् विवेचन मैंने प्रस्तुत निबन्ध में करने का प्रयास किया है ।

जिन विद्वज्जन एवं सुधी सहयोगियों की सहायता से सम्प्रति यह कृति इस रूप में प्रस्तुत है, उनका उल्लेख करना मै अपना परम कर्तव्य समझता हूँ ।

सर्वप्रथम मैं इस शोध प्रबन्ध के पर्यवेक्षक तथा अपने परम श्रद्धेय गुरूवर्य डा0डी0 एन0 द्विवेदी, रीडर दर्शन शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, के प्रति अत्यधिक उपकृत हूँ जिनकी हार्दिक सत्प्रेरणा एवं अनवरत सक्रिय सहायता से ही यह कृति इस रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हो सका हूँ । इस कार्य में पूज्य गुरूदेव जी से जो सत्परामर्श, प्रोत्साहन तथा पितृस्नेह मिला, उसके लिए मैं सदैव नतमस्तक रहूँगा । शोध कार्य से सम्बन्धित बहुमूल्य निर्देशन के साथ-साथ शोध कार्य-प्रणयन-कालावधि में आने वाली अन्य समस्याओं तथा व्यवधानों के निराकरण में भी उन्होंने एक उत्तरदायित्वपूर्ण अभिभावक की भाँति पूर्ण सहयोग तथा सहायता प्रदान किया, जिसके लिए धन्यवाद प्रकट करना तो मेरी 'प्रगल्भता' ही होगी । मैं केवल विनीत हृदय से उनके पुनीत चरणारविन्दों में अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ ।

विभाग के समस्त श्रद्धेय गुरूजन मेरी चैतसिक श्रद्धा एवं विनीत आत्म निवेदन के अधिकारी हैं, जिन्होंनें वस्तुतः मुझे इस कार्य के योग्य बनाया ।

मैं परम श्रद्धेय ज्येष्ठ भ्राता तुल्य डा0 हरिशंकर उपाध्याय, प्रवक्ता, दर्शन शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूँ, जिन्होंनें मेरी विषम परिस्थितियों में मुझे प्रोत्साहित कर पूर्ण सहयोग प्रदान किया । अतः उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ ।

श्री एस0के0जैन, प्राचार्य, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंनें सदैव मुझे इस कार्य केलिए प्रोत्साहित किया । अपने अभिन्न मित्रों श्री दिलीप कुमार द्विवेदी, प्रवक्ता मध्यकालीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज एवं श्री नरेन्द्र बाजपेयी, प्रवक्ता राजनीति विज्ञान, इलाहाबाद डिग्री कालेज के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंनें समय-समय पर यथावश्यक रूप से सहयोग प्रदान किया है ।

शोध प्रबन्ध के प्रणयन में इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय से पर्याप्त सहायता मिली । अतः पुस्तकालय के समस्त कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ ।

अन्त में आभार स्वीकृत करने के सन्दर्भ में समवेतरूपेण उन समस्त जाने-अनजाने पौरस्त्य-पाश्चात्य मनीषियों एवं विद्वान लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी बहुमूल्य कृतियों का प्रत्यक्ष या परोक्ष साहाय्य प्रस्तुत प्रबन्ध के सृजन में लिया गया है ।

विटगैंस्टाइन का तार्किक दर्शन शास्त्र अति गम्भीर तथा क्लिष्ट है, साथ ही हिन्दी भाषा में इस पर कार्य भी नहीं हुआ है, पर इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से मैंने विटगैंस्टाइन के भाषा-दर्शन को मातृभाषा हिन्दी में प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास किया है, जो मेरे सामर्थ्यानुसार विवेचित है । मुझे पूर्ण आशा एवं विश्वास है कि विज्ज्न प्रमादवश हुई परिहार्य और टंकण सम्बन्धी अपरिहार्य त्रुटियों की ओर ध्यान न देंगे ।

उमाकान्त
उमाकान्त

संकेत-सूची - (Abbreviation)

ट्रैक्टे०	Tractaus Logico Philosophicus
PI	Philosophical Investigations
BB	Blue and Brown Books
AJF	Australasian Journal of Philosophy
JP	The Journal of Philosophy
M	Mind
PAS	Proceedings of the Aristotelian Society
PPR	Philosophy and Phenomenalogical Research
PR	The Philosophical Review
TLS	The Times Literary Supplement
PASS	Proc. Aristotelian Society Supplement
RM	The Review of Metaphysics
APQ	American Philosophical Quarterly

विषयानुक्रमणिका

आमुख

यदि किसी दार्शनिक की महानता के मूल्यांकन का मापदण्ड उसके समकालीन दार्शनिकों पर उसके प्रभाव से है तो इसमें संदेह नहीं कि विटगेंस्टाइन हमारे युग का एक महान दार्शनिक है । उसकी महानता इस बात में ही नहीं है कि उसने समकालीन दार्शनिकों को अत्यधिक प्रभावित किया, बल्कि इस बात में है कि दार्शनिक समस्याओं में उसकी निष्ठा अत्यन्त प्रगाढ़ और निष्कपट थी । उसे शैक्षिक (acedemic) दार्शनिक की कोटि में नहीं रखा जा सकता । वह व्यावसायिक (Professional) दार्शनिकों के प्रति उपेक्षाभाव भी रखता था । उसका दर्शन के प्रति इतना उत्कट लगाव था कि वह एक बार तो दार्शनिक प्रतिभा की समाप्ति की कल्पना मात्र से आत्महत्या तक की बात सोचने लगा था ।[1] यही कारण है कि विटगेंन्स्टाइन शानदार शैली (grand style) के रूप में प्रचलित दर्शन की ओर कभी भी उन्मुख नहीं हुआ । समस्याओं को नितान्त नये परिप्रेक्ष्य में देखने की उसमें अद्भुत प्रतिभा थी और वह उन सिद्धान्तों के प्रति भी सन्देह व्यक्त करता था, जिन्हें प्राय: दार्शनिक गण मानकर चलते थे । वह दर्शन के परम्परागत संप्रत्ययों से ऊब गया था और अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का भी खण्डन कर दिया था। उसने अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए Sachverhalt, Tatche, Sinn, आदि ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्दों का सृजन किया जो पारस्परिक अर्थों का बोध कराते हैं । उसके विचार बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । उसके विचारों का विरूपण (distortions) भी दर्शन की अमूल्य निधि है और वे दार्शनिक जिज्ञासा के समुन्नायक हैं ।

अब हमारे लिए विटगेंन्स्टाइन के भाषायी सिद्धान्तों का विवेचन करने के पूर्व उसके जीवन चरित तथा उसके पूर्ववर्त्ती और समकालीन जिन दार्शनिकों,

वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, अर्थशास्त्रियों, साहित्यकारों इत्यादि ने अपने जिन सिद्धान्तों §विचारों§ से न्यूनाधिक रूप में युवा विटगेंस्टाइन को प्रभावित किया : उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना अपरिहार्य हो जाता है क्योंकि उन्हें जाने बिना विटगेंन्स्टाइन को समझना दुष्कर है । लुडविग जोसेफ जोहॉन विटगेंन्स्टाइन का जन्म 26.अप्रैल, 1889 ई0 को वियना के एक समृद्ध यहूदी परिवार में हुआ था । उसके पिता कार्ल इन्जीनियर थे किन्तु उसके परिवार की अभिरूचि कला में विशेष रूप से थी । अपने पांच भाइयों और तीन बहनों के मध्य विटगेंन्स्टाइन सबसे छोटा था । 14 वर्ष की आयु तक उसकी शिक्षा घर पर हुई थी । उसके पश्चात तीन वर्ष तक उसने अपर आस्ट्रिया के Linz नामक स्थान के एक विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की । इस विद्यालय में जो विषय पढ़ाये जाते थे उनमें दर्शन भी था, जिसकी पाठ्य पुस्तक आस्ट्रियन दार्शनिक माइनांग के एक शिष्य द्वारा तैयार की गयी थी । इस दार्शनिक का हुसर्ल, बर्ट्रेन्ड रसेल और मूर से पत्र-व्यवहार चलता था और इसने शब्दों के अर्थ §Meaning§ के परिप्रेक्ष्य में विचार §thought§ और सत्ता §reality§ के बीच सम्बन्ध की खोज की । 1906 ई0 में विटगेंन्स्टाइन ने इस विद्यालय से माध्यमिक शिक्षा §Secondary Education§ समाप्त की । इस अवस्था में उसकी अभिरूचि यान्त्रिकी में जागृत हुईऔर उसने बर्लिन जाकर अभियान्त्रिकी का अध्ययन प्रारम्भ किया । वहाँ वह 1908 ई0 के बसन्त ऋतु पर्यन्त रहा । उसकी यह अभिरूचि जीवन पर्यन्त बनी रही । उसने दर्शन की अनेक समस्याओं को अपने अभियन्ता के तौर-तरीके से हल किया । जैसा कि पासमोर ने लिखा है — " दर्शन में उसे जो कुछ दल-दल प्रतीत हुआ उसे सुखाने के लिए वह अपने अभियन्ता के तौर-तरीके से दार्शनिक बना ।[2] बर्लिन छोड़ने के बाद वह मैनचेस्टर विश्वविद्यालय गया और वहाँ एक शोध छात्र के रूप में प्रवेश लिया ।

तकनीकी क्षेत्र में उसकी अभिरूचि वैमानिकीय समस्याओं में अधिक थी । उसने 1911 ई0 के पतझड़ तक वहाँ शोध कार्य किया । इन तीन वर्षों में उसका अनुसंधान कार्य वैमानिकी विज्ञान में था । पतंगबाजी के प्रयोगों से वह वायुयान के लिए एक जेट रियेक्शन प्रोपेलर § Jet reaction propeller § की संरचना की ओर मुड़ा, जो मुख्य रूप से एक गणितीय कार्य था । इस समय से विटगेंस्टाइन का झुकाव प्रथमतः " विशुद्ध गणित " की ओर तदनन्तर § "गणित के आधारों " § foundations of mathematics § की ओर हो गया जैसा कि फन राइट के निम्नलिखित कथन से हमें विदित होता है -- विटगेंस्टाइन ने गणित पर प्रथम पुस्तक के रूप में रसेल की " गणित के सिद्धान्त § Principles of mathematics § पढ़ा, जो 1903 ई0 में प्रकाशित हुई थी । यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस पुस्तक ने विटगेंन्स्टाइन के विकास को गम्भीर रूप से प्रभावित किया । संभवतः इस पुस्तक ने उसे फ्रेगे के ग्रन्थों के अध्ययन की ओर प्रेरित किया । नव्य तर्कशास्त्र § The new logic §, जिसके फ्रेगे और रसेल दो सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न प्रतिनिधि हैं; वह प्रवेशद्वार है जिसके द्वारा विटगेंन्स्टाइन दर्शन प्रासाद में प्रविष्ट हुआ[3]। यह ध्यातव्य है कि विटगेंन्स्टाइन की अभिरूचि इससे पहले ही दर्शन में जागृत हो गयी थी, जिसके फलस्वरूप उसने शोपनहावर के " Die Welt als Wille and Vorstellung ग्रन्थ का विशेष रूप से अध्ययन किया था । इसी समय वह अत्यधिक वैज्ञानिक और तार्किक दार्शनिकों के ग्रन्थों के सम्पर्क में आया । अत्यधिक आदर्शवादी और तात्त्विक § Idealistic and Metaphysical § तथा अत्यधिक तार्किक और भाववादी- इन दोनों ही विचारधाराओं ने युवा विटगेंन्स्टाइन को प्रभावित किया । किन्तु उसने इन दोनों क्षेत्रों में इस रूप में कार्य किया मानों वह दो व्यक्ति हो । किन्तु उसकी परवर्ती रचनाओं में इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय हो गया । फिर भी उस पर भाववादी विचारधारा का सदैव प्रभाव रहा,

क्योंकि उसने कभी भी सार्थक और विश्लेषणात्मक भाषा की परिधि का अतिक्रमण करने का प्रयत्न नहीं किया ।

इंग्लैण्ड में अध्ययन करते समय भी वह अनेक छुट्टियाँ यूरोप में बिताया और Gottlob Frege जैसे प्रमुख विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया, जो जेना में गणित के प्रोफेसर थे और इसकी दार्शनिक समस्याओं से विशेष रूप से जुड़े थे । इन्जीनियरिंग का अध्ययन समाप्त करने का संकल्प लेने के बाद वह सर्वप्रथम जर्मनी के नगर जेना गया और फ्रेगे से अपनी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया ;और वे फ्रेगे ही थे, जिन्होंने "गणित के दर्शन" ,"तर्कशास्त्र" में उसकी अभिरूचि जागृत की और उसे कैम्ब्रिज जाकर बट्रेण्ड रसेल के सानिध्य में अध्ययन करने की सलाह दी । वह उनकी सलाह माना और शीघ्र ही रसेल का अन्तरंग हो गया । उसने 1912 ई0 के पतझड़ काल में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश किया और 1913-14 तक वहाँ अध्ययन किया । विटगैन्सटाइन ने रसेल का व्याख्यान सुना और उनसे दीर्घ वार्ताएं किया । अतः यह स्वाभाविक था कि उसकी प्रारंभिक गवेषणाएं उन्हीं समस्याओं के क्षेत्र में थीं, जो फ्रेगे और रसेल को पहले से ही उद्वेलित कर रही थी । "Propositional function",'Variable," generality और Identity जैसे संप्रत्यय उसके चिन्तन के केन्द्रबिन्दु बने । उसने शीघ्र ही तथाकथित Truth functions के लिये एक नये प्रतीकवाद की रोचक खोज किया, जिसके फलस्वरूप पुनर्कथन (Tautology) जैसे तार्किक सत्य की खोज हुई, जो रसेल और फ्रेगे का संक्षिप्त विवेचन करता है और जिसका ज्ञान विटगैन्स्टाइन के ग्रन्थ ट्रैक्टेटस को समझने के लिए अपरिहार्य है । कुमारी एन्सकोम्ब काकथन है कि विटगैन्स्टाइन के ट्रैक्टेटस को समझने के लिए फ्रेगे का ज्ञान अनिवार्य है जिसके बिना निश्चय ही ट्रैक्टेटस का सही अर्थ नहीं समझा जा सकता । ट्रैक्टेटस में विटगैन्स्टाइन न केवल यह मानकर चलता है अपितु पूर्णरूप से आश्वस्त है कि आपने फ्रेगे का अध्ययन किया है इसलिए वह उन प्रश्नों में आपकी अभिरूचि नहीं जागृत करने का प्रयत्न करता, जिन्हें फ्रेगे ने विवेचित किया है [4] ।

ट्रैक्टेटस में फ्रेगे का नाम बार-बार आता है ।

समकालीन ब्रिटिश दार्शनिक चिन्तन जगत् में भाषाई दर्शन के दो सम्प्रदाय हैं । पहला, जिसके समर्थक बर्ट्रेण्ड रसेल और पूर्ववर्ती विटगेंन्स्टाइन हैं, आदर्श भाषा से सम्बन्धित है । रसेल का कहना है कि साधारण भाषा अस्पष्ट, अयथार्थ, भ्रामक और अनेकार्थक है और इसलिए यह दार्शनिक विवेचन के लिए उपयुक्त नहीं है । अतएव दर्शनशास्त्र को अन्य विज्ञानों की भाँति अपनी निजी भाषा की आवश्यकता है । दूसरा सम्प्रदाय, जिसके प्रमुख दार्शनिक परवर्ती विटगेंस्टाइन, जे०एल० आस्टिन और पी०एफ० स्ट्रॉसन हैं, साधारण भाषा से सम्बन्धित है । इनका दावा है कि साधारण भाषा केवल दैनिक वक्तृताओं के लिए ही उपयोगी नहीं है, बल्कि दार्शनिक विवेचन के लिए भी । यह उल्लेखनीय है कि इस विचारधारा की विस्तृति इंग्लैण्ड के बाहर नहीं थी ।

विटगेंस्टाइन के भाषागत विचारों की व्याख्या के पूर्व यह आवश्यक है कि उन समस्याओं के स्वरूप का विवेचन किया जाए, जो फ्रेगे, रसेल और अन्य दार्शनिकों से उसे प्राप्त हुई थीं तथा उनकी समस्याओं की निदानशैली का भी अवलोकन किया जाय जो उनके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में इंगित हैं । किन्तु विटगेंन्स्टाइन ने इन दार्शनिकों की समस्याओं और उनके निदानों को तब तक स्वीकार नहीं किया, जब तक कि इनमें कुछ अपना योगदान नहीं कर दिया । यद्यपि वह फ्रेगे, रसेल, शोपनहावर और काण्टसे अनेक बिन्दुओं पर सहमत है किन्तु उसने अपनी प्रमुख समस्याओं का जिस रूप में निरूपण किया है, उसकी ओर इन दार्शनिकों का ध्यान तक नहीं गया है । एक महत्त्वपूर्ण समस्या, जिसका फ्रेगे ने विवेचन किया है वह है "औपचारिक भाषा और व्यक्तिगतनाम " (Formal language & proper names) । फ्रेगे ने अपने बौद्धिक कृतित्व में जिन प्रमुख लक्ष्यों को सम्मुख रखाथा उनमें से एक था "गणितीय तर्कवाक्यों और निगमनों " की अभिव्यक्ति हेतु एक पर्याप्त और प्रांजल प्रतीकवाद की स्थापना करना [5] । फ्रेगे साधारण भाषा से असन्तुष्ट थे और इसके

प्रति कई स्थानों पर उन्होंने अपना विद्वेष व्यक्त किया है । अपने लेख "Function" में उन्होंने कुछ भ्रामक तर्कवाक्यों का विवेचन किया है ।[6] साधारण भाषा में "संप्रत्यय अभिव्यक्तियों" (Concept Expressions) का प्रयोग "वस्तु अभिव्यक्तियों" (Object Expressions) के रूप में होता है । संप्रत्यय विधेयात्मक (Predicative) है तथा किसी वस्तु की संज्ञा है । किसी व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग व्याकरणात्मक विधेय के रूप में नितान्त असंभव है किन्तु साधारणतः किसी भी अभिकथन का विषय किसी संप्रत्यय को नामित करना होता है और व्यक्तिवाचक संज्ञायें व्याकरणात्मक विधेयों के रूप में कार्य करती हैं । फ्रेगे के अनुसार इस प्रकार के अभिकथन भ्रामक हैं और एक पूर्णभाषा-Begriffsschrift में इनका प्रयोग निषिद्ध होना चाहिए । विटगेंन्स्टाइन के भी मन में साधारण भाषा के प्रति विद्वेष है । उसके अनुसार भी साधारण भाषा तार्किक आकार को तिरोहित करती है और साधारण भाषा की भूलों (Errors) से बचने के लिए एक प्रतीकवाद की आवश्यकता है ।[7] (किन्तु बाद में मैं इस बात का प्रदर्शन करूँगा कि इन दार्शनिकों के दृष्टिकोणों में मौलिक भेद है)। फ्रेगे की यह भ्रान्त धारणा थी कि पूर्णभाषा (Perfect language) विषयक उनकी अवधारणा ही तार्किक दृष्टि से एक मात्र सुसम्बद्ध अवधारणा है । अन्य विकल्प भी हैं जैसा कि विटगेंन्स्टाइन इंगित करता है--"प्रतीकीकरण की कोई विशेष विधि अमहत्त्वपूर्ण हो सकती है, किन्तु यह महत्त्वपूर्ण है कि यह प्रतीकीकरण की एक संभवविधि है और फिर दर्शनशास्त्र में तो यह मान्य ही है ; अकेली वस्तु बार-बार अमहत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है, किन्तु प्रत्येक अकेली वस्तु की संभावना जगत् के स्वभाव के सम्बन्ध में कुछ सूचित करती है ।[8] फ्रेगे और रसेल दोनों के

ही अनुसार व्याकरणात्मक समानता भ्रामक है, विटगेंन्स्टाइन इस मत से सहमत था ।

फ्रेगे ने व्यक्तिवाचक नाम ⟮ Proper name ⟯ का प्रयोग अत्यधिक व्यापक अर्थ में किया है जो विटगेंन्स्टाइन को स्वीकार्य नहीं हो सकता । इसका विवेचन मैं आगे चलकर करूँगा । उन्होंने इसका प्रयोग "संश्लिष्ट निर्देशों " ⟮Complex designations ⟯ के लिए किया है, जिन्हें निश्चित वर्णन ⟮Definite discriptions ⟯ भी कहा जाता है ।

फ्रेगे का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु अर्थ ⟮Sense ⟯ और सन्दर्भ ⟮Reference ⟯ का अन्तर है । दो अभिव्यक्तियाँ संदर्भ ⟮Reference ⟯ की दृष्टि से एकरूपात्मक ⟮ Identical ⟯ हो सकती हैं क्योंकि वे एक ही वस्तु की बोधक हैं । फिर भी वे "अर्थ" की दृष्टि से भिन्न हो सकती हैं । "2+2" तथा "4" ये अभिव्यक्तियाँ संदर्भ की दृष्टि से एकरूपात्मक हैं क्योंकि इसके अभाव में वे एक ही वस्तु का संकेत नहीं कर सकतीं । फिर भी वे अर्थ कीदृष्टि से भिन्न हैं क्योंकि ऐसा न होने पर वे उस पद के अर्थ का बोध नहीं करा सकतीं अथवा उस अर्थ की सूचना नहीं दे सकतीं । यही बात " भोर का तारा " ⟮ प्रातः कालीन नक्षत्र - Morning star ⟯ और "साँझ का तारा ⟮ सान्ध्यकालीन नक्षत्र- Evening star ⟯ जैसी अभिव्यक्तियों पर भी लागू होती है । वे एक ही नक्षत्र शुक्र ⟮ Venus ⟯ की ओर संकेत करते हैं किन्तु उनके अर्थ भिन्न हैं । इससे भी अधिक दृष्टव्य यह तथ्य है कि उन्होंने इस अन्तर का प्रयोग वाक्यों के लिए भी किया है । व्यक्तिवाचक नामों की भाँति वाक्यों में भी अर्थ ⟮ Sense Sinn ⟯ और संदर्भ ⟮ Reference - Bedeutung ⟯ दोनों ही पाये जाते हैं । फ्रेगे के अनुसार किसी वाक्य के विचार ⟮ Thought ⟯ से उसके अर्थ ⟮ Sense ⟯ की अभिव्यक्ति होती है और उसके सत्यता मूल्य ⟮ Truth value ⟯ से उसके सन्दर्भ की अभिव्यक्ति होती है । इस प्रकार किसी वाक्य का सन्दर्भ या तो सत्य ⟮ truth ⟯ है या मिथ्या ⟮ false ⟯ । अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि

कोई भी घोषणात्मक वाक्य (Declarative Sentence) जो अपने शब्दों के सन्दर्भ से सम्बद्ध है, व्यक्तिवाचक नाम समझा जाए और यदि उसमें कोई सन्दर्भ निहित है तो वह (सन्दर्भ) या तो सत्य होगा यामिथ्या ।[9]

विटगैंस्टाइन फ्रेगे के अर्थ (Sense – Sinn) और सन्दर्भ(Reference– – Bedeutung) के भेद को स्वीकार करता है किन्तु वह फ्रेगे के इस मत से सहमत नहीं है कि वाक्य व्यक्तिवाचक नाम हो सकता है औरअभिव्यक्ति में अर्थ और सन्दर्भ दोनों ही रहते हैं । विटगैन्स्टाइन के अनुसार वाक्य व्यक्ति वाचक नाम नहीं है औरकेवल व्यक्तिवाचक नाम में ही सन्दर्भ निहित होता है । इसके विपरीत वाक्य में मात्र "अर्थ " होता है । न तो व्यक्तिवाचक नाम में अर्थ होता है और न वाक्य में सन्दर्भ ।

उपर्युक्त सिद्धान्त का तार्किक निष्कर्ष इस समस्या के रूप में प्रकट होता है कि अर्थ और सत्य में क्या सम्बन्ध है । फ्रेगे का कथन है कि कोई भी अभि-व्यक्ति (Expression) अर्थयुक्त हो सकती है भले ही इससे किसी सन्दर्भ (सत्यता मूल्य) का बोध न हो । पी०एफ० स्ट्रॉसन और उनके अनुयायियों ने इन दिनों इस सिद्धान्त का समर्थन किया है किन्तु विटगैन्स्टाइन और रसेल इस मत को नहीं मानते । उनके अनुसार अर्थ (Sense) सदैव सत्यता मूल्य से सम्बद्ध है । एक सार्थक अभिव्यक्ति या तो सत्य होगी या मिथ्या ।

फ्रेगे का एक अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु है फलन (function) और युक्ति (Arguments) के भेद का सिद्धान्त । उनके अनुसार फलन असंपृक्त है । यह .. किसी भी वस्तु की ओर संकेत नहीं करता । फिर भी किसी वाक्य के परिप्रेक्ष्य में यह अर्थयुक्त (सार्थक) होता है और इस प्रकारवे एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर पहुँचते हैं कि किसी भी शब्द का विविक्त (Isolation) रूप में कोई भी अर्थ नहीं होता । किसी तर्कवाक्य के परिप्रेक्ष्य में ही यह अर्थ का द्योतक होता

है ।[10] फ्रेगे के अनुसार सर्वोत्कृष्ट प्रकार के प्रतीकवाद से भी सूचनात्मक ढंग से इस बात का बोध नहीं हो सकता कि फलन (Function) किसे कहते हैं ? जब तक कि कोई व्यक्ति प्रतीकवाद का अध्ययन न करे तब तक उसे प्रतीकवाद की कार्यशैली का बोध नहीं हो सकता । फ्रेगे की इन्हीं अवधारणाओं से विटगेन्स्टाइन अपने ग्रन्थ ट्रैक्टेटस में इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि " संप्रत्यय फलन " (Concept function) औपचारिक संप्रत्यय (Formal Concept) हैं जिनकी अभिव्यक्ति मात्र प्रतीकीकरण विधि द्वारा ही हो सकती है न कि व्यक्तिवाचक विधेय द्वारा । इसी रूप में यह प्रत्यय फ्रेगे के प्रतीकवाद में विद्यमान है (और यह सिद्धान्त विटगेन्स्टाइन के निम्नलिखित सिद्धान्त से स्पष्ट रूप से सम्बद्ध है कि " भाषा द्वारा जिस भाव का बोध होता है " उसे भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता[11]) ।

फ्रेगे के अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु हैं " भाव मूल्य " (Notion Value) और "परिमाणन " (Quantification) के सिद्धान्त । फ्रेगे के अनुसार किसी तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य परिस्थिति विशेष के अनुसार उसका सत्य या मिथ्या होना है । इसी प्रकार परिमाणन के आधुनिक संप्रत्यय का श्रेय भी फ्रेगे को ही है । परिमाणन द्वारा सब (all) और कुछ (some) की बोधक अभिव्यक्तियों को प्रतीकात्मक रूपों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं -- "For all x, x is heavy " और " For some x;x is heavy " । उपर्युक्त क्रमशः सभी वस्तुएं भारी हैं " और " कुछ वस्तुएं भारी हैं " को व्यक्त करने के नये निरूपण (नये ढंग) हैं । यह प्रणाली बहुत ही अधिक दार्शनिक महत्व की सिद्ध

हुई है और इसकी सहायता से अनेक अपरिहार्य अस्पष्टताएं दूर हुई हैं । कुमारी एन्सकोम्ब के अनुसार रसेल और फ्रेगे द्वारा तर्कशास्त्र के इस अंश के विकास के अभाव में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि विटगैंन्स्टाइन अपने ग्रन्थ ट्रैक्टेटस की रचना में समर्थ होता ।[12]

विटगैंन्स्टाइन के मित्र और आचार्य बर्ट्रेण्ड रसेल दूसरे दार्शनिक हैं, जिन्होंने अपने व्याख्यानों, रचनाओं और विवेचनों द्वारा विटगैंन्स्टाइन को भाषा और तर्कशास्त्र के अछूते (अस्पृष्ट) क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए सामर्थ्य प्रदान किया । विटगैंन्स्टाइन उत्सुकतापूर्वक रसेल के व्याख्यानों को सुनता था और उनसे लम्बी वार्ताएं करता था । सर्वप्रथम रसेल ने यह अनुभव किया कि किसी तर्कवाक्य की व्याकरणात्मक संरचना उसकी तार्किक संरचना नहीं है और यह भ्रामक हो सकती है । रसेल का उपर्युक्त सिद्धान्त विश्लेषी दर्शन के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । रसेल की इस अनुभूति के लिए विटगैंन्स्टाइन उनकी प्रशंसा करता है और कहता है कि— यह रसेल की कुशलता है कि यह स्पष्ट हुआ कि यह आवश्यक नहीं कि वाक्य का प्रकट तार्किक रूप ही उसका वास्तविक तार्किक स्वरूप हो [13]।

विटगैंन्स्टाइन के प्रथम प्रकाशित और प्रसिद्ध ग्रन्थ "Tractatus Logico Philosophicus" के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि रसेल ने उसके विचारों को कितनी दृढ़ता के साथ प्रभावित किया था । किन्तु रसेल को शीघ्र ही यह बोध हो गया कि वह एक साधारण छात्र नहीं है और वे उसे छात्र के स्थान पर मित्र और सहयोगी समझने लगे । उसने अपना प्रथम ग्रन्थ ट्रैक्टेटस अगस्त 1918 ई० में लिखा, जब वह वियना में सैनिक अवकाश पर था । 1921 ई० में यह मूल

जर्मन भाषा में " Logisch Philosophische Abhandlung के शीर्षक से प्रकाशित हुआ । दूसरे वर्ष यह जी०ई० मूर के सुझाव से जर्मन-अंग्रेजी समानान्तर मूल पाठ के साथ आकर्षक लातीनी शीर्षक " Tractatus Logico Philosophicus " " के नाम से प्रकाशित हुआ । ट्रैक्टेटस को सत्यता-फलन §Truth functions § तथा इस सिद्धान्त का कि भाषा सत्ता का एक चित्र है " का समन्वय कहा जा सकता है । इस समन्वय से ट्रैक्टेटस के एक तृतीय प्रमुख अंश का प्रादुर्भाव हुआ कि जिस विचार की शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उसका मात्र चित्र निरूपण संभव है ।

ट्रैक्टेटस में विटगेंन्सटाइन के विचार विशेष आकर्षण के हैं । इसकी शैली अन्य दार्शनिक रचनाओं से भिन्न है । ट्रैक्टेटस को हृदयङ्गम करने में जिस दुरूहता की अनुभूति होती है वह उसकी अभिव्यक्तीकरण की शैली से कहीं अधिक गंभीर है । उन्हें कई रूपों में गलत ढंग से समझा गयाहै । यहाँ तक कि विटगेंन्स-टाइन स्वतः दावा करता है कि फ्रेगे , रसेल और मूर तक भी उसे पूर्णरूपेण समझने में असफल रहे । फिरभी उसके इस ग्रन्थ का दार्शनिक चिन्तन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा । विशेष कर उसके भाषा और विचार के भाववादी संप्रत्यय §अवधारणा § ने उन दार्शनिकों और भौतिक वैज्ञानिकों के संगठन को प्रभावित किया , जो "वियना सर्किल " के नाम से विख्यात है । इस संगठन ने Moritz Schlick के नेतृत्व में एक ऐसी तार्किक भाषा की § निर्माण की § योजना बनाया, जो सभी **विज्ञानों को** संपृक्त कर सके । अपने सेवाकाल में विटगेंन्सटाइन अपने विचारों को टिप्पड़ी पुस्तिकाओं §Note books § में संक्षिप्त रूप में लिख लिया करता था । उसके विषय में यह कहा जाता है कि वह समस्त दार्शनिक उद्घोष-णाओं § Pronouncements § को समान रूप से औचित्यपूर्ण मानता था । ट्रैक्टेटस में उसका प्रत्येक विचार संख्या पद्धति द्वारा एक -दूसरे से सम्बद्ध है । उसके अनुसार "ट्रैक्टेटस" मुख्यतया सभी वैध विचारों की औपचारिक पूर्वापेक्षाओं या

पूर्वमान्यताओं का एक दार्शनिक विवेचन है । इसमें उसने यह प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार परम्परागत दर्शन और परम्परागत समाधान भाषा के दुरूपयोग और प्रतीकवाद के सिद्धान्तों के अज्ञान के कारण उत्पन्न हुए हैं । भाषा से सम्बन्धित अनेक समस्याएं हैं किन्तु वह फ्रेगे, रसेल और व्हाइट हेड के उस नवीन गणितात्मक तर्कशास्त्र की ओर आकृष्ट हुआ जो कम्प्यूटरों की नूतन साइबरनेटिक विधियों (Cybernetic devices) द्वारा विश्व को परिवर्तित करने का आश्वासन प्रदान करता है । उसके अनुसार नूतन गणितात्मक तर्कशास्त्र को विश्व में लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि सरल वस्तुएं और उनके समुदाय (Configurations) विश्व के मूल घटक (Constituents) हों । ट्रैक्टेटस में विटगैन्स्टाइन उपर्युक्त दार्शनिकों के सिद्धान्तों पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहता है कि विश्व को वस्तुओं के समुदाय के रूप में वर्णित करने में फ्रेगे और रसेल के संप्रत्ययात्मक विचार (Notions) सर्वोत्तम हैं किन्तु यह अपने स्तर (Status के विषय में कुछ भी कहने में असमर्थ है । ट्रैक्टेटस के विषय में Rudolf Metz ने लिखा है कि साधारण पाठकों के लिए यह सप्त मुद्रिकाओं (Seven seals) द्वारा आवृत (Sealed) है जिसका रहस्य मात्र सर्वश्रेष्ठ गोपनीय भक्तों को ही बताया जा सकता है और हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह जटिल, गणितात्मक और तार्किक विचार तथा दुरूह रहस्यवाद की एक विचित्र सम्मिश्रण (Peculiar combination) है ।

विटगैन्स्टाइन मुख्य रूप से इस प्रश्न से जुड़ा है कि दो तथ्यों के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जाए कि एक तथ्य दूसरे तथ्य के लिए प्रतीक बन सके । उसके ट्रैक्टेटस का सम्पूर्ण सारांश निम्नलिखित पंक्तियों में समाहित है — " जो कुछ भी कहा जाए, सुस्पष्ट रूप से कहा जाए और यदि कोई (व्यक्ति) किसी तथ्य के विषय में सुस्पष्ट रूप से कहने में असमर्थ है तो उसे वहाँ चुप रहना चाहिए । " प्लेटो ने भी थीटिटस (Theaetetus) में ऐसा ही विचार व्यक्त किया है । ट्रैक्टेटस के अनुसार भाषा में वह सब कुछ

निहित है जो किसी भी प्रतीकवाद के सार्थक ॥ Significant ॥ होने के लिए आवश्यक है । ट्रैक्टेटस ने यह भी प्रतिपादित किया है कि भाषा के शब्द विन्यास मात्र में ज्ञेय ॥ वस्तु ॥ की परि-समाप्ति नहीं हो जाती ।

विटगैन्स्टाइन के कुछ विचार Heinrich, Hertz से भी प्रभावित हैं । उसने Hertz के नाम का उल्लेख ट्रैक्टेटस में दो स्थानों 4.04 और 6.361 पर किया है ।

शायद विटगेन्स्टाइन को काण्ट का अपरोक्ष रूप से कुछ भी ज्ञान नहीं था । फ्नराइट के अनुसार -- स्पिनोजा, ह्यूम और काण्ट से विटगेन्स्टाइन को यदा-कदा ॥ Occasional ॥ ही ज्ञान की झलकें प्राप्त हुईं ।[14] शोपनहावर के ग्रन्थ "जगत् संकल्प शक्ति और विचार के रूप में ॥ The world as will and idea ॥ तथा हर्ट्ज के ग्रन्थ " यान्त्रिकी के सिद्धान्त " ॥ The principles of mechanics ॥ द्वारा उसे काण्ट के मूलभूत सिद्धान्तों का ज्ञान अवश्यमेव रहा होगा । किन्तु जैसा कि स्टेनियस का कथन है --" न्यूनाधिक रूप में सुस्पष्ट ढंग से प्रतिष्ठित काण्टीय दर्शन ॥ Kantianism ॥ से प्रभावित होने के लिए यह आवश्यक नहीं कि कोई व्यक्ति काण्ट के ग्रन्थों का अध्ययन करें ; यह जर्मन भाषी जगत् के बौद्धिक वातावरण में आत्मसात् हो गया था"।[15]

पुनर्कथनों के सिद्धान्त द्वारा किस प्रकार शुद्ध गणित संभव है, काण्ट के प्रभाव को प्रदर्शित करता है । इसी प्रकार काण्ट का यह सिद्धान्त कि दक्षिण और वामहस्त एक साथ नहीं बैठ सकते, उसकी योजना में समाहित है ।[16]

ट्रैक्टेटस में अनेक स्थानों पर ऐसी अभिव्यक्तियाँ देखी जा सकती हैं जो काण्ट की अभिव्यक्तियों से सादृश्य रखती हैं । उदाहरण के लिए विटगैन्स्टाइन का यह कथन —— " हमें उसी का प्रत्यक्ष होता है जिसकी हम संरचना करते हैं ।[17]

"तर्कशास्त्र इन्द्रियातीत है " ।[18] तर्कशास्त्र प्रत्येक अनुभव के परे है ।[19] तथा सादृश्य मात्र शाब्दिक (Verbal) से कहीं अधिक व्यापक है ।

विटगैन्स्टाइन की भाषा मीमांसा (Critique of language) को इन्द्रियातीत भाषावाद (Transcendental lingualism) और भाषाई प्रत्ययवाद (Linguistic Idealism) विशेषणों से विभूषित किया गया है ।[20]

Geach ने इसे शुद्ध भाषा मीमांसा (Critique of pure language) की संज्ञा प्रदान की है ।[21] जो दार्शनिक उपर्युक्त ढंग से विरूपण कर रहे हैं वे काण्ट और विटगैंस्टाइन के निकायों की मूलभूत समानता से भली भाँति परिचित हैं । इसी प्रकार विटगैन्स्टाइन काण्ट की भाँति मनोविज्ञान के विरूद्ध है जो उसके अनुसार एक अनुभव मूलक विज्ञान है । किन्तु जहाँ काण्ट ने ज्ञान मीमांसा पर बल दिया है वहाँ विटगैन्स्टाइन ने " मनोविज्ञान का दर्शन " (Philosophy of Psychology) कहकर उसका भी परित्याग कर दिया ।[22] विटगैन्स्टाइन के अनुसार "विचार एक सार्थकतर्कवाक्य है" [23] और भाषा इन्हीं तर्कवाक्यों का एक समग्र योग (Totality) है [24]। अतः उसके अनुसार आवश्यकता इस बात की है कि भाषा का विश्लेषण किया जाए न कि समझ या बुद्धि का , जैसा काण्ट

ने किया था । विटगैन्स्टाइन ने समझ या बुद्धि के स्थान पर भाषा को प्रतिष्ठित किया और इस परिवर्तन के फलस्वरूप दर्शन बुद्धि मीमांसा (Critique of Reason) के स्थान पर भाषा मीमांसा (Critique of language) बन गया ।[25]

मैं यह नहीं समझता कि उसने अपने दो पूर्ववर्ती तर्कशास्त्रियों अरस्तू और लाइबनित्ज का आस्वादन किया था किन्तु, यह महत्वपूर्ण है कि उसने प्लेटो के संवादों का अध्ययन किया था और उनसे आनन्दानुभूति की थी । उसका ध्यान प्लेटो की साहित्यिक और दार्शनिक विधि दोनों में ही विधमान स्वानुकूल विशेषताओं की ओर अवश्य गया होगा साथ ही उस प्रकृति (स्वभाव) की ओर, जो उन विचारों के प्रेरक थे ।

विटगैन्स्टाइन दार्शनिकों की अपेक्षा उन व्यक्तियों से कहीं अधिक प्रभावित हुआ, जो दर्शन, धर्म और कविता के सीमा प्रदेशों में कार्य किये थे । इनमें सन्त आगस्टाइन, किर्केगार्ड, Dostaievsky और टालस्टाय के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । सन्त आगस्टाइन के ग्रन्थ " पाप स्वीकृति " (Confessions) के दार्शनिक भागों और विटगैन्स्टाइन की दार्शनिक चिन्तनशैली में महत्वपूर्ण समानता देखने को मिलती है ।

ट्रैक्टेटस की भूमिका के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि विटगैन्स्टाइन इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था कि उसने दर्शन की समस्याओं का पूर्ण रूप से समाधान कर दिया है, इसलिए वह दर्शन से विरत हो गया । किन्तु Waismann के साथ 1928 ई० की वसन्त में डच गणितज्ञ L.E.J.Brouwer का व्याख्यान सुनने के बाद दर्शन में उसकी अभिरूचि पुन: जागृत हो गयी । Brouwer के " गणित के आधार " सम्बन्धी सम्प्रत्यय ने तर्कशास्त्र के क्षेत्र में भी विटगैन्स्टाइन पर रोमांचिकारी प्रभाव डाला, जिसकेफलस्वरूप 1929 ई० के प्रारम्भ में उसे कैम्ब्रिज आने की प्रेरणा मिली, जहाँ वह गणितज्ञ एफ०पी० रैमजे के सम्पर्क में आया और उनसे अनेक प्रकरणों

पर विचार-विमर्श किया । उसने वियना में अनेक अवकाश बिताया तथा **Waismann** और **Schlick** से वार्ताएं कीं । उसी समय वह " **Philosophische Bemer-Kungen** " की रचना कर रहा था । इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि 1930 ई0 में ही वह मूर को दे चुका था, किन्तु इसका प्रकाशन 1964 ई0 में उसकी मृत्यु के पश्चात् हो सका । इस प्रकार पुनः उसने दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ किया । 1930 ई0 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में फेलो बना । 1939 ई0 में प्रोफेसर मूर के अवकाश ग्रहण करने पर वह उनका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ । 1933 ई0 में नीले (**Blue**) और भूरे (**Brown**) जिल्दों में विन्यस्त व्याख्यान टिप्पणियों के दो संग्रहों के माध्यम से उसने अपने नूतन विचारों का प्रचार प्रारम्भ किया और उनका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । उसकी मृत्यु के बाद वे " **Blue and Brown Books** " के रूप में प्रकाशित हुए । यहाँ वह साधारण भाषा के अध्ययन की ओर उन्मुख हुआ और मात्र तार्किक भाषा को ही आदर्श मानने के स्थान पर उसने भाषा के अनेक प्रयोग भेदों पर प्रकाश डाला ।

जीवन के अन्तिम दिनों में वह कैंसर रोग से ग्रस्त हो गया, फिर भी उसने अपने नूतन दर्शन का अनुसंधान जारी रखा । 29 अप्रैल 1951 ई0 को कैम्ब्रिज में उसका देहावसान हो गया । 1936 ई0 से 1951 ई0 तक का उसका दार्शनिक चिन्तन दो परवर्ती प्रकाशनों में लिपिबद्ध है जो बहुत से स्थानों पर एक-दूसरे की पुनरावृत्ति हैं। इनमें से प्रथम " **Philosophical Investigations**" के शीर्षक से 1953 ई0 में प्रकाशित हुआ जो मुख्य रूप से साधारण भाषा के अध्ययन से सम्बद्ध है और द्वितीय "**Remarks on the foundations of Mathematics** " शीर्षक से प्रकाशित है । यह मुख्यतया कृत्रिम भाषाओं (तर्कशास्त्र, गणित) के अध्ययन से सम्बद्ध है । विटगेंन्स्टाइन के प्रारम्भिक ग्रन्थ का जो महत्व तार्किक भाववाद (**Logical positivism**) के लिए है वही महत्व उसके परवर्ती ग्रन्थों का उस विचार धारा के लिए है जो भाषाई विश्लेषण (**Linguistic Analysis**) या विश्लेषणात्मक दर्शन (**Analytical Philosophy**) के नाम से विख्यात है । भाषा का तार्किक अनुसंधान कुछ कम महत्व का नहीं है किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य

भाषा के उन विभिन्न प्रयोगों की खोज करनी है जो दैनिक जीवन में मिलते हैं । अतः यह स्वाभाविक है कि किसी व्यक्ति का ध्यान तार्किक संरचनाओं के साथ ही मानव जीवन के प्रारूपों ﴾Patterns of human life ﴿ पर विशेष रूप से जाए । इस प्रकार विटगेन्स्टाइन का दृष्टिकोण सुस्पष्ट और शाश्वत तार्किक नियमों के स्थान पर वास्तविक जीवन के विविध और ऐतिहासिक अभिव्यक्तियों की ओर प्रवृत्त हुआ । यहाँ यह देखना महत्वपूर्ण है कि अब भाषा मात्र वर्णन का साधन नहीं मानी जाती अपितु क्रियाशीलता ﴾Action ﴿ के साधन के रूप में उभर कर आती है और वे प्रश्न जो मूलतः निरर्थक माने जाते थे ; भाषागत विश्लेषण में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन गए हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये प्रश्न परम्परागत दर्शन में उठाये गये प्रश्नों से बिल्कुल ही विच्छिन्न हैं । विश्लेषणात्मक दर्शन, जिसके आस्टिन , राइल और विजडम प्रतिनिधि दार्शनिक माने जाते हैं ; अब भी विकास की प्रक्रिया में है और विटगेंन्स्टाइन के मरणोत्तर प्रकाशित ग्रन्थों से इसके विकास में अभूतपूर्व सहायता मिली ।

युवा विटगेंन्स्टाइन ने फ्रेगे और रसेल से बहुत कुछ सीखा था । उसकी समस्यायें आंशिक रूप से फ्रेगे और रसेल की भी समस्याएं थीं । किन्तु प्रौढ़﴾परवर्ती﴿ विटगेन्स्टाइन का दर्शन के इतिहास में कोई भी पूर्वज नहीं । उसके ग्रन्थों से एक नयी क्रान्तिकारी विचारधारा का सूत्रपात होता है जो दर्शन की पूर्ववर्ती विचार धाराओं से सर्वथा भिन्न है । किन्तु उसकी इन समस्याओं का उद्गम अधिकांश रूप में ट्रैक्टेटस ही है । शायद यही कारण है कि विटगेंन्स्टाइन अपने नव्य दर्शन﴾परवर्ती विचारों ﴿ और युवाकालीन ﴾ पूर्ववर्ती विचारों ﴿ का युगपद मुद्रण देखना चाहता था ।

कभी-कभी दार्शनिकों की यह धारणा है कि प्रौढ़ विटगेंन्स्टाइन की विचारधारा मूर से प्रभावित है किन्तु यह शायद ही सत्य हो । विटगेंन्स्टाइन और मूर की चिन्तन प्रणालियां एक-दूसरे से पूर्ण रूप से भिन्न हैं । यद्यपि विटगेंन्स्टाइन की मैत्री, मूर से जीवन पर्यन्त रही किन्तु उनके दर्शन का किंचित भी प्रभाव विटगेंस्टाइन के दर्शन पर परिलक्षित नहीं होता । वह मूर की जिन बातों से प्रभावित था, वे

थीं उनकी बौद्धिक जीवन्त शक्ति, सत्य के प्रति निष्ठा तथा अभिमान शून्यता ।

वस्तुत: विटगैंन्स्टाइन की परवर्त्ती विचारधारा के उद्गम् में जिस तथ्य ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह था उसके मित्रों Ramsey और Piero Sraffa द्वारा की गयी उसके युवाकालीन विचारों की समीक्षा । Ramsey की 1930 ई0 में असामयिक मृत्यु से साम्प्रतिक विचार जगत् को गंभीर क्षति हुई । Piero Sraffa एक इतालवी अर्थशास्त्री थे, जो विटगैंन्स्टाइन के कैम्ब्रिज लौटने के थोड़े ही दिन पहले वहाँ आये थे । Sraffa की तीखी और सशक्त समीक्षा ने विट-गैंन्स्टाइन को अपने पूर्ववर्त्ती विचारों का परित्याग करने के लिए बाध्य किया और वह एक नये चिन्तन पथ पर अग्रसरित हुआ । विटगैंन्स्टाइन स्वयं कहता है कि Sraffa से विचार-विमर्श करने के अनन्तर उसे ऐसा लगा मानों वह एक ऐसे वृक्ष के समान है जिसकी सभी टहनियां कट गयी हों किन्तु इस वृक्ष में हरियाली (शक्ति) स्वत: इसमें ही अन्तर्निहित शक्ति से आ सकती है । परवर्ती विटगैंन्स्टाइन को किसी भी दार्शनिक से कोई भी प्रेरणा नहीं मिली थी जब कि युवा विटगैंन्स्टाइन को फ्रेगे और रसेल से प्राप्त हुई थी ।

विटगैंन्स्टाइन के प्रारम्भिक ग्रन्थ ने तार्किक भाववाद को प्रभावित किया और उसका परवर्ती ग्रन्थ भाषाई दर्शन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है । तार्किक अनुसंधानों का लक्ष्य भाषा के विविध प्रयोगों की खोज करनी है । भाषा विश्लेषण में भाषा मात्र वर्णन का साधन नहीं है अपितु क्रिया (Action) का साधन भी समझी जाती है । उसके परवर्त्ती ग्रन्थ में भाषा अधिक लोचदार (Elastic) और व्यापक है । फिर भी वह यहाँ इस सीमा तक भाववादी बना रहा कि उसने तत्वदर्शन की भ्रान्तियाँ (Errors) से अपने को दूर रखा और मात्र वहीं तक अपने को सीमित रखा जो भाषा और विचार द्वारा ज्ञेय है । उसने अपने ग्रन्थ "Philosophical Investigations" में स्वयं लिखा है कि उसने इस ग्रन्थ में एक विस्तृत क्षेत्र में चारों ओर सभी दिशाओं में यात्रा की है और यह ग्रन्थ एक अल्बम है जिसमें उपत्यकाओं (land scapes) के अनेक रेखाचित्र सम्मिलित हैं

जो ही विचार उसके मन में उठे, उसने तुरन्त उसे अभिव्यक्ति प्रदान की । किन्तु मैंने उन्हीं समस्याओं का वरण किया, जो मुझे ग्रन्थ की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्याएं प्रतीत हुईं और वे हैं भाषागत समस्याएं ।

हमारी भाषा जीवन का अंग है और उतनी ही जटिल है जितना हमारा जीवन या संस्कृति । अधिकांश दार्शनिक समस्याएं भाषा का वास्तविक प्रयोग न समझने से उत्पन्न होती हैं । भाषा हमें भ्रमित करती है । दर्शन का वास्तविक लक्ष्य इन भाषा जनित भ्रान्तियों से मुक्त होना है ।

हमारी अत्यधिक दिलचस्पी उन विचारकों की सूची प्रस्तुत करने में नहीं है जिनसे विटगेंन्स्टाइन प्रभावित हुआ और न ही मेरा उद्देश्य ऐतिहासिक विवरण देना है । प्रस्तुत निबन्ध में हमारा उद्देश्य युवा (पूर्ववर्त्ती) और प्रौढ़(परवर्ती) विटगेंन्स्टाइन के भाषा सम्बन्धी दार्शनिक विचारों की विशेषताओं का विवेचन करना है । सामान्य विवृति यह है कि पूर्ववर्त्ती विटगेंन्स्टाइन ने बाद के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा, पर यह धारणा उसके विचारों को न समझने के कारण है । उसके परवर्त्ती विचार पूर्ववर्त्ती विचारों से भिन्न हैं ।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध को सात अध्यायों में विभाजित किया है । प्रथम अध्याय तर्कवाक्यों से सम्बन्धित है । विटगेंन्स्टाइन के भाषा-सिद्धान्त को समझने के लिए उसके द्वारा प्रतिपादित सरल तर्कवाक्यों को समझना आवश्यक है क्योंकि भाषा सरल तर्कवाक्यों की समग्रता है तथा भाषा विश्लेषण की समस्या बिना सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त किये हुए ज्यों की त्यों बनी रहती है विटगेंन्स्टाइन कहता है कि यदि भाषा सत्ता से जुड़ी है तब कुछ तर्कवाक्य जगत् से जुड़े हैं । इन्हें वह सरल तर्कवाक्य कहता है । किन्तु ये निरपेक्ष रूप से सरल नहीं हैं । परमाणविक तथ्यों के समान सरल तर्कवाक्यों के भी घटक होते हैं किन्तु इसका घटक कोई अन्य तर्कवाक्य नहीं ,बल्कि नाम हैं । सरल तर्कवाक्य नामों का संघात है । नाम एक मूल चिन्ह है । वह अपरिभाष्य और अविश्लेष्य पद है । इसकी निर्देशात्मक परिभाषा भी संभव नहीं है । इस प्रकार नाम का अर्थ वह सरल वस्तु है जिसमें कोई भौतिक गुण न हो ।

दूसरे और तीसरे अध्यायों में मैंने विटगैन्स्टाइन द्वारा प्रतिपादित तर्कवाक्यों के चित्र सिद्धान्त और सत्यता-फलन-सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है । चित्र-सिद्धान्त के आधार पर ही ट्रैक्टेटस में विटगैन्स्टाइन ने भाषा के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।इस सिद्धान्त को वर्णनात्मक सिद्धान्त भी कहा जाता है क्योंकि इसके अनुसार हमारी भाषा वस्तुओं, क्रियाओं अथवा सम्बन्धों का तथ्यात्मक वर्णन करती है । चित्र सिद्धान्त के अनुसार हमारी भाषा का कार्य संसार का यथासंभव वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना ही है । हम अपने शब्दों अथवा वाक्यों के माध्यम से विभिन्न सांसारिक वस्तुओं का वैसा ही चित्र प्रस्तुत करते हैं जैसी वे हैं । विटगैन्स्टाइन का भाषा के स्वरूप का स्पष्टीकरण दो भागों में विभाजित है । प्रथम प्रारम्भिक तर्क वाक्यों का चित्र सिद्धान्त (**Picture theory of Elementary proposition**) । द्वितीय ,संश्लिष्ट तर्कवाक्यों का सत्यता फलन सिद्धान्त (**Truth function theory of complex proposition**) । प्रारम्भिक तर्कवाक्यों का चित्र सिद्धान्त यह व्याख्या करता है कि कैसे असंदिग्ध तर्कवाक्य (**Certain propositions**) सत्ता (**reality**) से जुड़े हैं और संश्लिष्ट तर्कवाक्यों का सत्यता-फलन सिद्धान्त व्यक्त करता है कि कैसे दूसरे (प्रारम्भिक तर्कवाक्यों से भिन्न) सभी तर्क वाक्य जगत् से सम्बन्धित हैं । विटगैन्स्टाइन कहता है कि प्रारम्भिक तर्कवाक्यों से भिन्न तर्कवाक्यों को प्रारम्भिक तर्कवाक्यों द्वारा समझा जा सकता है । अतएव प्रारम्भिक तर्कवाक्य इकाई कथन हैं और अन्य सभी तर्कवाक्य प्रारम्भिक तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं । सत्यता-फलन सिद्धान्त ट्रैक्टेटस का केन्द्रीभूत सिद्धान्त है । ट्रैक्टेटस में इसका कोई उल्लेख नहीं है कि जटिल व्यक्तियों (वस्तुओं) के बारे में कथन करने वाले तर्कवाक्य वास्तव में सरल तर्कवाक्यों के सत्यताफलन हैं किन्तु विट-गैन्स्टाइन की यह मान्यता अवश्य रही होगी । उसका चित्र सिद्धान्त और सत्यतावृत्तिका सिद्धान्त एक और वही है अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं है विट-गैन्स्टाइन का सत्यता फलन सिद्धान्त उसके तर्कशास्त्र से भी सम्बन्धित है । उसका तर्कशास्त्र उसके पुनरुक्ति विषयक विचार पर निर्भर है । विटगैन्स्टाइन किसी पूर्ण भाषा की शर्तों से सम्बन्धित नहीं है,बल्कि सभी महत्वपूर्ण भाषाओं से । वह कहता

है कि साधारण भाषा के तर्कवाक्य महत्वपूर्ण हो सकते हैं, बशर्ते वे सरल तर्कवाक्यों के सत्यता फलन से संरचित हों ।

चतुर्थ अध्याय में मैंने विटगेंन्स्टाइन द्वारा ट्रैक्टेटस के भाषा सिद्धान्तों के निराकरणों का विवेचन करने का प्रयास किया है । ट्रैक्टेटस में उसकी मान्यता है कि प्रत्येक सरल तर्कवाक्य का अर्थ पूर्णतया स्पष्ट एवं निश्चित होता है, इन्वेस्टीगेसन्स में वह कहता है कि यह मात्र "पूर्वाग्रह" है, वास्तविक विश्लेषण का परिणाम नहीं ﴾P I 108﴿ । अपनी दूसरी पुस्तक फि. इन्वेस्टीगेसन्स में विटगेन्स्टाइन ने भाषा के उद्देश्य के सम्बन्ध में अपने चित्र सिद्धान्त या वर्णनात्मक सिद्धान्त को नकार दिया है और भाषा की अनेकार्थकता का सिद्धान्त अथवा विविध उपयोग सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । वह कहता है कि भाषा का कार्य वस्तुओं अथवा क्रियाओं का बोध कराना ही नहीं है, हमारे जीवन में प्रसंगानुसार उसके बहुत से विविध उपयोग हैं । विभिन्न सन्दर्भों के अनुरूप हमारे कथनों के अर्थ में भी परिवर्तन होता है । ट्रैक्टेटस में दी गयी अर्थ की धारणा भी गलत है । वहाँ विटगेंन्स्टाइन ने माना है कि शब्द का अर्थ वह वस्तु है जिसके लिए इसका प्रयोग होता है । नाम का अर्थ वस्तु है। अब ﴾इन्वेस्टीगेसन्स में﴿ वह मानता है कि नाम का प्रयोग वस्तु के लिए किया जाता है । जब वस्तु नहीं रहती तब भी नाम सार्थक रहता है जैसे-- जब कोई व्यक्ति मर जाता है तब भी उसके नाम की सार्थकता रहती है । विटगें-स्टाइन इस धारणा का भी खण्डन करता है कि अर्थ मानसिक क्रिया है । अर्थ को मानसिक क्रिया मानने से ज्यादा गलत कुछ नहीं है। ﴾P I 713﴿

यह उल्लेखनीय है कि इन्वेस्टीगेसन्स मूलतः ट्रैक्टेटस के सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं है । इन्वेस्टीगेसन्स के प्रारम्भिक अनुच्छेद उसकी पूववर्ती कृति की स्पष्ट आलोचना हैं लेकिन हम देखेंगे कि उसके दोनों विचारों ﴾पूर्ववर्ती﴿ और परवर्ती में कुछ बिन्दुओं पर समानताएं हैं । दोनों कृतियों में उसके अन्वेषण का विषय साधारण भाषा ही है ।

पंचम अध्याय में मैंने मुख्य रूप से भाषा के विविध कार्यों, अर्थ के प्रयोग सिद्धान्त और उसके भाषा-खेल की धारणा (विचार) से सम्बन्ध का विवेचन किया है । ट्रैक्टेटस में उसने माना है कि भाषा का केवल एक कार्य है — तथ्यों का वर्णन करना । इन्वेस्टीगेसन्स में वह इसे नकार देता है और कहता है कि भाषा के अनेक कार्य हैं, जैसे — वर्णन करना, चेतावनी देना, प्रार्थना करना, आज्ञा देना, कहानी बनाना इत्यादि । ट्रैक्टेटस में उसने तर्कवाक्य का अर्थ "चित्र" माना है । अब (इन्वेस्टीगेसन्स में) चित्र नहीं मानता । वाक्य का अर्थ उसका प्रयोग है । शब्द या वाक्य का अर्थ उनका वास्तविक सन्दर्भों में प्रयोग है । प्रयोग ही अर्थ है । अर्थ अलग से कोई चीज नहीं (न वस्तु, न विचार , न द्रव्य) है । बल्कि प्रयोग ही अर्थ है । इसीलिए वह शब्दों की तुलना औजारों से करता है । जैसे- औजार का अर्थ उसके द्वारा किया जाने वाला कार्य है उसी तरह शब्द का अर्थ उसका प्रयोग है । जब शब्द का अर्थ उसका प्रयोग है तो स्पष्ट है कि शब्द का सम्बन्ध मानवीय क्रियाओं से होता है । शब्द का प्रयोग कुछ उद्देश्यों से किया जाता है । उद्देश्य क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं । शब्द और वास्तविक क्रियाओं का सम्मिलित रूप भाषा-खेल है ।

षष्ठम् अध्याय में मैंने उसकी व्यक्तिगत भाषा विषयक अवधारणा का विवेचन किया है । व्यक्तिगत भाषा वह होती है जिसे दूसरा चाहे तो भी नहीं समझ सकता है क्यों कि हम केवल अपने अनुभव से जानते हैं कि दर्द का क्या अर्थ है । पर वह कहता है कि दर्द शब्द को हम अनुभव से नहीं जानते हैं बल्कि व्यवहार और परिस्थिति के द्वारा जानते हैं । वह व्यक्तिगत भाषा की संभावना का निराकरण करता है । उसके अनुसार व्यक्तिगत भाषा में कोई वस्तुनिष्ठ नियम नहीं होता । यह कोई भाषा नहीं है । तार्किक दृष्टि से दूसरे व्यक्ति ही नहीं, मैं भी इसका अनुकरण नहीं कर सकता हूँ किन्तु यह उल्लेखनीय है कि वह नितान्त वैयक्तिक अनुभवों का खण्डन नहीं करता । हाँ, यह अवश्य है कि जहाँ व्यवहार की संभावना है वहीं

दर्द जैसे नितान्त वैयक्तिक संवेदनों का प्रयोग हो सकता है। दर्द का बहाना भी किया जा सकता है और वास्तविक दर्द को छिपाया भी जा सकता है। इस संदर्भ में सम्पूर्ण परिस्थिति ही निर्णायक होती है। अतः विटगैंन्स्टाइन के भाषा खेल में व्यक्तिगत भाषा का महत्त्व नहीं है और यह एक कपोल-कल्पना मात्र है।

Notes and References

1. Heller, E., "The Passionate philosopher"
TLS, May 1,1959.
2. Passmore,J., " A hundred years of philosophy"
P. 425.
3. Von Wright,G.H., "Biographical sketch" included in
Malcolm's Ludwig Wittgenstein;
A Memoir, pp (4-5)
4. Anscombe, G.E.M., "An Introduction to Wittgenstein's
Tractatus P.12
5. Anscombe and Geach, " Three philosophers", P.131
6. Translation from philosophical writings of Gottlob Frege,
Geach and Black, P.13.
7. Tracta, 3.323, 3.324 and 3.325
8. Ibid 3.3421
9. Quoted by Passmore,J. in his " A hundred years of
Philosophy, P.154
10. Grundlagen der Arithmetik,P.x
11. Anscombe and Geach, "Three philosophers",P.147
12. Anscombe,G.E.M.," An Introduction to Wittgenstein's
Tractatus" P.16
13. Tracta. 4.0031
14. Von Wright,G.H.," Biographical sketch included in Malcolm's
Ludwig Wittgenstein; A Memoir,P.21
15. Stenius,E. "Wittgenstein's Tractatus',P.214
16. Tracta 6.36 III.

17. Tracta. 5.556
18. Ibid 6.13 (2)
19. Ibid 5.552 (2)
20. Stenius,E.,"Wittgenstein's Tractatus",P.220
21. Ibid P.220
22. Tracta. 4.1121(2)
23. Ibid 4
24. Ibid 4.001
25. Ibid 4.0031

प्रथम अध्याय

तर्कवाक्य

विटगेंस्टाइन के भाषा-सिद्धान्त को समझने के लिए उसके द्वारा प्रतिपादित सरल तर्कवाक्यों के स्वरूप को समझना आवश्यक है, क्योंकि भाषा सरल तर्क वाक्यों की समग्रता है । इस सन्दर्भ में विटगेंस्टाइन ने कुछ पारिभाषिक पदों का प्रयोग किया है । प्रथम -Satzzeichen- का मैक् गाइनेस ने तर्क वाक्यीय चिन्ह अनुवाद किया है, जिसका अर्थ Sentence-Token किया गया है । इस प्रकार इस शब्द का अर्थ विटगेंस्टाइन के अनुसार एक विशेष प्रकार का चिन्ह अथवा चिन्हों का विन्यास है, जिसका प्रयोग किसी तर्कवाक्य को अभिव्यक्त करने के लिए किया जा सकता है । दूसरा - Sinnvoller satz जिसका अर्थ पियर्स और मैक्गाइनेस ने सार्थक तर्कवाक्य (Proposition with a sense) बताया है । तीसरा पद Satz है - जिसका अर्थ तर्कवाक्य है । पियर्स ने "इसे "वाक्य प्रकार" कहा है । स्टेनियस ने इसका अनुवाद वाक्य रूप में किया है । किन्तु "ग्रिफिन का कहना है कि Satz चिन्ह (Sign) से अधिक किन्तु प्रतीकों (Symbol) से कम है । यह Satzzeichen और इसका जगत् से प्रक्षेपात्मक सम्बन्ध है"।[1] यह शब्दों का उनके व्याकरणात्मक प्रयोग (Syntactical application) के सहित शब्दों का संयोजन है । विटगेंस्टाइन की Satz पद के प्रयोग में विशेष अभिरुचि थी । यह तर्कवाक्य को महत्वपूर्ण तथा सत्य अथवा असत्य बनाता है । विटगेंस्टाइन प्रायः Satz और Sinnvoller Satz में भेद नहीं करता । दूसरे शब्दों में, कभी-कभी दोनों पदों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है । किन्तु जैसा कि मैक्गाइनेस और पियर्स के विवरणों से ज्ञात है कि Sinnvoller Satz का अर्थ है सार्थक तर्कवाक्य, जबकि Satz का अर्थ है केवल तर्कवाक्य ।[2] Satz तर्कवाक्य के सत्यता मूल्य का निर्धारक है । अतः वाक्य की सार्थकता Satz पर निर्भर है । Sinnvoller Satz का अर्थ है सार्थक तर्कवाक्य । अतः या तो Satz और

Sinnvoller Satz में कोई विशेष भेद नहीं प्रतीत होता अथवा विटगैंस्टाइन ने इसे स्पष्ट नहीं किया है । जो कुछ भी हो विटगैंस्टाइन ने तर्कवाक्य के संदर्भ में इस पद के प्रयोग को आवश्यक समझा ।

अब हमें तर्क वाक्यों के स्वरूप पर विचार करना है । विटगैंस्टाइन के अनुसार भाषा विश्लेषण की समस्या बिना सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त किये हुए बनी रहती है । सरल तर्कवाक्यों के विषय में सुपरिचित और प्रचलित परिभाषा यह है कि इसका विश्लेषण अन्य सरल तर्कवाक्यों में नहीं हो सकता है क्योंकि इससे अधिक सरल कोई अन्य तर्क वाक्य नहीं होता । सरल तर्कवाक्य का प्रयोग विभिन्न दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न नामों से किया है । एअर ने इसे "मूल तर्कवाक्य" (Basic Proposition), रसेल ने इसे "पारमाणविक तर्कवाक्य" (Atomic Proposition), वियना सर्किल के कुछ सदस्यों ने इसे Protocol proposition, शिलक ने इसे Constatations, लेविस ने इसे "अभिव्यक्तात्मक निर्णय" (Expressive judgement) कहा है ।[3] इसका प्रयोग अन्तिम प्रमाण के रूप में किया गया है जो स्वतः प्रमाण हैं । किसी न किसी रूप में सरल तर्कवाक्यों को स्वीकार किये बिना अनवस्था दोष से नहीं बचा जा सकता । तर्कवाक्य के सरल होने का अर्थ यह नहीं है कि यह निरपेक्ष रूप से सरल है । पारमाणविक तथ्यों के समान सरल तर्कवाक्य के भी घटक होते हैं, किन्तु सरल तर्कवाक्य का घटक कोई अन्य तर्कवाक्य नहीं बल्कि नाम हैं । सरल तर्कवाक्य नामों का संघात है । विटगैंस्टाइन कहता है — "सरल तर्कवाक्य नामों से बनता है, वह नामों का एक संयोजन है, एक श्रृंखलाबद्धता है ।" (ट्रैक्टे० 4.221)" स्पष्ट है कि वाक्यों के विश्लेषण द्वारा हम अनिवार्य रूप से सरल तर्कवाक्यों तक पहुँचते हैं, जो अव्यवहित सम्बन्ध से बनते हैं ।" (ट्रैक्टे० 4.22) ।

अब यह विचारणीय है कि नाम क्या है ? विटगैंस्टाइन ने नाम पद का प्रयोग एक पारिभाषिक अर्थ में किया है, न कि साधारण अर्थ में । सामान्यतया हम नाम शब्द का प्रयोग वस्तुओं और व्यक्तियों के लिए करते हैं, किन्तु विटगैंस्टाइन

ने इसका प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया है । उसके अनुसार नाम का विश्लेषण अथवा परिभाषा संभव नहीं है । वह कहता है — " नाम किसी परिभाषा द्वारा पुनः विश्लेषित नहीं होता । वह एक मूल चिन्ह है । § ट्रैक्टे० 3.26§ ।" प्रश्न यह उठता है कि साधारण नाम विटगैंस्टाइन के द्वारा प्रतिपादित नाम के अर्थ में क्यों नहीं लिए जा सकते हैं ? विटगैंस्टाइन के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है । साधारण नाम विटगैंस्टाइन के अर्थों में नाम नहीं हैं, क्योंकि उनके अर्थ की व्याख्या उनके द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करके की जा सकती है । अर्थात् उनका विश्लेषण संभव है और उनके घटक भी हैं । इस प्रकार साधारण नाम सरल नहीं, बल्कि जटिल हैं । जबकि विटगैंस्टाइन का नाम एक सरल एवं मूल चिन्ह है । इससे सिद्ध होता है कि नाम अवश्य ही सरल वस्तु का निर्देशक है । ऐसी सरल वस्तु जिसका कोई घटक न हो । यदि कोई नाम किसी जटिल वस्तु का निर्देश करता है तो वह तथ्य होगा न कि सरल वस्तु । समस्त नाम वस्तुओं और विधेयों के नाम हैं । नाम के अनुरूप वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वस्तु नाम का अर्थ है । नाम सरल प्रतीक हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार नाम सरल प्रतीक है।" मैं उनका निर्देश विशिष्ट अक्षरों "च", "छ", "ज" § " x ","y", "z" § द्वारा करता हूँ । मूलवाक्यों को मैं नामों के व्यापार § Function § के रूप में लिखता हूँ जिससे उनका आकार Fx, ϕ (x,y) आदि होता है अथवा मैं उन्हें P,Q,R अक्षरों से लिखता हूँ । §ट्रैक्टे० 4.24§ ।"

यहाँ पर F और ϕ का प्रयोग नाम के लिए नहीं हुआ है । इनका प्रयोग सम्बन्ध और गुण के लिए हुआ है । इससे सिद्ध होता है कि गुण और सम्बन्ध सूचक शब्द नाम नहीं हैं । दूसरे शब्दों में x, y, z सम्बन्ध अथवा गुण नहीं हैं । बल्कि वैयक्तिक चर हैं । वे विशेषों के नाम हैं । इस प्रकार विटगैंस्टाइन के नाम सामान्य नहीं बल्कि विशेष हैं । किन्तु नाम को विशेष मानना भी विवादास्पद है । कोपी के अनुसार नाम विशेष हैं । कोपी ने अपने पक्ष में विटगैंस्टाइन के उपरिनिर्दिष्ट संदर्भ का उल्लेख किया है §ट्रैक्टे० 4.24§ । कोपी

के अनुसार "सरल वस्तु विशेष है । चूँकि नाम वस्तु का अर्थ है इसलिए उसे भी विशेष होना चाहिए ।[4]

इस प्रकार विटगेंस्टाइन के अनुसार नाम एक पूर्णरूप से अपरिभाष्य और अविश्लेष्य पद है । यहाँ तक कि नाम की निर्देशात्मक परिभाषा भी नहीं दी जा सकती है । रसेल के अनुसार "यह" (This) की निर्देशात्मक परिभाषा संभव है । "यह" एक व्यक्तिवाचक नाम है किन्तु विटगेंस्टाइन के अनुसार "यह" नाम नहीं है । "यह" का प्रयोग उन्हीं वस्तुओं के लिए होता है जो इन्द्रिय प्रदत्त हों, जिसका हम अनुभव कर सकते हैं । किन्तु जिसका हम अनुभव कर सकते हैं वह सरल न होकर संघात होगा । अतः नाम की निर्देशात्मक परिभाषा भी नहीं दी जा सकती है । इस प्रकार नाम का अर्थ वह सरल वस्तु है जिसमें कोई भौतिक गुण न हो । नामों के सम्बन्ध में विटगेंस्टाइन चित्र-सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करता है, क्योंकि चित्र-सिद्धान्त का सम्बन्ध तर्कवाक्यों से है । इसे वह "अर्थ का धारक सिद्धान्त" (Bearer Theory of Meaning) कहता है । उसके अनुसार ऐसा नहीं है कि प्रत्येक शब्द किसी वस्तु की ओर संकेत करता है । यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक शब्द के अनुरूप कोई वस्तु हो । " Unicorn " अथवा "तार्किक अचर" शब्द सार्थक हैं; परन्तु इनके अनुरूप कोई वस्तु नहीं है । यह भी उल्लेखनीय है कि विटगेंस्टाइन अर्थ (Meaning) और तात्पर्य (Sense) में भेद करता है । फ्रेगे ने भी अर्थ और तात्पर्य में अन्तर किया है । किन्तु फ्रेगे के अनुसार अर्थ और तात्पर्य दोनों वाक्य में हो सकते हैं - विटगेंस्टाइन इससे असहमत है । उसके अनुसार अर्थ केवल नाम में होता है और तात्पर्य केवल तर्कवाक्यों में होता है । अर्थ वस्तु है और तात्पर्य स्थिति है । तर्कवाक्य के अनुरूप कोई वस्तु नहीं है । अतः वह अर्थयुक्त नहीं है । इस प्रकार नाम के लिए वस्तु का होना आवश्यक है और तर्कवाक्य के लिए तथ्य का । यदि तर्कवाक्य को अर्थयुक्त माना जाय तो कोई भी तर्कवाक्य असत्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे ही तर्कवाक्य असत्य होंगे, जिनके अनुरूप वास्तविक स्थिति न हो । किन्तु भाषा में असत्य कथन होते हैं । अतः अर्थ और तात्पर्य में विटगेंस्टाइन ने अन्तर किया है ।

प्रश्न यह उठता है कि नामों का होना तर्कवाक्य के लिए क्यों आवश्यक हैं। रसेल के समान विटगेंस्टाइन भी यह मानता है कि विश्लेषण से स्पष्टता आती है। यदि शब्दों का प्रयोग जटिल वस्तुओं के लिए होता है तो इससे वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि स्पष्ट और निश्चित अर्थ प्राप्त करने के लिए अधिक सरल वाक्यों में उसका विश्लेषण किया जाय। विश्लेषण की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि नाम न प्राप्त हो जाय। चूँकि सरल तर्कवाक्य में केवल नामों का प्रयोग होता है अतः यदि नामों का प्रयोग संभव न हो तो वाक्य विश्लेषण की प्रक्रिया कभी समाप्त न होगी। इसके परिणाम स्वरूप कोई भी सार्थक वाक्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। चूँकि भाषा में सार्थक वाक्यों का प्रयोग होता है जो सत्य या असत्य हों, अतः नामों का प्रयोग आवश्यक है। विटगेंस्टाइन नाम के सिद्धान्त का प्रतिपादन भाषा का वास्तविक विश्लेषण करके नहीं करता। वस्तुतः उसका तर्क प्रागनुभविक है। विटगेंस्टाइन के मत में यद्यपि सरल तर्कवाक्य का विश्लेषण नाम में होता है किन्तु नाम की स्थिति वाक्य से स्वतन्त्र रूप में संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में, वाक्य में प्रयुक्त होकर ही नाम सार्थक होता है। यहाँ पर हम विटगेंस्टाइन की तुलना ब्रिटिश अनुभववादियों के इस मत से कर सकते हैं कि पदों की स्थिति स्वतन्त्र होती है। बाद में ब्रैडले ने इस मत का खण्डन किया। उसके अनुसार पदों की स्वतन्त्र स्थिति संभव नहीं है। इसी प्रकार विटगेंस्टाइन ने भी कहा – "केवल वाक्य का ही तात्पर्य होता है। नाम का अर्थ किसी वाक्य के संदर्भ में ही होता है।" (ट्रैक्ट० 3.3)। इस प्रकार नाम और सरल तर्कवाक्य विश्लेषण और निश्चित तात्पर्य के लिए आवश्यक है।[5]

नाम का अस्तित्व किसी न किसी सरल तर्कवाक्य में होता है जिस प्रकार वस्तु का अस्तित्व किसी न किसी स्थिति में ही होता है। तर्कवाक्य से स्वतन्त्र रूप में नाम मृत हैं। नाम अर्थपूर्ण तभी हो सकते हैं जब कि उनका प्रयोग किसी तर्कवाक्य में हो। यहाँ पर विटगेंस्टाइन के मत में एक विरोधाभास प्रतीत होता है।

वह कहता है §1§ नामों के अर्थ व्याख्याओं द्वारा स्पष्ट किये जा सकते हैं, व्याख्याएं वे वाक्य हैं जिनमें नाम सन्निहित होते हैं । §2§ अतः वे तभी समझे जा सकते हैं जब इन नामों का अर्थ पहले से ही ज्ञात हो।" §ट्रैक्टे० 3·263§ । विटगेंस्टाइन ने इस विरोधाभास का कोई समाधान नहीं दिया है । उसका यह मन्तव्य तो सत्य है कि नाम केवल तर्कवाक्यों के अंग के रूप में ही सार्थक हैं किन्तु उसका अर्थ का धारक सिद्धान्त § Bearer Theory of Meaning § विरोधाभासी है । अपने इस सिद्धान्त का खण्डन विटगेंस्टाइन ने आगे चलकर स्वयं किया ।

जैसा कि स्पष्ट है कि सरल तर्कवाक्य भाषा की प्रारम्भिक इकाइयाँ हैं । अतः तर्कवाक्यों के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तर्कवाक्य का अर्थ क्या है ? हम सरल तर्क वाक्य का अर्थ समझ सकते हैं, भले ही हम उसे पहले से पढ़े या सुने न हों, बशर्ते हमें वाक्य में प्रयुक्त नामों का अर्थ ज्ञात हो। कोई वाक्य सत्य है अथवा असत्य है इसे 'जानने के पूर्व ही हम वाक्य का अर्थ समझ सकते हैं । वाक्य का अर्थ उसके सत्य या असत्य होने पर निर्भर नहीं है । दूसरे शब्दों में, वाक्य का तात्पर्य उसके सत्यतामूल्य से स्वतन्त्र है । वह कहता है – " वाक्यों के लिए यह सारभूत § Essence § है कि वह हमें एक नये तात्पर्य की जानकारी प्रदान कर सकता है ।" §ट्रैक्टे० 4·026§ ।

अब प्रश्न यह उठता है कि वाक्य का तात्पर्य क्या है ? श्लिक के अनुसार "शब्द भाषा की अन्तिम इकाई है । तर्कवाक्य का अर्थ उसमें घटित होने वाले तर्कवाक्यों के अर्थ द्वारा निर्धारित किया जाता है।"[6] फ्रेगे के अनुसार प्रत्येक अभिव्यक्ति में तात्पर्य और निर्देश दोनों होता है । विटगेंस्टाइन ने फ्रेगे के इस विचार को स्वीकार किया है कि अर्थ का विभाजन तात्पर्य और निर्देश में किया जाना चाहिए । किन्तु वह इससे सहमत नहीं है कि प्रत्येक अभिव्यक्ति में तात्पर्य और निर्देश दोनों होता है । नाम निर्देश रखते हैं जबकि वाक्य में तात्पर्य होता है । विटगेंस्टाइन के लिए यह स्वीकार करना कठिन था कि असत्य तर्कवाक्य निर्देश रखते हैं । यदि वाक्य अपने अर्थ के लिए निर्देश पर निर्भर करते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि एक

असत्य वाक्य किसका निर्देश करता है । रसेल के विपरीत वह न तो निषेधात्मक तथ्यों को मानता है और न ही फ्रेगे के समान सत्यता और असत्यता को वाक्यों का निर्देश मानता है । अतः उसके सामने दो विकल्प हैं । या तो वह इस बात का निषेध करता कि असत्य वाक्य सार्थक होते हैं अथवा वाक्यों का कोई निर्देश नहीं होता । विटगेंस्टाइन ने दूसरा विकल्प चुना- वाक्यों में निर्देश नहीं होता । अतः उसने स्वीकार किया कि वाक्यों में तात्पर्य होता है और नामों में निर्देश । जहाँ तक शब्द जटिल होते हैं उनमें एक सामान्यता निहित होती है और इसीलिए उनका व्यवहार वर्णन जैसा होता है । वस्तुएं निर्देशित की जाती हैं अथवा वस्तुएं नामों के निर्देश हैं और सरल हैं । प्रत्येक जटिल अभिव्यक्ति अवश्य ही एक सरल इकाई रखती है जिसे विटगेंस्टाइन ने नाम की संज्ञा दिया है । ये नाम विशेष वस्तुओं के प्रति अपने निर्देश के माध्यम से सत्ता के साथ जुड़े रहते हैं । सत्ता के साथ केवल वे ही वाक्य अपरोक्ष [साक्षात्] रूप से जुड़े होते हैं जो अपने घटक के रूप में सरलतम इकाइयाँ अथवा नाम रखते हैं । ये वाक्य पारमाणविक तथ्यों को चित्रित करते हैं । इन्हें ही सरल तर्कवाक्य कहा जाता है । इस प्रकार ट्रैक्टेटस में सरल तर्कवाक्य नामों से सम्बन्धित होते हैं । यहाँ पर विश्लेषण का एक ऐसा तार्किक उपकरण चाहिए जिसके द्वारा यह निश्चित हो सके कि कौन-कौन से नाम हैं और वास्तव में कौन-कौन से वर्णन हैं । इसी उद्देश्य के लिए रसेल ने अपने प्रसिद्ध वर्णन-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । रसेल के वर्णन-सिद्धान्त ने दर्शन जगत् में न केवल तार्किक परमाणुवाद को प्रभावित किया, बल्कि उसने व्यापक रूप से ट्रैक्टेटस के लेखक विटगेंस्टाइन को भी ।[7] रसेल का वर्णन-सिद्धान्त और ट्रैक्टेटस का अर्थ सिद्धान्त इससे प्रभावित है कि सभी महत्वपूर्ण या सार्थक तर्कवाक्य या तो सत्य होते हैं या असत्य । रसेल ने भाषा से सत्यता मूल्य की रिक्तता को दूर करने का प्रयास किया । रसेल का वर्णन-सिद्धान्त और उससे प्रभावित ट्रैक्टेटस में प्रतिपादित अर्थ सिद्धान्त में निहित मान्यता यह है कि समस्त अर्थपूर्ण तर्क वाक्य या तो सत्य होते हैं अथवा असत्य होते हैं । वे सत्ता से सम्बन्धित होते हैं।यदि कोई वाक्य सत्ता से असम्बद्ध होता है तो यह तात्पर्यहीन हो जाता है यदि वह

असत्य सत्ताओं को स्वीकार नहीं करता । स्ट्रासन ने रसेल के वर्णन-सिद्धान्त की आलोचना की है । उसके अनुसार वाक्यों का सत्य-असत्य अथवा अर्थहीन में विभाजन का यह त्रैत व्यर्थ (Bogus) है । उसके अनुसार सार्थक वाक्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसका प्रत्येक प्रयोग किसी समय और किसी स्थान पर सत्य अथवा असत्य कथन होना चाहिए । किसी निर्देशात्मक वाक्यांश अथवा अभिव्यक्ति के सार्थक (अर्थपूर्ण) होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसके प्रयोग के प्रत्येक अवसर पर कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिए जिसका कि यह निर्देश करता है ।[8] यहाँ पर हमारा उद्देश्य इस विवाद का निर्णय करना नहीं है कि स्ट्रॉसन अथवा रसेल और विटगैंस्टाइन में किसकी मान्यताएँ अधिक न्यायोचित हैं । हमारा लक्ष्य यह दिखाना है कि सार्थक वाक्य के विषय में दोनों विचारधारायें एक-दूसरे के विपरीत हैं । स्ट्रॉसन के विपरीत रसेल का कहना है कि निर्देशात्मक वाक्यांश (Denotative Phrases) किसी प्रसंग में किसी व्यक्ति की पहचान के लिए ही नहीं हैं बल्कि वे ऐसे नाम हैं जिनको वास्तविक जगत् की वस्तुओं के लिए लागू किया जा सकता है । एक शब्द अथवा शब्दों का एक विन्यास या तो नाम हैं अथवा वर्णन । नाम वह है जो अपरोक्ष अर्थ में एक वास्तविक व्यक्ति का निर्देश देता है । अतः कोई वर्णन जो इस शर्त को पूरा नहीं करता असत्य है । अर्थात् कोई वर्णन जो किसी वास्तविक व्यक्ति का निर्देश नहीं करता, असत्य है । स्पष्टतया ये मान्यताएँ इस आस्था पर आधारित हैं कि यदि कोई तर्कवाक्य तात्पर्ययुक्त है तो वह तात्पर्य अद्वितीय है । विटगैंस्टाइन ने रसेल की इस मान्यता को स्वीकार किया । विटगैंस्टाइन के अनुसार रसेल के वर्णन-सिद्धान्त का एक बहुत बड़ा गुण है कि जिसके अनुसार तर्कवाक्य का व्याकरणात्मक आकार उसका वास्तविक आकार नहीं है । केवल एक पूर्ण तार्किक विश्लेषण ही वाक्य के वास्तविक आकार को अभिव्यक्त करने में सहायता कर सकता है । यह तार्किक विश्लेषण ही वाक्य के तात्पर्य को निश्चित करता है । विटगैंस्टाइन कहता है कि "यह रसेल था जिसने यह दिखाया कि एक तर्कवाक्य के स्पष्ट तार्किक आकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि यह इसका वास्तविक आकार हो"। (ट्रैक्टे० 4·0031) ।

रसेल और विटगैंस्टाइन दोनों के अनुसार व्यक्तिवाचक नाम (Proper name) एक सरल प्रतीक है जो विशेष व्यक्तियों (वस्तुओं) का निर्देश करता है । यह सरल प्रतीक बिना किसी घटक के होता है । जबकि वर्णन के घटक के रूप में कई प्रतीक होते हैं । अतः वर्णन जटिल होता है जबकि नाम सरल । अतः नाम और वर्णन में एक सैद्धान्तिक अन्तर है । एक व्यक्तिवाचक नाम को किसी न किसी व्यक्ति का निर्देश अवश्य करना चाहिए । व्यक्तिवाचक नाम का अर्थ वह विशेष वस्तु है जिसका कि नाम के द्वारा निर्देश किया जाता है । रसेल के अनुसार एक निश्चित वर्णन अपूर्ण प्रतीक है । विशिष्ट निर्देश (Unique disignation) के अभाव के कारण सबसे पृथक् रूप में वर्णन का कोई अर्थ नहीं होगा । रसेल के अनुसार इस तर्कवाक्य में कि -" वेवरली का लेखक स्काट है " यह सोचना उचित नहीं है कि इस वाक्य के विधेय के माध्यम से वेवरली के लेखक की किसी विशेषता की ओर संकेत किया जा रहा है । सामान्यतया व्याकरण की दृष्टि से देखने में यह एक सरल तर्कवाक्य प्रतीत होता है किन्तु इसका तार्किक विश्लेषण किया जाय तो इसकी जटिलता का बोध होता है। यदि कहा जाय कि "वेवरली का लेखक " शब्द विन्यास का अर्थ स्काट है तो तर्क संगत नहीं होगा । "वेवरली का लेखक" और "स्काट" दोनों एक ही विशेष वस्तु का निर्देश करते हैं । अतः यदि "वेवरली का लेखक" का अर्थ यह है कि वह स्काट है तो यह वाक्य स्काट वेवरली का लेखक है एक पुनरूक्ति कथन मात्र होगा, जिसे प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि "स्काट स्काट है ।" पर ऐसा ठीक नहीं । अतः रसेल ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक ही तरीका बताया है कि "वेवरली का लेखक कुछ भी निर्देश नहीं करता । यह केवल एक निश्चायक वर्णन है । पूरे वाक्य में तीन तर्कवाक्य सम्मिलित हैं ।

(।) कम से कम एक व्यक्ति ने वेवरली लिखा है ।

(।।) अधिक से अधिक एक व्यक्ति ने वेवरली लिखा है ।

(।।।) जिसने भी वेवरली लिखा है वह स्काट है ।

इस प्रकार के वाक्यांश अपने वैयाकरणिक स्वरूप के कारण वर्णनात्मक होते हैं । किन्तु किसी अस्तित्ववान इकाई की ओर संकेत नहीं करते हैं ।[9]

इसी प्रकार रसेल ने, "फ्रांस के वर्तमान राजा का सिर गंजा है" अथवा "स्वर्ण पर्वत बहुत ऊँचा है ।" इस प्रकार के वाक्यों की व्याख्या भी अपने वर्णन सिद्धान्त के माध्यम से किया है । रसेल के विपरीत माइनांग का विचार था कि इस प्रकार के पद उन वस्तुओं की ओर संकेत करते हैं जो सत्ता की परिधि से बाहर हैं । इन वस्तुओं पर विरोध का नियम लागू नहीं होता । ऐसा इसलिए है क्योंकि ये ऐसी वस्तुएँ हैं जिन पर विरोध का नियम लागू नहीं होता है । ऐसा इसलिए है कि इस प्रकार का पद एक ऐसी वस्तु या व्यक्ति की ओर संकेत करता है जो अस्तित्ववान नहीं है और जिसकी वह विशेषता यह पद प्रस्तुत करता है;हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है । कहने का अर्थ यह है कि माइनांग ने इस प्रकार के पदों के लिए जैसे – फ्रांस का राजा", "स्वर्ण पर्वत" आदि की भी सत्ता स्वीकार की थी" यद्यपि ये किसी वास्तविक जगत् में अस्तित्ववान् इकाई को प्रस्तुत नहीं करते ।[10]

रसेल ने माइनांग के इस सिद्धान्त का प्रतिवाद किया । उसके अनुसार "फ्रांस का राजा" पद समूह वस्तुओं की ओर संकेत करने वाले नाम नहीं है । ये केवल वर्णन हैं । फ्रांस का राजा एक वैयाकरणिक उद्देश्य है न कि तार्किक उद्देश्य । अतः वह किसी वस्तु की ओर संकेत नहीं करता । माइनांग अस्तित्वों के जगत् में उन्हें विशेष स्थान देना चाहते हैं । • किन्तु अपने न्यूनीकरण (Reduction) के नियम का प्रयोग करते हुए रसेल इन्हें मूल सरल इकाइयों की सूची में कोई स्थान नहीं देते हैं । रसेल का उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि ये वर्णनात्मक शब्द समूह वे अपूर्ण प्रतीक हैं जो किसी अस्तित्ववान् वस्तु की ओर संकेत नहीं करते । इन विवरणों से विदित होता है कि विटगैंस्टाइन का मत माइनांग की अपेक्षा रसेल के अधिक निकट है ।

रसेल का विश्लेषण यह दिखाता है कि नामों को सरल प्रतीक होना चाहिए

ताकि वे अपने धारकों [वस्तुओं] का निर्देश कर सकें । इस प्रकार नाम अर्थ और अर्थ की शर्तों को सम्बन्धित करने की तार्किक आवश्यकता को पूरा करने का आश्वासन देता है क्योंकि नामों के माध्यम से ही भाषा सत्ता से जुड़ती है । तर्कवाक्यों के निश्चित तात्पर्य की गारण्टी केवल तभी दी जा सकती है जबकि नामों को जगत् में निश्चित वस्तुओं का धारक समझा जाय । आंग्ल अनुभववाद से प्रभावित होने के कारण रसेल ने सोचा कि नामों और वाक्यों को एक ही प्रकार से अर्थयुक्त होना चाहिए । उसने एक तर्कवाक्य अथवा निर्णय [जैसे a R b] में तीन घटकों को माना a, R और b । जबकि विटगेंस्टाइन रसेल के विपरीत केवल दो तत्वों a और b को मानता है । सत्ता केवल a और b की है । न कि R [सम्बन्ध] की । इसका अर्थ है कि a, b से एक निश्चित सम्बन्ध रखता है । [ट्रैक्टे0 3.1432] । इस विश्लेषण से विदित होता है कि रसेल के वर्णन-सिद्धान्त के द्वारा विटगेंस्टाइन द्वारा प्रतिपादित अर्थ के चित्र- -सिद्धान्त के निरूपण में मदद मिली ।

विटगेंस्टाइन के अनुसार एक जटिल तत्व का विश्लेषण सरल तथा अविभाज्य तत्वों में किया जा सकता है । यह प्रक्रिया अनन्त नहीं है । दूसरे शब्दों में, जब हम पूर्ण रूप से सरल वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं तो विश्लेषण की प्रक्रिया का अन्त हो जाता है । वाक्य का निश्चित तात्पर्य विश्लेषण के द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है । जब तक तर्कवाक्य जटिल है सम्पूर्ण तर्कवाक्य का तात्पर्य अनिश्चित [Indeterminate] रहता है, क्योंकि जटिल तर्कवाक्यों में सामान्य तत्व होता है । अतः पूर्णरूप से सरल तर्कवाक्य वही हो सकता है जिसमें जटिल प्रतीक नहीं होते । ऐसे तर्कवाक्यों के घटक नाम होते हैं । ऐसे तर्कवाक्य जो अपने तात्पर्य में, निश्चित संरचना में सरलतम होते हैं उन्हें विटगेंस्टाइन सरल तर्कवाक्य कहता है । सरल तर्कवाक्य जिस तथ्य का वर्णन करता है वह स्वभावतः परमाणविक तथ्य [Atomic fact] होताहै । तथ्य परमाणविक तथ्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है । इससे सिद्ध होता है कि सरल

तर्कवाक्य अपरोक्षतः सत्ता से सम्बद्ध है । सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य इसमें घटित होने वाले नामों के अर्थ पर निर्भर होता है फिर भी तर्कवाक्य का तात्पर्य नामों के समान निर्देश करने के द्वारा निर्धारित नहीं होता । प्रश्न यह उठता है कि एक तर्कवाक्य कैसे संकेत करता है ? इस प्रश्न के उत्तर में अर्थ का चित्र-सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । यदि नामों को सरल प्रतीक समझा जाय तो तर्कवाक्य प्रतीकों के जटिल संश्लेषण हैं । यद्यपि सरल तर्कवाक्य सरल प्रतीकों के द्वारा संरचित हैं तथापि वे केवल नामों के संग्रह नहीं हैं । तर्कवाक्य अभिव्यक्तियाँ हैं न कि केवल प्रतीक ।[11]

विटगैंस्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य को कोई नयी सूचना देनी चाहिए, न कि केवल उनमें घटित होने वाले नामों का अर्थ । विटगैंस्टाइन कहता है कि "वाक्यों के लिए यह सारभूत (Essence) है कि वह हमें एक नये तात्पर्य का ज्ञान दे सकता है । सरल चिन्हों के आशय का स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक है, जिससे कि हम उन्हें समझ सकें । वाक्यों द्वारा हम अपने लिए यह समझ प्राप्त करते है ।" (ट्रैक्टे० 4·026 और 4·027) । उसके अनुसार वाक्य उसी सीमा तक कोई कथन कर सकता है जहाँ तक वाक्य वस्तुस्थिति का एक चित्र है । नाम के समान तर्कवाक्य को एक प्रतीक और एक चिन्ह के रूप में देखा जा सकता है । एक चिन्ह के रूप में इसकी दो विशेषताएं हैं । -

(I) एक तर्कवाक्यात्मक चिन्ह के रूप में यह एक निश्चित ढाँचे को प्रदर्शित करता है क्योंकि

(II) यह एक विशेष व्यवस्था में नामों का एक संघात है । एक प्रतीक के रूप में इसका सबसे महत्वपूर्ण कार्य तथ्य का चित्रण करना है । एन्सकोम्ब ने ट्रैक्टेटस में सरल तर्कवाक्यों की कुछ विशेषताओं का निर्देश इस प्रकार किया है ।[12]

(I) सरल तर्कवाक्य परस्पर स्वतन्त्र होते हैं ।

§2§ सरल तर्कवाक्य अनिवार्यतया स्वीकारात्मक §विध्यात्मक§ होते हैं । निषेधात्मक तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्य की सत्यवृत्ति है जब कि सरल तर्कवाक्य स्वयं अपना सत्यता-फलन है ।

§3§ सरल तर्कवाक्यों के लिए सत्य अथवा असत्य होने के दो रास्ते नहीं हैं । केवल एक ही तरीका है । स्वभावतः सरल तर्कवाक्यों में बाहय और आन्तरिक निषेधों का कोई अन्तर नहीं होता है ।

§4§ सरल तर्कवाक्य नामों के संघात होते हैं ।

§1§ सरल तर्कवाक्यों के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि वे एक-दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं । अतः एक सरल तर्कवाक्य के आधार पर किसी अन्य सरल तर्कवाक्य का निगमन नहीं किया जा सकता । एक सरल तर्कवाक्य का खण्डन दूसरे सरल तर्कवाक्य से नहीं हो सकता । दो सरल तर्कवाक्यों में व्याघाती सम्बन्ध नहीं होता । वे न तो एक दूसरे के व्याघाती और न विपरीत ही हो सकते हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार एक सरल तर्कवाक्य दूसरे से निगमित नहीं किया जा सकता । §ट्रैक्टे0 5·134§ । किसी वाक्य के सरल होने का यह चिन्ह है कि दूसरा सरल तर्कवाक्य इसका व्याघाती नहीं होता ।

किन्तु परवर्ती विटगेंस्टाइन ने सरल तर्कवाक्यों के बारे में इस विचारधारा को त्याग दिया कि सरल तर्कवाक्य एक-दूसरे के विपरीत नहीं होते हैं । उसके अनुसार वे व्याघाती नहीं हो सकते हैं । अब यह विचारणीय है कि कैसे सरल तर्क वाक्य कुछ अभिव्यक्त करता है । चूँकि सरल तर्कवाक्य नामों का संयोजन कहा जाता है तो हम कैसे नये तर्कवाक्यों को समझ सकते हैं और अभिव्यक्त कर सकते हैं ? हम नये तर्कवाक्यों को समझते हैं जो कि सुप्रचलित पदों का प्रयोग करते हैं । §ट्रैक्टे0 4·02§ । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन तर्कवाक्य के तात्पर्य की अभिव्यक्ति का प्रयोग एक दूसरे ढंग से करताहै । उदाहरणार्थ-सरल तर्कवाक्य " aRb " और इसका निषेध " ~§ a R b §" । विटगेंस्टाइन के अनुसार ये दोनों तर्कवाक्य परस्पर

विरोधी तात्पर्य रखते हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार प्रत्येक तर्कवाक्य अनिवार्यतः सत्य अथवा असत्य होता है । इस प्रकार एक तर्कवाक्य के दो छोर होते हैं । (जो इसके तथ्यों के अनुरूप होने पर सत्य और तथ्यों के अनुरूप न होने पर असत्य) । यही तर्कवाक्य का तात्पर्य कहलाता है । [13]

वह पुनः कहता है एक तर्कवाक्य एक मानदण्ड है जिसके संदर्भ में तथ्य व्यवहृत होते हैं । किन्तु नाम के संदर्भ में यह दूसरे प्रकार से है । ठीक उसी प्रकार जैसे एक तीर दूसरे तीर के प्रति उसी अर्थ में अथवा विपरीत अर्थ में व्यवहार करता है । वैसे ही एक तथ्य तर्कवाक्य के प्रति व्यवहार करता है ।[14] इस प्रकार तर्कवाक्य " a Rb " स्वीकार करता है कि a,b के प्रति R को धारण करता है । किन्तु तर्कवाक्य " ~(a R b)" यह स्वीकार करता है कि a, R को b के प्रति धारण नहीं करता । इस प्रकार यदि " aRb " तथ्य का अस्तित्व है तो " aRb " तर्कवाक्य सत्य है और " ~(a Rb) " असत्य है । तर्कवाक्य प और ~प दोनों विपरीत तात्पर्य रखते हैं । किन्तु दोनों के अनुरूप एक ही सत्ता है । (ट्रैक्टे० 4·0621 (3) ।

इस विवरण से सिद्ध होता है कि विटगैंस्टाइन के अनुसार किसी तर्कवाक्य के अर्थ का विश्लेषण करने में हमें अन्ततोगत्वा सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त करना चाहिए । किसी भी तर्कवाक्य का तात्पर्य सरल तर्कवाक्य और तर्कवाक्यीय संयोजकों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । असरल तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के संयोजन हैं। विटगैंस्टाइन कहता है - " मान लिया कि मुझे समस्त सरल तर्कवाक्य दे दिये जाते हैं तो मैं सरल ढंग से पूँछ सकता हूँ कि मैं उन तर्क वाक्यों से किन तर्कवाक्यों की रचना कर सकता हूँ । और मैं समस्त तर्कवाक्यों को रखता हूँ जो उनकी सीमा निर्धारित करता हैं ।" (ट्रैक्टे० 4·51) । यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि सरल तर्कवाक्य किस प्रकार का स्वरूप या ढाँचा रखते हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार वे सत्यवृत्यात्मक संयोजकों के द्वारा संयोजित होते हैं । इस प्रकार समस्त मिश्रित तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं । ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन लिखता है कि एक तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्य की सत्यवृत्ति है ।

§1.1§ विटगैंस्टाइन सरल तर्कवाक्य को अनिवार्य रूप से विध्यात्मक मानता है । रसेल के एक पत्र के प्रत्युत्तर में विटगैंस्टाइन ने यह स्पष्ट किया है कि सरल तर्कवाक्यों का निषेध सरल तर्कवाक्य नहीं हो सकता है ।[15] विटगैंस्टाइन के अनुसार किसी कथन के भावात्मक और अभावात्मक दोनों ही प्रकारों के अनुरूप एक ही तथ्य होता है । वस्तुओं के कुछ संयोजन §तथ्य§ अस्तित्व रखते हैं और वस्तुओं के कुछ संयोजन अस्तित्व नहीं रखते हैं । इस परवर्ती तथ्य को निषेधात्मक तथ्य कहते हैं । किन्तु प्रश्न यह उठता है कि निषेधात्मक तथ्य क्या है ? विटगैंस्टाइन के अनुसार "निषेध" या "नहीं" किसी वस्तु का निर्देश नहीं करता है § ट्रैक्टे0 4.0621§---वह कहता है - कोई भी सत्ता ऐसी नहीं है जो निषेध के चिन्ह § ~ § की संवादी हो । विटगैंस्टाइन यह भी नहीं स्वीकार करता कि निषेधात्मक तथ्य अस्तित्व रहित वस्तुओं के संयोजन हैं । कोई भी ऐसी वस्तु नहीं हो सकती है जो अन-स्तित्वपूर्ण हो । यहाँ पर विटगैंस्टाइन का विचार रसेल के विपरीत है । रसेल के अनुसार विध्यात्मक तथ्यों के सदृश निषेधात्मक तथ्य भी होते हैं । जो निषेधात्मक तर्कवाक्यों के संवादी हैं । किन्तु विटगैंस्टाइन इसे अस्वीकार करता है । विटगैंस्टाइन के अनुसार आणविक तथ्य § Atomic fact § भावात्मक ही होते हैं न कि अभावात्मक । निषेधात्मक वाक्य विध्यात्मक वाक्य की सत्यवृत्ति है । निषेधात्मक तर्कवाक्य की स्वतन्त्र स्थिति नहीं है । अतः सभी सरल तर्कवाक्य भावात्मक होते हैं । उसके अनुसार निषेधात्मक तथ्य एक संभावित तथ्य का केवल अन-स्तित्व है । अस्तित्व और अनस्तित्व युक्त तथ्यें दोनों ही सत् वस्तुओं के संयोजन हैं । पिचर के अनुसार - " एक सत् तथ्य सत् वस्तुओं की एक वास्तविक व्यवस्था है । एक अस्तित्वरहित तथ्य § Non Existence § सत् वस्तुओं की एक अवास्तविक व्यवस्था है ।[16] दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प और ~प दोनों के अनुरूप एक ही तथ्य है । प कहता है कि एक तथ्य का अस्तित्व है और ~प कहता है कि इसका अस्तित्व नहीं है । इसका अर्थ है कि कोई निषेधात्मक तथ्य नहीं है । अतः कोई निषेधात्मक सरल तर्कवाक्य नहीं हो सकता । ऐसा कहने में कोई

व्याघात नहीं है कि तर्कवाक्य तात्पर्य युक्त है और यह तथ्य का प्रतिनिधित्व करता है । सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य अवश्य ही सुनिश्चित होना चाहिए । यदि यह निश्चित नहीं है तो हम कोई भी निश्चित तर्कवाक्य नहीं प्राप्त कर सकते हैं । अतः पूर्ण रूप से विश्लिष्ट सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य निश्चित और सही होता है ।

(iii) सरल तर्कवाक्यों में बाह्य और आन्तरिक निषेध के मध्य कोई भेद नहीं होता । हम कह सकते हैं कि "फ्रांस का राजा गंजा है " का निषेध " फ्रांस का राजा गंजा नहीं है " । यहाँ पर हम आन्तरिक निषेध का भेद बाह्य निषेध से इस प्रकार कर सकते हैं -- " ऐसी बात नहीं है कि फ्रांस का राजा गंजा है"। यहाँ पर दोनों निषेधों में अन्तर है । एन्सकोम्ब ने दिखाया है कि अरस्तू के लिए भी यह एक परेशानी का विषय था । इसी तरह का एक दूसरा उदाहरण है - " प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान है" का आन्तरिक निषेध-" प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान नहीं है" । बाह्य निषेध - "ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान नहीं है" । अरस्तू के लिए यह एक परेशानी का विषय था । यदि "सुकरात बुद्धिमान है" असत्य है तो " सुकरात बुद्धिमान नहीं है " सत्य है । इसके विपरीत "यदि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान है " यह असत्य है तो यह सिद्ध नहीं होता कि " प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान नहीं है " । यह सत्य है कि हम कभी-कभी "प्रत्येक नहीं है" को उसी अर्थ में प्रयुक्त करते हैं जिस अर्थ में " ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक " अतः उपर्युक्त संदर्भ में अबुद्धिमान पद का प्रयोग सुविधाजनक होगा । फ्रेगे ने दिखाया है कि इससे यह नहीं समझना चाहिए कि बुद्धिमान के निषेध में विषयवस्तु का निषेध किया जाता है । निषेध पूरे वाक्य का नहीं प्रत्युत एक अंश का है । ऐसा कहना ठीक नहीं है : "चूँकि निषेधात्मक अक्षर वाक्य के अंग के साथ संयोजित हैं, अतः समस्त वाक्य का तात्पर्य निषिद्ध नहीं होता ।" इसके विपरीत वाक्य के भाग से निषेधात्मक अक्षर को संयोजित करके हम सम्पूर्ण वाक्य का निषेध करते हैं ।[17] दूसरे शब्दों में यह वाक्य "प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान है" असत्य कहा जा सकता है । इस

वाक्य के द्वारा कि "प्रत्येक व्यक्ति अबुद्धिमान है । इसके बावजूद "ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमान है" से यह एक भिन्न प्रकार का निषेध है । इन विवादों के होते हुए भी विटगैंस्टाइन के सरल तर्कवाक्य अपने आन्तरिक और बाह्य निषेध में कोई अन्तर नहीं रखते हैं ।

(4) यह विशेषता जैसा कि एन्सकोम्ब ने दिखाया है सरल तर्कवाक्यों को परिभाषित करती है । तर्कवाक्यों के स्वरूप को समझने के लिए नामों के स्वरूप पर विचार करना आवश्यक है । नाम वस्तुओं के प्रतीक हैं । वे वस्तुओं का निर्देश करते हैं । इस सम्बन्ध में तीन प्रश्नों पर विचार करना जरूरी है ।

(1) नाम क्या है ? (What is a name ?) ।

(2) नाम कौन है । किसका है ? (Which is a name ?) ।

(3) हमें नाम की क्या जरूरत है ? (Why do we need a name ?) ।

पहले प्रश्न में दो बातें निहित हैं नाम एक चिन्ह के रूप में और नाम एक प्रतीक के रूप में । सबसे पहले इस प्रश्न का उत्तर देना जरूरी है कि नामों की क्या आवश्यकता है ? सरल तर्कवाक्यों और नामों की आवश्यकता तर्कवाक्य के तात्पर्य का निर्धारण करने के लिए आवश्यक है । इसके अतिरिक्त नामों के माध्यम से ही तर्कवाक्य तथ्य से और उसके द्वारा समस्त तर्कवाक्यों की समग्रता अर्थात् सत्ता से सम्बद्ध होती है । इस प्रकार नामों और वस्तुओं को स्वीकार किये हुए बिना न तो तर्कवाक्य के तात्पर्य का निश्चय और न ही भाषा तथा सत्ता का सम्बन्ध हो सकता है ।

यदि एक तर्कवाक्य का तात्पर्य कोई दूसरी अभिव्यक्ति हो और दूसरे की तीसरी, तो इस क्रम में अनवस्था दोष आता है । यह प्रक्रिया अनन्त तक नहीं चल सकती है । अतः एक ऐसी अवस्था को स्वीकार करना पड़ता है जिसमें तर्कवाक्य का तात्पर्य अन्य तर्कवाक्यों से स्वतन्त्र होता है । ऐसा तर्कवाक्य जिसका तात्पर्य अन्य तर्कवाक्यों से निरपेक्ष हो उसे विटगैंस्टाइन सरल तर्कवाक्य कहता है । ये सरल तर्कवाक्य सुनिश्चित अर्थयुक्त नामों के संघात है । प्रो० स्टेनियस ने नामों को ऐसी

तालियाँ (Keys) के रूप में वर्णित किया है जिनके द्वारा सरल तर्कवाक्य के चित्र-स्वरूप को व्यक्त किया जाता है । स्टेनियस द्वारा नामों को ताली (Keys) का रूपक देना यह सिद्ध करता है कि तर्कवाक्य को समझने के लिए नाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । "नाम का अर्थ वस्तु है । जिसका कि नाम के द्वारा निर्देश किया जाताहै । एक नाम एक ही वस्तु के लिए होता है दूसरानाम दूसरी वस्तु के लिए । इस प्रकार वे एक-दूसरे से संयुक्त होते हैं । किन्तु विटगेंस्टाइन के अनुसार यह कहना भ्रामक है कि नाम तर्कत: तर्कवाक्यों के पूववर्ती हैं । उसके अनुसार भाषा का कार्य जैसा कि ट्रैक्टेटस में निर्दिष्ट है वर्णन करना है, न कि नामकरण करना । विटगेंस्टाइन अपनी नोटबुक में लिखता है कि - " यह निश्चित प्रतीत होता है कि हम सरल वस्तुओं का अनुमान नहीं करते हैं । बल्कि अपेक्षाकृत उन्हें वर्णन के द्वारा जानते हैं ।".[18] इसी बात को प्रकारान्तर से ट्रैक्टेटस में इस प्रकार कहा गया है । "स्पष्ट है कि वाक्यों के विश्लेषण द्वारा हम अनिवार्यत: सरल तर्कवाक्यों तक पहुँचते हैं जो नामों के अव्यवहित सम्बन्ध से बनते है"। (ट्रैक्टे० 4.221) । एक प्रश्न यह उठता है कि नामों को क्यों सरलतम तत्व स्वीकार किया जाता है,न कि सरल तर्कवाक्यों को ; जबकि नाम तर्कवाक्यों के घटक के रूप में ही सार्थक होता है । इस प्रश्न का उत्तर अर्थ के चित्र-सिद्धान्त के संदर्भ में स्पष्ट होता है । यदि नाम के स्थान पर सरल तर्कवाक्य को अन्तिम तत्त्व माना जाय तो प्रत्येक सरल तर्कवाक्य एक तथ्य का नाम होगा । अर्थात् प्रत्येक सरल वाक्य के अनुरूप एक तथ्य होना चाहिए और इस प्रकार असत्यता की व्याख्या नहीं की जा सकेगी । किन्तु असत्यतर्कवाक्य संभव हैं । अत: प्रत्येक तर्कवाक्य तथ्य का नाम नहीं हो सकता । यदि प्रत्येक तर्कवाक्य के अनुरूप तथ्य को माना जाय तो तर्कवाक्य निर्देशात्मक प्रतीक (Designating symbols) हो जाएंगें और इस प्रकार वे तथ्यों का चित्रण नहीं कर सकेगें । आकार की अभेदता के अभाव के कारण विटगेंस्टाइन निरपेक्ष रूप से फ्रेगे के इस विचार का खण्डन करता है कि तर्कवाक्य नाम है ।[19]

नाम एक मूल चिन्ह है और यह एक प्रतीक है जिसका अर्थ है वस्तु । स्टेनियस के अनुसार -" नाम सरल तर्कवाक्यों के घटक के रूप में मूल चिन्ह है और वस्तुओं के निर्देशक के रूप में सरल प्रतीक है । तर्कवाक्यों में निहित सरल चिन्ह नाम कहलाते हैं"।[20] विटगैंस्टाइन नामों को मूल चिन्ह समझता है ताकि उन्हें तार्किक चिन्हों से अलग किया जा सके । तार्किक चिन्हों की परिभाषा दी जा सकती है किन्तु नाम इन अर्थों में मूल चिन्ह हैं कि उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में नाम अपरिभाषेय हैं । केवल नाम ही अर्थयुक्त हैं, जो कि किसी अन्य चिन्ह से स्वतन्त्र हैं । और इसलिए वे अपरोक्ष रूप से वस्तुओं का निर्देश करते हैं । एक चिन्ह के रूप में नामों में कोई अर्थ नहीं होता है । प्रतीकों के अर्थ में ही वे अर्थयुक्त होते हैं । एक चिन्ह भाषा में मूल है एक सरल प्रतीक के रूप में।सरल प्रतीक के रूप में नाम वस्तुओं की ओर संकेत करते हैं । यह उल्लेखनीय है कि नाम संकेत करने के अर्थ में अर्थपूर्ण होते हैं न कि गुणार्थ के अर्थ में । उनमें कोई तात्पर्य नहीं होता । परम्परागत रूप से किया गया गुणार्थ और वस्तु अर्थ के रूप में किया गया अर्थ का भेद नामों पर लागू नहीं होता । एन्सकोम्ब ने इस मत का समर्थन किया है कि"नाम का अर्थ परम्परागत गुणार्थ अथवा वस्तु अर्थ नहीं है । यदि नाम में हमेशा एक तात्पर्य और निर्देश का भेद किया जाय तो तात्पर्य और सत्यता मूल्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है । क्योंकि ऐसी स्थिति में नाम का तात्पर्य एक निर्देश प्रस्तुत करेगा बशर्ते कोई वस्तु उस वर्णन को सन्तुष्ट करती हो, जिसमें कि तात्पर्य को माना जा सके ।[21] ट्रैक्टेटस के इस अंश ने वियना सर्किल के दार्शनिकों पर अर्थ के चित्र-सिद्धान्त की अपेक्षा व्यापक प्रभाव डाला ।

कार्ल पॉपर के अनुसार ट्रैक्टेटस के सरल तर्कवाक्य सरल निरीक्षणात्मक कथन हैं । इस पक्ष में सबसे बड़ा प्रमाण (ट्रैक्टे० 3·261) है । प्रत्येक परिभाषित चिन्ह उन चिन्हों के माध्यम से सार्थक होता है जिनके द्वारा वह परिभाषित होता है । और परिभाषाएं मार्ग निर्देश करती हैं । दो चिन्ह- एक मूल चिन्ह और

एक मूल चिन्ह द्वारा परिभाषित चिन्ह एक ही तरह से निर्दिष्ट नहीं कर सकते। परिभाषाओं द्वारा नामों का परस्पर विच्छेद नहीं किया जा सकता। यहाँ पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि नाम मूल चिन्ह है और विटगैंस्टाइन तार्किक चिन्ह को मूल चिन्ह नहीं मानता था। उसके लिए केवल मूल चिन्ह ही नाम थे। इस प्रकार नाम परिभाषाओं के द्वारा, वाक्यों के द्वारा जिनमें नाम निहित होते हैं,[22] स्पष्ट किये जा सकते हैं। नाम का सबसे स्पष्ट उदाहरण "लाल" शब्द प्रतीत होता है जो कि एक वाक्य के अन्तर्गत कहा गया हो। जैसे – यहाँ एक लाल टुकड़ा है। मान लिया कोई व्यक्ति "लाल" टुकड़े के बारे में सोच रहा हो, जो कि "लाल" शब्द के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु से परिचित हो। यहाँ पर लाल टुकड़ा एक सरल वस्तु है अथवा सरल निरीक्षणात्मक कथन है जैसा कि पॉपर ने निर्दिष्ट किया है। ऐसा लगता है कि सरल तर्कवाक्य केवल निरीक्षण कथन नहीं हैं। प्रत्युत इन्द्रिय प्रदत्त मूलक कथन { Sense datum Statement } हैं। ऐसी मान्यता वियना सर्किल के अनेक सदस्यों और बहुत वर्षों तक कैम्ब्रिज में रही है। एन्सकोम्ब के अनुसार संभव है कि विटगैंस्टाइन ने इसी प्रकार का विचार अपने मन में रखा हो। सरल तर्कवाक्यों के सम्बन्ध में पॉपर के विचार का समर्थन ट्रैक्टेटस में 3•261 और 3•263 के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता है। विटगैंस्टाइन ने ऐसा सुझाव नहीं दिया है कि वह तर्कवाक्य, जिसमें सरल नाम होते हैं और जो उस नाम के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु से परिचित व्यक्ति के लिए उस नाम की परिभाषा देता है, उसे अवश्य ही सरल तर्कवाक्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह एक "लाल" टुकड़ा है इस प्रकार का दिया गया उदाहरण सरल तर्कवाक्य नहीं है। ट्रैक्टेटस के द्वारा ऐसा सिद्ध किया जा सकता है। ट्रैक्टे० 6•3751 के अनुसार स्पष्ट है कि दो मूल तर्कवाक्यों का तार्किक उत्पाद न तो व्याघाती वाक्य हो सकता है और न पुनरूक्ति कथन। यह कहना कि दृष्टि क्षेत्र का कोई बिन्दु एक ही समय दो वर्णों वाला है एक व्याघात है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह एक लाल टुकड़ा है, एक सरल तर्कवाक्य नहीं हो सकता। सरल तर्कवाक्यों को सरल निरीक्षण कथन मानना विटगैंस्टाइन द्वारा प्रतिपादित

सरल तर्कवाक्यों के स्वरूप के विपरीत है । क्योंकि कोई तर्कवाक्य जिसे तर्कतः सरल निरीक्षण कथन कहा जा सके, से विसंगत एक दूसरा निरीक्षण कथन मिल सकता है जो कि इसके विपरीत होते हुए भी तर्कतः इसके समान हो सकता है । अतः जो कुछ भी हो सरल तर्कवाक्य निरीक्षणात्मक कथन नहीं हो सकते । इस प्रकार पॉपर की मान्यता विटगेंस्टाइन के सिद्धान्त के विपरीत है । (ट्रैक्टे० 5·5562) । यदि हम विशुद्ध तार्किक आधार पर यह जानते हैं कि मूल तर्कवाक्य अवश्य ही प्रदत्त हैं तो अवश्य ही यह प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात होना चाहिए,जो वाक्यों को उनके अविश्लेषित रूप में समझ लेता है । इससे स्पष्ट है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार हम सरल तर्कवाक्यों को तार्किक आधार पर जानते हैं । दूसरे शब्दों में अनुमान और अर्थ की यह विशेषता है कि उनके लिए सरल तर्कवाक्यों का होना आवश्यक है । और इस प्रकार सरल नाम और सरल वस्तुएँ भी उनके लिए आवश्यक हैं'।

विटगेंस्टाइन के नाम-सिद्धान्त के समक्ष कठिनाई यह है कि इसके अनुसार किसी तर्कवाक्य के अर्थ का अस्तित्व उसके सत्य होने की एक शर्त है और इसका अनास्तित्व उसके असत्य होने की शर्त है । तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य इस बात पर निर्भर है कि एक तथ्य सत्ता से सम्बन्धित है अथवा नहीं । किन्तु तर्कवाक्य तथ्य का निर्देश करता है या नहीं । विटगेंस्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य का तात्पर्य (Sense) एक संभावित तथ्य है । क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तर्कवाक्य की सत्ता तब भी अवश्य रहनी चाहिए,जब वह तर्कवाक्य असत्य है । और P (Proposition) का अस्तित्व नहीं रहता है । इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए- मान लीजिए कि p एक सरल तर्कवाक्य है तो कौन सी शर्तें पूरी होनी चाहिए,जबकि p के अनुरूप कोई तथ्य है । मान लीजिए कि P स्वीकार करता है " aRb " । ऐसी स्थिति में तर्कवाक्य के तत्व या घटकों (Elements) को a और b वस्तुओं का निर्देश अवश्य करना चाहिए । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन की मान्यता थी कि उस वस्तु का अस्तित्व जिसका कि निर्देश (Reference)

दिया जाता है वह निर्देश का पूर्ववर्ती है अथवा निर्देश की पूर्वमान्यता § आवश्यक शर्त§ है । इस प्रकार यदि p तात्पर्य रखता है तो a और b को अवश्य होना चाहिए । किन्तु इसकी आवश्यकता रखना, p के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं §aRb तथ्य का होना जरूरी नहीं है § । a और b का निर्देश करने के अतिरिक्त P को सम्बन्ध R का संकेत अवश्य करना चाहिए और सम्बन्ध को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि यह सम्बन्ध a और b के मध्य निहित हो । सम्बन्ध के लिए R के अस्तित्व की पूर्वमान्यता आवश्यक नहीं है । क्योंकि विटगैंस्टाइन के अनुसार सम्बन्ध तथ्यों के वास्तविक घटक नहीं हैं । एक स्थिति §तथ्य§ के अन्तर्गत वस्तुएँ जंजीर की कड़ियों के सदृश एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं । एक जंजीर का प्रासंगिक आकार या स्वरूप यह है कि इसके घटक § अंग या कड़ियाँ§ कोई ऐसे विशेष घटक नहीं हैं जिसका कार्य या व्यापार एक कड़ी को दूसरी कड़ी से जोड़ना है । श्रृंखला केवल अपनी कड़ियों से सम्बन्धित है न कि कड़ियों और उनके दैशिक सम्बन्धों से । यह तथ्य कि ये कड़ियाँ इस-इस प्रकार से एक-दूसरे से जुड़ी हैं अथवा लटकती हैं, किसी वस्तु से सम्बन्धित नहीं है ।[23] विटगैंस्टाइन के कहने का अर्थ यह है कि कड़ियों के बीच के सम्बन्ध ऐसी वस्तुएँ नहीं हैं जिससे कि श्रृंखला बनी हो § जिसका कि जंजीर संग्रह है § । कड़ियों के बीच के दैशिक सम्बन्ध इस प्रकार हैं जिनमें कड़ियाँ साथ-साथ रहती §लटकती§ हैं । किन्तु ऐसे सम्बन्ध नहीं हैं जो उनको §कड़ियों को§ साथ-साथ सम्बद्ध करते हैं । इसी प्रकार वस्तुस्थिति में ऐसा कोई तत्व या अंग नहीं है जिसे वस्तुओं के बीच का सम्बन्ध कहा जा सके । वस्तुस्थिति में यदि यह वास्तविक है तो a, b से जुड़ा हुआ है या a, b से एक निश्चित तरीके से संग्रथित है । किन्तु तथ्य § या वस्तुस्थितियाँ§ केवल दो घटक रखता है a और b । यही कारण है कि यह कहना कि a R b, a और b के होने की अपेक्षा रखता है ; किन्तु a और b को सम्बन्धित करने के लिए सम्बन्ध के वास्तविक अस्तित्व की अपेक्षा नहीं रखता है । § ट्रैक्टे0 2012।- 2014। तक § ।[24]

यदि a, b से सम्बन्धित न हो सकता तो तर्कवाक्य एक संभावित तथ्य की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता । अतः वह तात्पर्ययुक्त नहीं हो सकता ।

§ट्रैक्टे0- 3.02§ aRb , a और b वस्तुओं की प्रागपेक्षा रखता है ताकि एक निश्चित संघात की संरचना करने में सक्षम हो । एक निश्चित संघात की संरचना के लिए aRb ,a और b वस्तु की प्रागपेक्षा रखता है किन्तु R के होने की नहीं । इस प्रकार यह नाम सिद्धान्त की कठिनाइयों को किसी तर्कवाक्य को तात्पर्य देने के लिए, बिना किसी अनस्तित्व युक्त तर्कवाक्य के होने की पूर्वमान्यता का सहारा लिए, दूर करता है । ऐसा कहने में हम एक ऐसी स्थिति के विषय में विचार कर रहे हैं जिसमें p एक सरल तर्कवाक्य है । किन्तु चूँकि असरल तर्कवाक्य सत्य तर्कवाक्यों की सत्यवृत्ति है । अतः बोगेन का कहना है कि ऐसा कोई कारण नहीं है जिससे सोचा जा सके कि माइ-नांग द्वारा प्रतिपादित तथ्य के रूपों का आह्वान किया जा सके, ताकि मिश्रित या असरल तर्कवाक्यों के तात्पर्य को सुरक्षित रखा जा सके ।

जैसा कि देखा जा चुका है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य का विश्लेषण करते हुए अन्तिम अवस्था में हम सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त करते हैं । इस प्रकार किसी तर्कवाक्य का तात्पर्य पूर्णरूप से तर्कवाक्यात्मक संयोजनों § Propositional Connectives § के द्वारा ही बताया जा सकता है । क्योंकि समस्त असरल तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के संघात है । इन्हें मिश्रित तर्कवाक्य §Molecular propositions § कहा जा सकता है जिनका ढाँचा अन्ततोगत्वा सरल तर्कवाक्यों अथवा पारमाणविक तर्कवाक्यों के द्वारा ही निर्धारित होता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार " मान लीजिए मेरे समक्ष सभी मूलवाक्य प्रस्तुत रहें, तो सरलतापूर्वक पूँछा जा सकता है मैं उनसे कौन-कौन से वाक्य बना सकता हूँ और ये ही सभी वाक्य हैं तथा इसलिए वे सीमित है" । §ट्रैक्टे0 4.51§ ।

यह प्रश्न उठता है कि किस तरह सरल तर्कवाक्य जटिल तर्कवाक्यों §मिश्रित तर्कवाक्यों § को उत्पन्न करने के लिए संयुक्त होते हैं । विटगेंस्टाइन ने इस सन्दर्भ में बताया है कि सभी मिश्रित तर्कवाक्य सत्य वृत्यात्मक संयोजकों के द्वारा संयुक्त होते हैं । इस प्रकार सभी मिश्रित तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के

सत्यताफलन हैं । पिचर के अनुसार यह सिद्धान्त ट्रैक्टेटस का एक प्रमुख सिद्धान्त है ।[25] ट्रैक्टेटस के अनुसार एक तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों का सत्यताफलन है । एक संयुक्त तर्कवाक्य कई सरल तर्कवाक्यों जैसे $प_1$, $प_2$, $प_3$ आदि का सत्यता-फलन है । "और" (And) एक सत्यता वृत्यात्मक संयोजक (Truth functional Connective) है क्योंकि यदि हम संयुक्त तर्कवाक्यों के घटक स्वरूप प्रत्येक सरल तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य जानते हैं तो हम जटिल तर्कवाक्यों का भी सत्यता मूल्य जानते हैं । यदि जटिल तर्कवाक्य के एक अथवा दोनों घटक असत्य हैं अथवा दोनों घटक सत्य हैं, तो तदनुसार जटिल तर्कवाक्य भी सत्य या असत्य होगा । निषेध कुछ विचित्र ढंग से एक सत्यताफलनात्मक संयोजक का कार्य करता है । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि निषेध एक तर्कवाक्य को दूसरे तर्कवाक्य से सम्बन्धित (जोड़ता) नहीं करता । फिर भी इसे सुविधा के लिए सत्यताफलनात्मक संयोजक के रूप में स्वीकार किया गया है । स्वीकारात्मक तर्कवाक्य P का सत्यता मूल्य तत्सम्बन्धी निषेधात्मक तर्कवाक्य ~P का सत्यता मूल्य निर्धारित करता है । यदि P सत्य है तो ~P असत्य होगा । और यदि P असत्य है तो ~P सत्य होगा । इस प्रकार ~P, P का सत्यता-फलन है । विटगैंस्टाइन के अनुसार सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यताफलन हैं । सरल तर्कवाक्य स्वयं अपना सत्यता-फलन है । निषेधात्मक तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्य नहीं हो सकता है क्योंकि यह अन्य सरल तर्कवाक्यों से स्वतन्त्र नहीं हैं । P और ~P एक ही स्थिति का वर्णन करते हैं । अन्तर इतना है कि P स्थिति के भाव का और ~P उसके अभाव का वर्णन करता है । यहाँ विटगैंस्टाइन का सिद्धान्त रसेल से भिन्न है । क्योंकि रसेल ने निषेधात्मक तर्कवाक्यों के अनुरूप निषेधात्मक तथ्यों की सत्ता स्वीकार किया है । विटगैंस्टाइन के अनुसार "नहीं" या "निषेध" नाम नहीं हैं । यदि निषेध को नाम माना जाय तो किसी तर्कवाक्य का द्विधा निषेध (~~P) मूल तर्कवाक्य P से भिन्न होगा । क्योंकि ~~P में P की अपेक्षा दो वस्तुएं अधिक होंगी । यदि कोई ऐसा पदार्थ है जिसे निषेध कहा जाय तो यह आवश्यक होगा कि ~~P, P

से कुछ भिन्न बात व्यक्त करता है । क्योंकि तब जब कि एक वाक्य ~ का प्रयोग करेगा तो दूसरा नहीं करेगा (ट्रैक्टे० 5·45) । विट्गेंस्टाइन के अनुसार जो संयोजक सत्यता फलक तर्कवाक्य देता है वह सत्यता फलनात्मक संयोजक कहलाता है । ' and ', 'Or', 'Neither', 'nor', 'Not','both' आदि सत्यता फलनात्मक संयोजक कहलाते हैं । विट्गेंस्टाइन ने एच०एम० शेफर के Stroke function का प्रयोग किया है । Stroke function का अर्थ विट्गेंस्टाइन ने Neither--nor लिया था । वह सभी संयोजकों को Stroke function के द्वारा परिभाषित करता है । p/q को निम्नलिखित ढंग से पढ़ा जा सकता है —

(i) p/q ≡ neither p nor q (न तो प न फ)

(ii) p/q ≡ not p and not q (प नहीं और फ नहीं)

ट्रैक्टेटस में इस सिद्धान्त के लिए कोई वास्तविक प्रमाण नहीं मिलता है कि सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं । एक जटिल तर्कवाक्य के तात्पर्य को कहने के लिए सरल तर्कवाक्यों की एक लम्बी सूची पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है । सरल तर्कवाक्यों को किसी व्यवस्था में एक-दूसरे से सम्बद्ध होना चाहिए । किन्तु विट्गेंस्टाइन स्पष्ट रूप से कभी नहीं कहता कि सभी आवश्यक संयोजक क्यों अनिवार्य रूप से सत्यता फलनात्मक होने चाहिए । फिर भी उसके ऐसा सोचने का कारण इस प्रकार है ।

(i) उसने सोचा कि वह ऐसा प्रदर्शित कर सकता है कि सामान्य तर्कवाक्य विशेष तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं ।

(ii) उसने अवश्य सोचा था कि जटिल व्यक्तियों के बारे में विशेष तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यताफलन हैं ।

§।।।§ उन स्थितियों में जहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि एक तर्कवाक्य दूसरे तर्कवाक्य में सत्यताफलन की एक युक्ति से भिन्न रूप में घटित होता है तो इसे दिखाया जा सकता है कि आभास भ्रामक है । रसेल के अनुसार सामान्य वाक्य के अनुरूप सामान्य तथ्य होता है । जैसे कि विशेष वाक्यों के अनुरूप प्राकृतिक तथ्य होते हैं । परन्तु विटगेंस्टाइन सामान्य तथ्यों की सत्ता को नहीं स्वीकार करता । सामान्य तथ्यों की सत्ता न स्वीकार करने के कारण वह सामान्य तर्क वाक्यों को भी सरल तर्कवाक्यों की सत्यतावृत्ति मानता है । उसके अनुसार जिस प्रकार अन्य वाक्य सरल तर्कवाक्यों की सत्यवृत्ति हैं । उसी प्रकार सामान्य तर्क वाक्य भी सरल तर्कवाक्यों की सत्य वृत्ति है । उदाहरण के लिए प्रत्येक वस्तु प है । इस सामान्य तर्कवाक्य को हम अनन्त संयोजन के रूप में विश्लेषित कर सकते हैं । जैसे - एक वस्तु अ है, दूसरी वस्तु अ है, तीसरी वस्तु अ है इत्यादि । इस प्रकार से जो वाक्य प्राप्त होंगे वे सरल वाक्य होंगे । यह सामान्य वाक्य तभी सत्य होगा, जब उसके विश्लेषण से प्राप्त सभी सरल तर्कवाक्य सत्य हों । इस प्रकार अंशव्यापी अस्तित्ववाची वाक्य का उदाहरण लिया जा सकता है । कुछ वस्तुएँ अ हैं इसका विश्लेषण अनन्त वियोजन के रूप में संभव है या तो यह वस्तु अ है अथवा वह वस्तु अ है । इनमें से एक भी वाक्य सत्य है तो उपर्युक्त वाक्य भी सत्य होगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्य वाक्यों की तरह सामान्य वाक्य भी सत्यवृत्यात्मक हैं । किन्तु अन्तर यह है -- जहाँ अन्य वाक्यों को पृथक्-पृथक् रूप से निरूपित किया जाता है वहाँ सामान्य वाक्यों में एक ही फलक लिखा जाता है । अन्य वाक्यों में नाम स्पष्ट रूप से प्रयुक्त होता है किन्तु सामान्य वाक्य में नाम स्पष्ट नहीं होता । जैसे - §x§ Fx । यदि गणना के द्वारा दिए हुए सरल तर्कवाक्यों के एक समुच्चय और उनको तर्कवाक्यात्मक वृत्ति के दिए हुए मूल के रूप में दोनों के बीच के भेद को महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता है तो सामान्य और मिश्रित तर्कवाक्यों को प्रस्तुत करना संभव है ।[26]

विटगैंस्टाइन के अनुसार (x) Fx जैसे तर्कवाक्य का सत्य तार्किक उत्पाद (Logical Product) सत्य हैं। फ्रेगे ने अपने सर्वव्यापी परिमाणक के साथ निषेध के चिन्ह का प्रयोग किया है। (x) Fx की परिभाषा ~ (x) ~Fx के रूप में दे सकते हैं। किन्तु विशेष निर्णयों की व्याख्या के लिए भी यही बात लागू होगी। विटगैंस्टाइन के अनुसार (x) Fx और (∃x) Fx को समझना कठिन है। यह चित्रात्मक स्वरूप या विशेषता उनके तर्कवाक्यों के एक समुच्चय की सत्यवृत्ति होने से सम्बन्धित है। एफ0 पी0 रैमजे के अनुसार विटगैंस्टाइन का मत इस बात की व्याख्या करता है कि कैसे Fa का अनुमान (x) Fx से किया जा सकता है और एक ऐसा x है कि Fx से Fa निगमित होता है। वैकल्पिक सिद्धान्त कि एक ऐसा x है। जैसे Fx। इसे F(f) के आकार का एक परमाणविक तर्कवाक्य समझा जाना चाहिए। यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से अस्पष्ट है।[27] वास्तव में विटगैंस्टाइन ने मान लिया था कि सम्पूर्ण भाषा सत्यता फलनात्मक है। यह निर्णय उसके चित्र-सिद्धान्त का अनिवार्य तार्किक परिणाम है। किन्तु सम्पूर्ण भाषा, विशेषकर साधारण भाषा का बहुत बड़ा भाग सत्यता फलनात्मक नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिये कारणात्मक सम्बन्ध बताने वाले कथन सत्यताफलनात्मक नहीं हैं।

जी0ई0 मूर के अनुसार विटगैंस्टाइन की यह तार्किक भूल है जिसे उसने स्वयं ही ट्रैक्टेटस के संदर्भ में स्वीकार किया है। —— " यह कहना कि (x) Fx, fa • fb • fc .... के साथ तादात्म्य रखता है। और (∃x) Fx fa V fb V fc.... के साथ तादात्म्य रखता है। किन्तु दोनों ही प्रकार के अर्थात् सामान्य और अस्तित्ववाची तर्कवाक्यों के संदर्भ में यह एक भूल थी।[28] विटगैंस्टाइन ने यह भी स्वीकार किया है कि जब उसने ट्रैक्टेटस लिखा तो उसकी मान्यता यह थी कि सभी सामान्य तर्कवाक्य सत्य वृत्तियाँ हैं। किन्तु उसने यह स्वीकार किया कि ऐसी मान्यता का प्रतिपादन दोष पूर्ण था। यह दोष गणित के सन्दर्भों में उभयनिष्ठ है। गणित में भी ऐसा दोष मान्य है कि 1 + 1 + 1............ पूर्ण योग है। किन्तु यह केवल एक सीमित संख्या है।[29] एन्सकोम्ब ने ऐसे तर्कवाक्यों की एक सूची प्रस्तुत किया है जो

विटगैंस्टाइन के इस सिद्धान्त के समक्ष एक अन्तर्विरोध व्यक्त करते हैं । ऐसे उदाहरणों की सूची इस प्रकार हैं ---- जैसे अनुमान के नियम और सामान्यता, तार्किक सत्य, वे कथन जिनमें एक तर्कवाक्य दूसरे को प्रतिपन्न करता है, ऐसे तर्कवाक्य जिनमें सब और कुछ परिमापक लगे होते हैं, वे तर्कवाक्य जो गणित के आधार स्वरूप हैं, सम्भावना,असम्भावना,अनिवार्यता, विशेष तर्कवाक्यों की निश्चयता से सम्बन्धित कथन, तादात्मय से सम्बन्धित कथन, वाक्यों के व्यापार को व्यक्त करने वाले कथन, देश एवं काल से सम्बन्धित तर्कवाक्य , आत्म केन्द्रित तर्कवाक्य, जगत् से सम्बन्धित कथन ईश्वर एवं जीवन से सम्बन्धित तर्कवाक्य - इत्यादि ।[30]

वह सिद्धान्त जो कि इस बात की अपेक्षा रखता है कि सभी सार्थक तर्कवाक्य दूसरे तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं विटगैंस्टाइन का प्रसिद्ध चित्र-सिद्धान्त है । रसेल के अनुसार विटगैंस्टाइन इस समस्या से सम्बन्धित है कि एक तथ्य का दूसरे तथ्य से क्या सम्बन्ध होना चाहिए ताकि वह उस व्यवस्था के लिए एक प्रतीक होने में समर्थ हो सके । वाक्य और तथ्य के आकार में कुछ सामान्य तत्व उभयनिष्ठ होना चाहिए । यह विटगैंस्टाइन का एक सबसे मौलिक सिद्धान्त है जो विटगैंस्टाइन के चित्र-सिद्धान्त में निहित है । यदि तर्कवाक्य सत्य है तो तथ्य का अस्तित्व होता है और इसलिए उसे तथ्य कहा जाता है । यदि तर्कवाक्य असत्य होता है तो तथ्य की सत्ता नहीं रहती है । और इसलिए यह एक तथ्य नहीं है ।[31]

सत्यता-फलन सिद्धान्त का एक परिणाम यह है कि जगत पारमाणविक तथ्यों में विभक्त होता है । रसेल के अनुसार सामान्य तर्कवाक्य विशेष तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन नहीं हैं । अतः उसने ऐसे सामान्य तथ्यों की सत्ता को स्वीकार किया है जो परमाणविक तथ्यों की मिश्रित संरचनाएं नहीं हैं । ... दूसरे शब्दों में सामान्य तर्कवाक्यों के अनुरूप सामान्य तथ्य होते हैं । इस प्रकार रसेल ने सामान्य तथ्यों को विशेष तथ्यों से भिन्न बताया ।[32]

जैसा कि विदित है कि विटगेंस्टाइन ने सामान्य और निषेधात्मक तथ्यों की सत्ता को अस्वीकार किया है । विटगेंस्टाइन के दार्शनिक सिद्धान्त को भी तार्किक परमाणुवाद कहा गया है । दर्शन के क्षेत्र में इस पद का प्रयोग सबसे पहले रसेल ने किया । विटगेंस्टाइन का तार्किक परमाणुवाद तर्कवाक्यों का सिद्धान्त है जो इस मान्यता पर आधारित है कि सरल तर्कवाक्य पारमाणविक होते हैं क्योंकि उनका पुनः अन्य मूल तर्कवाक्यों में विश्लेषण नहीं किया जा सकता है । इन सरल तर्कवाक्यों की विशेषताओं का उल्लेख जैसा कि पहले किया जा चुका है विटगेंस्टाइन ने ट्रैक्टेटस 2·061, 2·062, 5·134, 4·211 में किया है । यह भी उल्लेखनीय है कि विटगेंस्टाइन ने दो सरल तर्कवाक्यों को परस्पर विपरीत नहीं माना है । यह संभव है कि यदि एक सत्य है तो दूसरा असत्य हो । किन्तु वे दोनों ही असत्य हो सकते हैं । बाद में विटगेंस्टाइन ने इस विचार का परित्याग कर दिया कि कोई भी सरल तर्कवाक्य विपरीत नहीं हो सकता हैं । फिर भी उसने माना कि सरल तर्कवाक्य परस्पर व्याघाती नहीं हो सकते हैं ।[33]

यहाँ पर एक समस्या यह है कि क्या ऐसा कहना ठीक है कि सरल तर्कवाक्य अपने अनुरूप तथ्यों के चित्र हैं ? इस समस्या पर सविस्तार विचार अगले अध्याय के चित्र-सिद्धान्त के अन्तर्गत करना प्रासंगिक होगा ।

विटगेंस्टाइन के अनुसार केवल तीन प्रकार के तर्कवाक्य हो सकते हैं —

(I) पुनरूक्ति तर्कवाक्य ।

(II) व्याघाती तर्कवाक्य ।

(III) वर्णनात्मक तर्कवाक्य ।

पुनरूक्ति और व्याघाती कथन कोई नयी सूचना नहीं देते । विटगेंस्टाइन की मान्यतानुसार तर्कशास्त्र के तर्कवाक्य पुनरूक्तियाँ हैं । (ट्रैक्टे० 6·1) वे कुछ कहते नहीं अर्थात् कोई नयी सूचना नहीं देते । (ट्रैक्टे० 6·11) । वे विशुद्ध रूप से आकारिक (औपचारिक) हैं (ट्रैक्टे० 6·111) । वे किसी तथ्य का वर्णन नहीं करते हैं ।

अतः वे तथ्यों से स्वतन्त्र होते हैं । किन्तु उनसे जगत् का तार्किक आकार व्यक्त होता है । विटगेंस्टाइन ने पुनरूक्ति और व्याघाती कथनों को दो अति स्थितियां बताया है । पुनरूक्ति कथन वे हैं जब किसी वाक्य का सत्यता मूल्य सभी संभावनाओं के लिए सत्य होता है । जैसे प अथवा प और प अथवा ~ प । इसके विपरीत जब किसी वाक्य का सत्यता मूल्य सभी संभावनाओं के लिए असत्य होता है तब उसे व्याघात कहा जाता है । उसके अनुसार तर्कशास्त्र के कथन पुनरूक्ति हैं और गणित के कथन समीकरण हैं । वे किसी सत्ता के चित्र नहीं हैं । अतः विटगेंस्टाइन उन्हें अर्थशून्य (Senseless) कहता है। किन्तु निरर्थक (Nonsense) नहीं । क्योंकि उनसे भाषा का तार्किक आकार ज्ञात होता है । विटगेंस्टाइन ने अर्थशून्य और निरर्थक तर्कवाक्यों में भेद किया है । केवल वे ही तर्कवाक्य सार्थक हैं जो वास्तविक अथवा संभावित तथ्यों का चित्रण करते हैं । केवल वर्णनात्मक तर्कवाक्य ही अर्थपूर्ण होते हैं और ऐसे सभी तर्कवाक्य अनुभव मूलक हैं । (ट्रैक्टे० 4·462) । पुनरूक्ति और व्याघात सत्ता के चित्र नहीं हैं । वे किसी भी संभव वस्तुस्थिति को रूपायित नहीं करते । क्योंकि प्रथम प्रत्येक संभव वस्तुस्थिति को स्वीकार करता है जबकि दूसरा किसी को भी नहीं । (ट्रैक्टे० 6·463) । पुनरूक्ति सत्ता को समस्त अनन्त देश प्रदान करता है । व्याघात समस्त देश को आपूरित करता है और सत्ता को कोई जगह नहींदेता । अतः दोनों में से कोई भी सत्ता को किसी तरह निश्चित नहीं कर पाता हैं । इसी प्रकार ट्रैक्टे० 4·466, 5·101, 4·461 इत्यादि भी उल्लेखनीय हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार वर्णनात्मक कथन सार्थक होते हैं । क्योंकि उनके अनुरूप या तो कोई तथ्य होता है अथवा नहीं होता है अथवा वे या तो सत्य होते हैं या असत्य होते हैं । ऐसे कथन अनुभव पर आधारित होते हैं । यद्यपि ये अनुभव के अपरोक्ष वर्णन नहीं हैं । प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त होने वाले कथन ऐसे ही होते हैं । इसी प्रकार विटगेंस्टाइन के अनुसार समस्त विचार तथ्यों तक सीमित हैं । (ट्रैक्टे० 4) में विटगेंस्टाइन कहता है — एक विचार अर्थयुक्त तर्कवाक्य है । इस प्रकार भाषा की सीमा हमारे

विचारों की सीमा है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि भाषा और विचार केवल तथ्यों तक सीमित हैं । यही कारण है कि विटगेंस्टाइन ट्रैक्टे0 4.11 में कहता है " सरल तर्कवाक्यों की समग्रता ही समस्त प्राकृतिक विज्ञान हैं "। वह पुनः ट्रैक्टे0 6.53 में कहता है " दर्शनशास्त्र की सही विधि यह होगी कि जो कुछ कहा जा सके, उसके अतिरिक्त और कुछ न कहना, जैसे -- प्राकृतिक विज्ञानों के तर्कवाक्य इत्यादि "। विटगेंस्टाइन ने अपने इस दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर इस मान्यता का प्रतिपादन किया कि तर्कवाक्य कोई भी तथ्यों अथवा वैचारिक धरातल से ऊँची चीज का वर्णन नहीं कर सकते हैं । नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, तत्वमीमांसा आदि से सम्बन्धित कथन अनुभवातिक्रामक हैं । अतः वे निरर्थक हैं । इसी प्रकार विटगेंस्टाइन ने तत्वमीमांसीय, नीतिशास्त्रीय और सौन्दर्यशास्त्रीय निर्णयों को निरर्थक कहा । सत्यता के सत्यापन सिद्धान्त का बीज विटगेंस्टाइन की इसी दार्शनिक विचारधारा के द्वारा प्रेरित हुआ, जिसके आधार पर आगे चल कर तार्किक भाववादियों ने तत्वमीमांसा का प्रत्याख्यान करने का प्रयास किया ।

Notes and References

1. Griffin, J., 'Wittgenstein's Logical Atomism' pp.129-30.
2. Dwivedi, D.N., 'A Study of Wittgenstein's Philosophy. pp.55-56.
3. Williams, B. & Montefire, A., (eds.) British Analytic Philosophy London, 1967.
4. Copi, I.M., Objects, Properties and Relations in the Tractatus, Mind Vol. IXVII, No.266 April 1958, pp. 145-55.
5. Dwivedi, D.N., 'A study of Wittgensteins's Pholosophy, p.59.
6. Ayer, A.J., (ed.) Logical Positivism, p.87.
7. Anscombe, G.E.M., 'An Introduction to Wittgensteins's Tractatus, p.17.
8. Strawson,P.F., 'An Introduction to Logical Theory' London, pp. 184-85.
9. Russell, B., 'Introduction to Mathematical Philosophy' p.177.
10. Saxena, L., (ed.) Samkalin Paschatya Darshan p.97.
11. Maslow, A. "A Study in Wittgenstein's Tractatus," p.60.
12. Anscombe,G.E.M., An Introduction to Wittgenstein's Tractatus.
13. Wittgenstein, L., Note books, p. 94.
14. Ibid " " p. 97.
15. Anscombe, G.E.M. 'An Introduction to Wittgensteins's Tractatus', p.34.

16. Pitcher, G., The Philosophy of Wittgenstein, p. 49.

17. Geach & Blackwell, (eds.) Negation Philosophical writings of Gottlob Frege, 1952, p. 131.

18. Wittgenstein, L., Note books, p.50.

19. Ganguly, S.N., Wittgenstein's Tractatus, p.67.

20. Stenius, E. Wittgenstein's Tractatus.

21. Ansombe, G.E.M., An Introduction to Wittgenstein's Tractatus, p. 50.

22. Ibid " p. 26.

23. Rhees, R., (ed.) Philosophiche Bemerkungen, p.303 Blackwell, 1965.

24. Bogen, J., Wittgenstein's Philosophy of Language, Pitzer College, Claremont, California, Routledge and Kegan Paul, New York, Humanities Press, 1972, pp. 26-27.

25. Pitcher, G., The Philosophy of Wittgenstein, p. 57.

26. Black, M. A companion to Wittgenstein's Tractatus, p. 281.

27. Ramsey, F.P., The Foundation of Mathematics, pp.53-54.

28. Moore, G.E., Philosophical Papers, p. 297.

29. Ibid p. 298.

30. Anscombe, G.E.M. An Introduction to Wittgenstein's Tractatus, pp. 79-80.

31. Russell, B. Introduction to Tractatus Logico Philosophicus, p.136.

32. Russell, B. The Philosophy of Logical Atomism, p. 136.

33. Wittgenstein's Article on Some Remarks on Logical form, Pos. Vol. 9, 1929.

द्वितीय अध्याय

तर्कवाक्यों का चित्र-सिद्धान्त

भाषा के सम्बन्ध में विटगैंस्टाइन कई प्रश्न उठाता है जैसे- भाषा की सार्थक इकाई क्या है ? भाषा किस प्रकार सार्थक कथन कर सकती है ? हम कैसे उन तर्कवाक्यों का भी अर्थ समझ लेते हैं, जिसे न हमने सुना है, न पढ़ा है । इसी प्रकार उन तर्कवाक्यों की सत्यता और असत्यता को हम जान लेते हैं, इन सबका निरूपण वह अपने चित्र-सिद्धान्त द्वारा करता है । विटगैंस्टाइन के अनुसार भाषा सत्ता का चित्र है । और चित्र सत्ता का मॉडल है । अतः यह जानना आवश्यक है कि विटगैंस्टाइन के अनुसार चित्र है क्या ? और वह भाषा की सार्थकता को कैसे व्यक्त कर पाता है ? चित्र एक सामान्य प्रत्यय है, जिसके अन्तर्गत कई प्रकार के चित्र, जैसे--भाषा-चित्र, भौतिक चित्र (ग्रामोफोन, रिकार्ड आदि), मानसिक चित्र (विचार) आदि आते हैं । किन्तु ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन का मुख्य उद्देश्य भाषिक चित्रों की व्याख्या करना है ।

चित्र-सिद्धान्त सरल तर्कवाक्यों पर लागू होता है, सभी प्रकार के तर्कवाक्यों पर नहीं । मूल रूप से सरल तर्कवाक्य ही चित्र हैं । अन्य तर्कवाक्य जैसे--साधारण भाषा के तर्कवाक्य, सामान्य तर्कवाक्य, निषेधात्मक तर्कवाक्य सत्ता का चित्रण सरल तर्कवाक्यों के माध्यम से करते हैं । इसे तर्कवाक्यों का चित्र-सिद्धान्त (Picture Theory of propositions) कहा जाता है ।

यह प्रश्न कि तर्कवाक्य का तात्पर्य उसके सत्यता मूल्य से किस प्रकार स्वतन्त्र होता है ?, का उत्तर देना एक कठिन समस्या है । यह सिद्धान्त कि वाक्य का तात्पर्य कोई ऐसी वस्तु है, जिसका अस्तित्व वाक्य से स्वतन्त्र है तथा जिसे अभिव्यक्त किया जाता है, चाहे इसको अभिव्यक्त करने के लिए कोई तर्कवाक्य हो अथवा न हो : तर्कवाक्य अपने तात्पर्य को निर्दिष्ट करता है । इसे तर्कवाक्यों का नाम-सिद्धान्त कहा जा सकता है । नाम-सिद्धान्त के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि तर्कवाक्य

तात्पर्ययुक्त इसलिए होता है क्योंकि यह किसी वस्तु का निर्देश करता है और तर्कवाक्य सत्य तब होता है जब उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु अस्तित्वयुक्त हो । किन्तु ऐसी मान्यता में एक कठिनाई यह है कि "असत्य तर्कवाक्य का कोई निर्देश नहीं होता और इसलिए वह तात्पर्ययुक्त नहीं हो सकता ।" इस कठिनाई से बचने के लिए माइनांग ने इस मान्यता का प्रतिपादन किया कि एक असत्य तर्कवाक्य जिस वस्तु का निर्देश करता है वह वस्तु अस्तित्वयुक्त नहीं होती, किन्तु उसकी सत्ता किसी दूसरे रूप में हो सकती है । माइनांग के अनुसार इस प्रकार के पद उन वस्तुओं की ओर संकेत करते हैं जो सत्ता की परिधि के बाह्य हैं।[1] किन्तु माइनांग के इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में भी कठिनाइयाँ हैं । ऐसी स्थिति में सत्ता के विविध रूपों में इस प्रकार से भेद करना चाहिए ताकि असत्य तर्कवाक्य के निर्देशक को उचित मात्रा में सत् माना जा सके । (...............He must distinguish the various modes of being in such a way as to allow just the right degree of reality to referent of a false proposition) यदि असत्य तर्कवाक्य के निर्देश की सत्ता को बहुत ही कम स्वीकार किया जाता है तो असत्य तर्कवाक्य तात्पर्यहीन हो जाता है । यदि उसकी सत्ता को अधिक स्वीकार किया जाता है तो असत्य तर्कवाक्य भी अस्तित्वयुक्त होगा और इस प्रकार तर्कवाक्य सत्य होगा । यह कठिनाई माइनांग के सिद्धान्त के प्रति आकर्षण को निरस्त कर देती है । नाम-सिद्धान्त के पक्ष में एक अन्य हल यह है कि सत्य स्वीकृति और असत्य स्वीकृति के अनुरूप एक ही अस्तित्ववान् वस्तु को स्वीकार किया जाय । जैसे p और $\sim P$ ऐसे नाम हैं जो एक ही वस्तु का निर्देश करते हैं । किन्तु जो इस वस्तु का निर्देश दो भिन्न तरीकों से करते हैं उनके सत्यता मूल्य में यह भेद होगा कि P इस वस्तु का निर्देश सत्यतापूर्वक करता है और $\sim P$ असत्य तरीके से इसका निर्देश करता है । किन्तु नाम-सिद्धान्त की मान्यता यह है कि P और $\sim P$ एक ही वस्तु का निर्देश करते हैं । एक नाम-सिद्धान्तवादी को अवश्य ही यह स्वीकार करना चाहिए कि दो तर्कवाक्य जो एक ही वस्तु का निर्देश करते हैं उन्हें एक ही तात्पर्य रखना चाहिए । किन्तु यदि इसे स्वीकार कर लियाजाय

तो $\sim p$ वही तात्पर्य व्यक्त करता है जो कि p, और p सत्य है तो जो कुछ $\sim p$ कहता है वह सत्य होगा, न कि असत्य ।[2] विटगैंस्टाइन ने तर्कवाक्य और चित्र की तुलना में अर्थ के नाम-सिद्धान्त को त्याग दिया । उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि मानो तर्कवाक्य एक प्रतिनिधित्यात्मक चित्र हैं । चित्र-सिद्धान्त तर्कवाक्य के तात्पर्य और वे विशेषताएं जिसे एक प्रतिनिधत्यात्मक चित्र का उद्देश्य रखता है, के बीच एक अनुरूपता (साधर्म्यता) है । सत्यता और असत्यता प्रतिनिधत्वमूलक चित्र के ठीक होने अथवा ठीक न होने के अनुरूप होते हैं । दूसरे शब्दों में यदि चित्र तथ्य के अनुरूप है तो तर्कवाक्य सत्य होता है । इसके विपरीत यदि चित्र तथ्य के अनुरूप नहीं होता है तो तर्कवाक्य असत्य होता है । किन्तु ऐसा भी संभव है कि प्रतिनि-धित्यात्मक चित्र एक ऐसे उद्देश्य का चित्रण उन विशेषताओं से युक्त रूप में करें, जो वास्तव में उसमें नहीं हैं ।[3] ट्रैक्टेटस के सरल तर्कवाक्य वस्तुओं के ऐसे संघातों को प्रस्तुत करते हैं जिनके अस्तित्व की गारण्टी ट्रैक्टेटस के तत्वमीमांसा द्वारा दी जाती है । सरल तर्कवाक्य वस्तुस्थिति को स्वीकार करते हैं । वस्तुस्थिति को स्वीकार करना वस्तुओं के संघात को स्वीकार करना है । तर्कवाक्य का तात्पर्य वह है जिसे यह तर्कवाक्य प्रस्तुत करता है अथवा जिसे तर्कवाक्य अभिव्यक्त करता है । यह स्पष्ट नहीं है कि एक तर्कवाक्य के तात्पर्य की ये विशेषताएं तर्कसंगत हैं अथवा नहीं । किन्तु इतना अवश्य है कि इनसे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य वस्तुओं के संघात को प्राप्त करने से ही संभव है । ऐसा प्रतीत होता है कि यदि तर्कवाक्य का तात्पर्य वह है जिसे कि तर्कवाक्य स्वीकार करता है तो सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य वस्तुओं के संघात को प्राप्त करना नहीं हो सकता । जो कुछ एक तर्कवाक्य स्वीकार करता है उसे सत्य अथवा असत्य होना चाहिए । हम कह सकते हैं कि यह सत्य है कि अमुक-अमुक वस्तुओं में एक निश्चित सम्बन्ध हैं । किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार के निश्चित सम्बन्ध सत्य हैं । ऐसा भी नहीं हो सकता कि तर्कवाक्य का तात्पर्य (Sense) वस्तुस्थिति के समान हो । असत्य सरल तर्कवाक्य भी उसी प्रकार तात्पर्ययुक्त होते हैं जैसे कि सत्य तर्कवाक्य । किन्तु यदि एक सरल तर्कवाक्य असत्य है तो उसके अनुरूप कोई वस्तुस्थिति नहीं हो सकती ।

यह वाक्यांश अमुक-अमुक वस्तुओं के बीच में है, एक वस्तुस्थिति का निर्देश करता है न कि सत्य अथवा असत्य का । यह, यह भी नहीं व्यक्त करता कि सरल तर्कवाक्य क्या स्वीकार करता है । बोगेन के अनुसार ऐसा स्वाभाविक है कि सामान्य रूप में तर्कवाक्य का तात्पर्य एक संभावित तथ्य है ।* सरल तर्कवाक्य को तात्पर्ययुक्त कहने का अर्थ है कि अमुक-अमुक प्रकार की वस्तुस्थिति है । शेडर के अनुसार यह व्याख्या ट्रैक्टेटस के उन उद्धरणों के विरोध में है जिनमें विटगेंस्टाइन ने सुझाव दिया है कि तर्कवाक्य का तात्पर्य दिखाया जाता है । उदाहरण के लिए - वाक्य अपना तात्पर्य प्रदर्शित करता है । वाक्य प्रदर्शित करता है कि वस्तुस्थिति कैसी है । यदि वह सत्य है और वह कहता है कि वस्तुस्थिति इस तरह है । (ट्रैक्टे0 4·022) । कठिनाई यह है कि तर्कवाक्य का तात्पर्य कुछ ऐसी वस्तु है, जिसे कहा जाता है । और कहना दिखाने से भिन्न होता है। किन्तु विटगेंस्टाइन कहता है कि तर्कवाक्य के द्वारा जो कुछ कहा जाता है उसे इसके द्वारा दिखाया भी जा सकता है । अतः शेडर का आक्षेप निरस्त हो जाता है । (ट्रैक्टे0 4·461) - वाक्य जो कहता है, उसे प्रदर्शित करता है" । " पुनरूक्त और व्याघात, कि वे कुछ नहीं कहते " ।[4]

असरल तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों की सत्यवृत्तियाँ हैं । यदि सरल तर्कवाक्य चित्र हैं तो ऐसा सोचने के लिए किसी अन्य कारण की अपेक्षा नहीं है कि केवल एक सत्य तर्कवाक्य ही तात्पर्ययुक्त हो सकता है । एक संभावित वस्तुस्थिति रखी जा सकती है । तर्कवाक्य के तत्वों को इस ढंग से व्यवस्थित करके, जो दिखाता है कि वस्तुएं कैसे व्यवस्थित की जायेंगी -- यदि तर्कवाक्य सत्य है । यदि सरल तर्कवाक्य का तात्पर्य उसके सत्यता मूल्य से स्वतन्त्र है तो सत्य और उनके सत्यतावृत्ति के लिए तात्पर्य की स्वतन्त्रता की स्थापना आसान होनी चाहिए । विटगेंस्टाइन के सौन्दर्य मूलक पक्ष के तर्कवाक्यों का संग्रह चित्रों के लिए उतना आकर्षक नहीं है जैसा कि उसका भाषा मूलक पक्ष । चित्र इस प्रकार की वस्तुएँ नहीं हैं जैसा कि विटगेंस्टाइन ने तर्कवाक्यों को कहा । इस प्रकार जो एक प्रतिनिधत्यात्मक चित्र प्रदर्शित करता है और वाक्य के तात्पर्य के बीच की साधर्म्यता तर्कसंगत नहीं ठहरती । विटगेंस्टाइन की मान्यतानुसार चित्र वस्तु नहीं है, बल्कि तथ्य है । ऐसा तथ्य है जिसके तत्व एक

निश्चित तरीके से एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं । यदि तर्कवाक्य तथ्य भी हैं तो सड़क के नक्शों के सदृश प्रतिनिधित्यामक चित्र नहीं हो सकते । क्योंकि एक प्रतिनिधत्यामक चित्र एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिशील हो सकता है, किन्तु एक तथ्य ऐसा नहीं है । एक चित्र बनाया जा सकता है और मिटाया जा सकता है, किन्तु तथ्य को बनाया और मिटाया नहीं जा सकता । एक चित्र बदल सकता है किन्तु तथ्य नहीं । इस प्रकार प्रतिनिधत्यात्मक चित्र तथ्य नहीं हैं । हम प्रतिनिधित्यात्मक चित्रों के बारे में तथ्यों का कथन करते हैं ।[5]

जो कुछ तर्कवाक्य कहता है वह इस प्रकार है कि ऐसी वस्तुस्थिति है । यह तर्कवाक्य - " Errol is fencing with douglas junior " " यह तर्क वाक्य कहता है कि Errol is fencing with douglas junior किन्तु इससे सम्बन्धित चित्र भिन्न होगा । इससे सम्बन्धित चित्र यह दिखायेगा कि एक संभावित घेराबंदी खेल (fencing match) यह प्रदर्शित करता है कि एक संभावित घेराबन्दी खेल जिसकी संभावित घटना इसे एक तथ्य बनाती है कि एराल डगलस जूनियर के साथ घेराबन्दी खेल खेल रहा है । इस प्रकार प्रतिनिधत्यात्मक चित्र तथा तर्कवाक्यों के बीच में साधर्म्यता सिद्ध नहीं होती है । उदाहरण के लिए - मान लिया एराल की आदत है कि वह घेराबन्दी खेल का चित्र किसी दूसरे व्यक्ति के साथ खींचता है । ऐसा चित्र पाने पर कोई व्यक्ति कह सकता है कि एराल ने आज घेराबन्दी किया । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि चित्र कुछ कहता है अथवा चित्र सत्य अथवा असत्य है । इसका अर्थ केवल इतना है कि इस चित्र से हम यह अनुमान कर सकते हैं अथवा यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि - "Errol is fencing" यदि एराल घेराबन्दी नहीं करता है तो हमें कहना पड़ेगा कि चित्र यह प्रदर्शित नहीं करता है कि वह घेराबन्दी कर रहा था । इसके विपरीत तर्कवाक्य एक संभावित तथ्य प्रस्तुत करता है कि यह सत्य है अथवा नहीं है । यह कहना कि तर्कवाक्य स्वीकार करता है कि ऐसी अमुक-अमुक स्थिति है । यहाँ पर विटगेंस्टाइन की यह मान्यता नहीं थी कि ऐसी-ऐसी स्थिति है । इसका अनुमान अथवा निष्कर्ष हम तर्कवाक्य से प्राप्त करते हैं । यदि तर्कवाक्यों का सिद्धान्त भाषा की दृष्टि से

सन्तोषजनक है तो उपर्युक्त विवरण से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चित्र-सिद्धान्त सौन्दर्य शास्त्रीय रूप से असन्तोषजनक है । किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालने की आवश्यकता नहीं है कि यह भाषा दर्शन के उद्देश्य के लिए अनुपयुक्त है, जो कि विटगैंस्टाइन के लिए सौन्दर्य शास्त्रीय मान्यताओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण था ।

चित्र और तर्कवाक्य में एक समानता अवश्य है । बिना परीक्षण किये हुए हम यह कह सकते हैं कि एक चित्र क्या प्रदर्शित करता है ? यदि यह ठीक है, और इसी प्रकार हम यह कह सकते हैं कि एक तर्कवाक्य क्या स्वीकार करता है । यह जानने के पहले कि यह सत्य है, दोनों में यही सादृश्य भाषा के चित्र-सिद्धान्त के लिए निर्णायक है । विटगैंस्टाइन कहता है कि चित्र सत्ता का एक मॉडल है । (ट्रैक्टे0 2·12) । किन्तु जैसा कि उसने बाद के वर्षों में पाया - यदि एक चित्र का अर्थ सत्ता का ठीक अथवा गैर ठीक प्रतिनिधि है तो इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि चित्र किस सत्ता का है अथवा किस सत्ता के अंग का है ।[6]

"स्टेनियस के अनुसार वह सत्ता जिसे एक दिया हुआ तर्कवाक्य प्रस्तुत करता है, एक तथ्य है ।" ट्रैक्टे0 2·12 से यह प्रतीत होता है कि विटगैंस्टाइन एक चित्र के बारे में इस प्रकार सोचता है कि यह वास्तविक प्रारूप रखता है; जिसका यह प्रतिनिधत्व करता है -- जिसका हम चित्र बनाते हैं । 2·12 के अनुसार वे तथ्य हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार सत्ता का अर्थ है एक वास्तविक तथ्य । ट्रैक्टे0 2·12 के अनुसार चित्र जिसका मॉडल है वह भी एक तथ्य है । "स्टेनियस के अनुसार एक चित्र एक वास्तविक प्रारूप रखता है का अर्थ उसकी पदावली में यह है कि यह या तो सत्य है या असत्य, एक तथ्य का प्रतिनिधित्व " ।[7]

किन्तु ट्रैक्टे0 2·12 का अर्थ यह भी हो सकता है कि प्रत्येक तर्कवाक्य तथ्यों की समग्रता का प्रतिनिधत्व करता है । यह अपेक्षाकृत अधिक सन्तोषजनक लगता है । मान लिया " aRb " तर्कवाक्य व्यक्त करता है कि एक वस्तु a, b से एक निश्चित सम्बन्ध R रखती है । मान लिया यह तर्कवाक्य असत्य है क्योंकि

a एक दूसरी वस्तु c से R सम्बन्ध रखता है । फिर भी जब कि b एक दूसरी वस्तु D से दूसरा सम्बन्ध R रखता है । स्पष्टतः यहाँ पर यह तथ्य नहीं है कि "aRb " तर्कवाक्य सत्य है, क्योंकि उसके अनुरूप तथ्य नहीं है । यदि अब भी हम यह कहना चाहते हैं कि तर्कवाक्य "aRb " तथ्य "aRb " का प्रारूप (Prototype) है तो हमें पुनः माइनांग की विचारधारा की ओर प्रत्यावर्तन करना होगा, जिसके अनुसार यद्यपि "aRb " अस्तित्वयुक्त नहीं है फिर भी येन-केन-प्रकारेण तर्कवाक्य से तुलनीय है । वास्तव में स्टेनियस द्वारा विटगेंस्टाइन के चित्र-सिद्धान्त की, की गयी व्याख्या तर्कसंगत नहीं है । वह सोचता है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार " aRb " तर्कवाक्य एक तथ्य को असत्यतापूर्वक चित्रित करता है, जिसे दूसरा तर्कवाक्य सत्यतापूर्वक चित्रित करता है ।[8] किन्तु यह विटगेंस्टाइन का मत नहीं हो सकता । उसने ट्रैक्टे0 4.061 में एक "Reductio ad absurdum " " युक्ति दिया है जो इस विचारधारा के विरूद्ध है कि तर्कवाक्य का तात्पर्य तथ्य पर निर्भर करता है । युक्ति इस प्रकार है— यदि तर्कवाक्य का तात्पर्य जो कुछ घटित होता है उस पर निर्भर करता है तो सत्य और असत्य समान स्तर के सम्बन्ध हैं जो चिन्ह और उसके द्वारा जो कुछ चिन्हित (निर्दिष्ट) होता है, के बीच निहित होते हैं । तब ऐसा कहा जा सकेगा कि P सत्य ढंग से उसका निर्देश करता है जिसे ~P असत्य ढंग से निर्दिष्ट करता है आदि । इस प्रकार स्टेनियस विटगेंस्टाइन को एक असन्तोषजनक स्थिति प्रदान करता है । इसके परिणाम स्वरूप हम यह जाने हुए बिना कि तर्क वाक्य सत्य है, उसके सत्यता की जाँच नहीं कर सकते हैं। "aRb " तर्कवाक्य "aRb " तथ्य का ऐसा पूर्ण चित्र है कि यदि ऐसा है कि "aRb " तो मैं ऐसा नहीं देख सकता हूँ कि कौन दूसरा तथ्य संभवतः "aRb " का प्रारूप कहा जा सके । किन्तु हम यह निश्चित नहीं कर सकते हैं कि तथ्य "aRb " तर्कवाक्य "aRb " का प्रारूप है । बिना यह निश्चित किये हुए कि एक ऐसा तथ्य है— बिना यह निश्चित किये हुए कि तर्कवाक्य सत्य है । किन्तु स्टेनियस के विचारानुसार हम नहीं कह सकते हैं कि तर्कवाक्य सत्य है ; सिवाय इसके कि इसकी तुलना इसके प्रारूप से किये बिना । और ऐसा करने के लिए हमें अवश्य जानना चाहिये कि प्रारूप क्या है ? अतः हम

यह नहीं कह सकते हैं कि "aRb" सत्य है — बिना पहले निर्धारित किये हुए कि यह सत्य है अथवा नहीं [9]। विटगेंस्टाइन ऐसी मान्यता रखता है कि तर्कवाक्य सत्ता का एक चित्र अथवा मॉडल है। किन्तु वह सत्ता का चित्र के साथ साम्य नहीं व्यक्त करता। विटगेंस्टाइन सत्ता की व्याख्या जगत्, स्वीकारात्मक तथ्य और निषेधात्मक तथ्य के द्वारा करता है। वह (ट्रैक्टे० 1 से 2·063 तक) कहता है — "जगत् तथ्यों की समग्रता है"। तथ्य वस्तुस्थिति का होना है। तथ्य सरल वस्तुओं के संघात अथवा संभावित संघात हैं। (ट्रैक्टे० 2·01)। यदि हम जानते हैं कि इस-इस प्रकार के सम्बन्ध इस-इस प्रकार की वस्तुओं के बीच में हैं और यह भी कि ये सभी वस्तुस्थिति के हैं तो हम प्रत्येक तथ्य के लिए यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह सम्बन्ध वस्तुओं में नहीं है और इसका होना जगत् का अंग नहीं है। यही कारण है कि विटगेंस्टाइन ने कहा है कि तथ्यों की समग्रता यह निर्धारित करती है कि कौन से तथ्य हैं। जगत् तथ्यों द्वारा निर्धारित है क्योंकि तथ्यों की समग्रता निर्धारित करती है कि वस्तुस्थिति क्या है, और वह सब भी जो वस्तुस्थिति नहीं है। जगत् तथ्यों में विघटित होता है। इनमें से कोई भी वस्तुस्थिति हो सकती है या नहीं हो सकती तथा अन्य सब कुछ वैसा ही रहता है। (ट्रैक्टे० 1·11, 1·12, 1·13, 1·21)। इस प्रकार सत्ता केवल एक तथ्य नहीं है। सत्ता जो कुछ तर्कवाक्य के द्वारा चित्रित होता है अथवा तर्कवाक्य जिसको चित्रित नहीं करता।जो कुछ तर्कवाक्य के विरूद्ध हम जाँचते हैं। दूसरे शब्दों में स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तथ्यों की समग्रता है। किन्तु ट्रैक्टेटस में एक ऐसा उद्धरण है जो इस मत के विरूद्ध है कि सत्ता स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तथ्यों की समग्रता है (ट्रैक्टे० 2·063)। (सत्ता की समग्रता जगत् है)। एक चित्र किसी सत्ता (any) को; जिसका आकार यह रखता है, चित्रित कर सकता है। (ट्रैक्टे० 2·171) यहाँ पर इस उद्धरण में "कोई" (any) शब्द यह निर्दिष्ट करता है कि एक से अधिक सत्ता है और संभवतः स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तथ्यों की केवल एक ही समग्रता है। किन्तु इस समय तथ्यों की समग्रता बहुत सी संभावित सत्ताओं में एक है। यदि ऐसा माना जाय तो

§ट्रैक्टे0 2·17। यह कहने का एक ढंग है कि प्रत्येक संभावित सत्ता चित्र के द्वारा चित्रित की जा सकती है जो कि वांछित आकार रखती है । ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन संभावित सत्ताओं की बात नहीं करता, किन्तु वह संभावित और काल्पनिक जगतों को स्वीकार करता है । §ट्रैक्टे0 2·022 § । यदि सत्ता स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तथ्यों की समग्रता है और जगत् स्वीकारात्मक तथ्यों से बनता है तथा निषेधात्मक तथ्यों को निर्धारित करता है तो इससे सिद्ध होता है कि यदि विभिन्न जगत् संभव हैं तो विभिन्न सत्ताएं भी संभव हैं ।

यह समझना बहुत ही कठिन है कि "सत्ता का कुल योग जगत् है " । §ट्रैक्टे0 2·063 § से विटगैंस्टाइन का क्या अर्थ है ? वह यह नहीं मान सकता कि जगत् और सत्ता पर्यायवाची हैं । क्योंकि वह स्पष्टतया जगत् का तादात्म्य तथ्यों की समग्रता के रूप में करता है । World —> Totality of obtaining the state of affairs § भावात्मक तथ्य § § ट्रैक्टे0 2·04 §. Reality —> Totality of obtaining or nonobtaining the state of affairs §ट्रैक्टे0 2·06 § भावात्मक व निषेधात्मक तथ्यों की समग्रता § = सत्ता ।

जगत् भावात्मक तथ्यों की समग्रता है जबकि सत्ता भावात्मक और अभावात्मक दोनों तथ्यों की समग्रता है । इस उद्धरण का कार्य जगत् और सत्ता की समानता व्यक्त करने के स्थान पर इस सिद्धान्त को सुरक्षित रखना प्रतीत होता है कि इसकी जगत् से तुलना करने के द्वारा एक तर्कवाक्य को सत्यापित अथवा असत्यापित कर सकते हैं । हम एक स्वीकारात्मक अथवा निषेधात्मक तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य तथ्यों केहोने अथवा न होने के द्वारा निर्धारित कर सकते हैं । यदि सत्ता का कुल योग जगत् है तो हम तथ्यों के न होने का निर्धारण तथ्यों के होने से कर सकते हैं । यदि विटगैंस्टाइन का यह कहने में कि जगत् तथ्यों की समग्रता है, यही उद्देश्य था तो ट्रक्टेटस 2·063 से यह सिद्ध नहीं होता है कि तर्कवाक्य जगत् का प्रतिनिधित्व करते हैं । ऐसी स्थिति में इससे यह सिद्ध होता है कि जगत् वह ,जिसे हम देखते हैं।यदि एक तर्कवाक्य सत्य है यह इस सिद्धान्त से सुसंगत है कि तर्कवाक्य सत्ता का प्रतिनिधत्व करता है । इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि कैसे यह माना जाय कि स्वीकारात्मक और निषेधात्मक तथ्य जो कि सत्ता का

निर्माण करते हैं, जगत् है । किन्तु ट्रैक्टेटस 2·063 से यह स्पष्ट होता है कि यह स्टेनियस के इस मत का समर्थन नहीं करता है कि सत्ता एक तथ्य के समान है । और उसका यह निष्कर्ष कि एक तथ्य वह है जिसका तर्कवाक्य के द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है ।

Schwyzer ने प्रतिनिधित्व तथा प्रस्तुति (Represent & Present) शब्दों का प्रयोग एक पारिभाषिक अर्थ में किया है । प्रतिनिधित्यात्मक चित्र के द्वारा जिसका प्रतिनिधत्व होता है ।[10] उसे आदि प्रारूप (Prototype) कहा गया है । चित्र को उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त होने के लिए यह आवश्यक है कि आदि प्रारूप का अस्तित्व हो । प्रतिनिधित्यात्मक चित्र के द्वारा जो प्रस्तुत किया जाता है उसे चित्र चित्रित करता है । उसे चित्र इस प्रकार चित्रित करता है कि उसका आदि प्रारूप समाहित होता है । इस प्रकार एक चित्र ऐसी वस्तु को प्रस्तुत कर सकता है , चाहे उसका अस्तित्व हो अथवा न हो । किन्तु अगर कोई वस्तु नहीं है तो चित्र इसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है ।[11]

चित्र-सिद्धान्त की मान्यतानुसार तर्कवाक्य सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है और एक संभावित तथ्य को प्रस्तुत करता है । इस कारण चित्र-सिद्धान्त सत्य और तात्पर्य की समस्या को हल करने में अन्य वैकल्पिक सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । किसी निष्कर्ष पर पदार्पण करने के पहले इसकी तुलना नाम-सिद्धान्त से करना प्रासंगिक होगा ।

नाम-सिद्धान्त के समक्ष कठिनाई यह है कि इसके अनुसार किसी तर्कवाक्य के अर्थ का अस्तित्व उसके सत्य होने की एक शर्त है और इसका अन-स्तित्व उसके असत्य होने की शर्त है । तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य इस बात पर निर्भर है कि एक तथ्य सत्ता से सम्बन्धित है अथवा नहीं । किन्तु तर्कवाक्य तथ्य का निर्देश करता है या नहीं । विटगैंस्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य का तात्पर्य (Sense) एक संभावित तथ्य है क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि तर्कवाक्य की सत्ता तब भी अवश्य रहनी चाहिए जब वह तर्कवाक्य असत्य है । और p (Proposition)

का अस्तित्व नहीं रहता है इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मान लीजिए कि P एक सरल तर्कवाक्य है तो कौन सी शर्तें पूरी होनी चाहिए,जबकि P के अनुरूप कोई तथ्य है । मान लीजिए कि P स्वीकार करता है "aRb ",ऐसी स्थिति में तर्कवाक्य के तत्त्व या घटकों (Elements) को a और b वस्तुओं का निर्देश अवश्य करना चाहिए । ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन की मान्यता थी कि उस वस्तु का अस्तित्व,जिसका कि निर्देश (Reference) दिया जाता है, वह निर्देश का पूर्ववर्ती है अथवा निर्देश की पूर्वमान्यता (आवश्यक शर्त) है । इस प्रकार यदि P तात्पर्य रखता है तो a और b को अवश्य होना चाहिए किन्तु इसकी आवश्यकता रखना,P के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं (aRb तथ्य का होना जरूरी नहीं है) । a और b का निर्देश करने के अतिरिक्त P को सम्बन्ध R का संकेत अवश्य करना चाहिए । और सम्बन्ध को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि यह सम्बन्ध a और b के मध्य निहित हो । सम्बन्ध के लिए R के अस्तित्व की पूर्वमान्यता आवश्यक नहीं है । क्योंकि विटगैंस्टाइन के अनुसार सम्बन्ध तथ्यों के वास्तविक घटक नहीं हैं । एक स्थिति (तथ्य) के अन्तर्गत वस्तुएं श्रृंखला की कड़ियों के सदृश एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं । एक श्रृंखला का प्रासंगिक आकार या स्वरूप यह है कि इसके घटक (अंग या कड़ियां) कोई ऐसे विशेष घटक नहीं हैं जिसका कार्य या व्यापार एक कड़ी को दूसरी कड़ी से जोड़ना है । श्रृंखला केवल अपनी कड़ियों से सम्बन्धित है न कि कड़ियों और उनके दैशिक सम्बन्धों से । यह तथ्य कि ये कड़ियां इस-इस प्रकार से एक-दूसरे से जुड़ी हैं अथवा लटकती हैं, किसी वस्तु से सम्बन्धित नहीं हैं ।

विटगैंस्टाइन के कहने का अर्थ यह है कि कड़ियों के बीच के सम्बन्ध ऐसी वस्तुएँ नहीं हैं जिससे कि श्रृंखला बनी हो (जिसका कि जंजीर संग्रह है) कड़ियों के बीच के दैशिक सम्बन्ध इस प्रकार हैं जिनमें कड़ियां साथ-साथ रहती (लटकती) हैं । किन्तु ऐसे सम्बन्ध नहीं हैं जो उनको (कड़ियों को) साथ-साथ सम्बद्ध करते हों । इसी प्रकार वस्तुस्थिति में ऐसा कोई तत्त्व या अंग नहीं है जिसे वस्तुओं

के बीच का सम्बन्ध कहा जा सके । वस्तुस्थिति में यदि यह वास्तविक है तो a,b से जुड़ा हुआ है । या a,b से एक निश्चित तरीके से संग्रथित है । किन्तु तथ्य (या वस्तुस्थितियाँ) केवल दो घटक रखता है a और b । यही कारण है कि यह कहना कि aRb , a और b के होने की अपेक्षा रखता है किन्तु a और b को सम्बन्धित करने के लिए सम्बन्ध के वास्तविक अस्तित्व की अपेक्षा नहीं रखता है । ट्रैक्टे0 2·0121 – 2·0141 तक ।[13]

यदि a , b से सम्बन्धित न हो सकता तो तर्कवाक्य एक संभावित तथ्य की अभिव्यक्ति नहीं कर सकता । अतः वह तात्पर्ययुक्त नहीं हो सकता (ट्रैक्टे0 3·02) । एक निश्चित संघात की संरचना के लिए " aRb ", a और b वस्तु की प्रागपेक्षा रखता है, किन्तु R के होने की नहीं । इस प्रकार यह नाम-सिद्धान्त की कठिनाइयों को किसी तर्कवाक्य को तात्पर्य देने के लिए बिना किसी अनस्तित्वयुक्त तर्कवाक्य केहोने की पूर्वमान्यता का सहारा लिए, दूर करता है । ऐसा कहने में हम एक ऐसी स्थिति के विषय में विचार कर रहे हैं जिसमें P एक सरल तर्कवाक्य है । किन्तु चूँकि असरल तर्कवाक्य सत्य तर्कवाक्यों की सत्यवृत्ति है अतः बोगेन का कहना है कि ऐसा कोई कारण नहीं है, जिससे सोचा जा सके कि माइनांग द्वारा प्रतिपादित तथ्य के रूपों का आहवान किया जा सके, ताकि मिश्रित या असरल तर्कवाक्यों के तात्पर्य को सुरक्षित रखा जा सके ।

स्टेनियस की मान्यता में एक कठिनाई यह है कि यह एक असत्य तर्कवाक्य के द्वारा प्रस्तुत आदिप्रारूप का तादात्म्य किससे किया जाय, इसे निर्धारित करने में असफल रहा है । विटगैंस्टाइन के अनुसार P तर्कवाक्य सत्ता का इस प्रकार प्रतिनिधित्व करता है कि P एक तथ्य है । सत्ता भावात्मक और अभावात्मक तथ्यों की समग्रता है । इसका अस्तित्व इस पर निर्भर नहीं करता है कि P वास्तव में हैं । यदि P दूसरे सरल तर्कवाक्यों के साथ असत्य भी हो तो भी एक ऐसी सत्ता होगी, जो निषेधात्मक तथ्यों से सम्बद्ध है । जैसे कि a , b से सम्बन्धित नहीं है । C , d से सम्बन्धित नहीं है इत्यादि । ट्रैक्टेटस 3·11

के अनुसार तर्कवाक्य चिन्ह का प्रयोग सम्भावित स्थिति के प्रक्षेप के रूप में किया जाता है । ट्रैक्टेटस के इस उद्धरण से पता चलता है कि ज्यामितीय प्रक्षेप से उसका सादृश्य है । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन ने दो मौलिक रूप से भिन्न प्रकार की प्रक्षेप पद्धति का उल्लेख किया है । प्रथम प्रकार की पद्धति में चित्र और चित्रित वस्तु में अवयवों की संख्या समान होनी चाहिए । तथ्य में वस्तुओं की संख्या के अनुरूप ही वाक्य में नामों का होना आवश्यक है । तर्कवाक्य में एक नाम, एक वस्तु का निर्देश करता है । दूसरा नाम, दूसरी वस्तु का[14] और वे एक-दूसरे के साथ संग्रथित किये जाते हैं । {ट्रैक्टे0 4•0311} । यह तथ्य कि चिन्ह इस प्रकार व्यवस्थित किये जाते हैं जैसे कि वे हैं और इस प्रकार व्यवस्थित ये चिन्ह प्रक्षेप पद्धति की एक परम्परा के अन्तर्गत यह व्यक्त करते हैं कि यदि तर्कवाक्य सत्य है तो वस्तुएँ किस प्रकार रहती हैं । इस पद्धति को सरल प्रक्षेपण पद्धति कहा गया हैं क्योंकि सरल तर्कवाक्य अपने अनुसार रचे जाते हैं । दोनों प्रक्षेपण की सरल पद्धतियों के बीच अन्तर यह है कि उनमें से एक में चिन्ह $_a$ एक निश्चित वस्तु के लिए प्रयोग किया जाता है । जबकि दूसरी में उसी उद्देश्य के लिए एक भिन्न चिन्ह. का प्रयोग किया जाता है । प्रक्षेपण की सरल पद्धतियां निषेध अथवा विकल्प संयोजन प्रतिपत्ति इत्यादि के लिए किसी यन्त्रवाद {Mechanism} को अपने में समाहित नहीं करती हैं । अथवा "V", "~" इत्यादि नाम के रूप में कार्य नहीं करते हैं । ऐसी विटगेंस्टाइन की मान्यता है {ट्रैक्टे0 4•0312, 5•4 से 5•4611} ।

प्रक्षेपण के सत्यफलनात्मक पद्धति के नियम वे परम्परायें हैं जिसके द्वारा चिन्हों का प्रयोग सरल तर्कवाक्यों के समूहों के निषेधों और इस प्रक्रिया के लिए आधार स्वरूप सेटों को विशेषीकृत करने वालों को साथ-साथ निर्दिष्ट करने के लिए किया जाता है । एक भाषा, जिसमें असरल तर्कवाक्य होते हैं, उनको स्पष्ट रूप से उत्पन्न करना आवश्यक नहीं है । हो सकता है इसकेबोलने वाले इस सम्बन्ध में सचेत न हों कि वे सरल तर्कवाक्यों की सत्यवृत्तियों को उत्पन्न कर रहे हों और भाषा में कोई अनिवार्यता न हो जो स्पष्ट रूप से संकेत करती हो कि इसके तर्कवाक्य

सरल तर्कवाक्यों के द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार इसका ज्वलन्त उदाहरण वे बोलियां हैं जो साधारण बोल-चाल के वक्तव्यों से सम्बन्धित हैं । रसेल का यह विचार सही था कि विटगेंस्टाइन उन शर्तों से सम्बन्धित था, जिसे तार्किक रूप से परिपूर्ण भाषा के लिए पूरा करना था, किन्तु इससे उसका यह निष्कर्ष गलत था कि विटगेंस्टाइन का प्रबन्ध साधारण भाषा से सम्बन्धित नहीं था । वस्तुतः हमारी दैनिक भाषा के सभी तर्कवाक्य पूर्णरूपेण तार्किक व्यवस्था में हैं । Philosophical Investigations में विटगेंस्टाइन ने लिखा है — एक ओर यह स्पष्ट है कि हमारी भाषा में प्रत्येक तर्कवाक्य एक ऐसी व्यवस्था में है, जैसा कि यह (वास्तव में) है । कहने का अर्थ यह है, हम एक आदर्श भाषा के लिए भूखे नहीं हैं । मानों हमारे साधारण अस्पष्ट तर्कवाक्य अभी तक बिल्कुल अपवाद रहित तात्पर्य नहीं रखते थे । और एक पूर्णभाषा की रचना प्रतीक्षित है । दूसरी ओर ऐसा स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि जहाँ पर तात्पर्य है वहाँ एक पूर्ण व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए । अतः यहाँ तक कि सबसे अधिकअस्पष्ट तर्कवाक्यों में भी पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए । यदि चित्र-सिद्धान्त साधारण भाषा के तर्कवाक्यों को आवृत करता है तो वे विटगेंस्टाइन के द्वारा असरल तर्क वाक्य के रूप में अवश्य ही व्यवहृत किये जाने चाहिए । सामान्य बोलचाल में हम ट्रैक्टेटस के सरल तत्वों के विषय में नहीं बोलते हैं और उनमें निहित सम्बन्धों को स्वीकार करते हैं । इस प्रकार विटगेंस्टाइन ने यह दावा किया कि हम तात्पर्य की अभिव्यक्ति प्रत्येक शब्द किस प्रकार अर्थयुक्त होता है अथवा इसका क्या अर्थ है, इसका विचार बिना रखे हुए करते हैं । ठीक जिस-प्रकार लोग यह बिना जाने हुए कि कैसे विशेष ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, बोलते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि हम सरल तर्कवाक्यों की सत्यवृत्तियों को यह बिना अनुभव किये हुए कि यह वही है जिसे हम कर रहे हैं, उत्पन्न करते हैं (ट्रैक्टे० 4·002) ।

अधिकांश समीक्षकों का कहना है कि चित्र-सिद्धान्त संवाद-सिद्धान्त का ही एक भिन्न रूप है । संवाद-सिद्धान्त के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा यह

स्पष्ट किया जा सके कि सत्यता मूल्य के निर्धारण के साथ वाक्य और तथ्य की तुलना क्यों आवश्यक है । विटगेंस्टाइन के लिए यह स्पष्ट करना आवश्यक था कि क्यों सत्ता एक तर्कवाक्य के सत्यता मूल्य से सम्बन्धित है ? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक तर्कवाक्य सत्ता का एक प्रतिनिधिमूलक चित्र है । ट्रैक्टेटस के अनुसार हम तर्कवाक्यों को प्रक्षेपण पद्धति के अनुसार चिन्ह देकर उत्पन्न करते हैं । ताकि वह सत्ता को चित्रित कर सके । किन्तु ट्रैक्टेटस की यह भी मान्यता है कि चिन्हों को अर्थ प्रदान करने की यह संभावना भाषा और सत्ता के तत्वों के बीच समाकृतिकता ﴾Isomorfism ﴿ पर निर्भर है ।

विटगेंस्टाइन के अनुसार चित्र और चित्रित वस्तु में कुछ चीजें एक होनी चाहिए, जिससे तर्कवाक्य तथ्य का चित्र हो सके । चित्र के तत्वों को समझना अवश्य ही संभव होना चाहिए । यह उसी रूप में होना चाहिए, जिस रूप में चित्रित वस्तु में तत्सम्बन्धी तत्व हैं । हम किसी तर्कवाक्य को किसी तथ्य का चित्र नहीं समझ सकते हैं भले ही चित्र और चित्रित वस्तु के तत्व समान हों यदि दोनों चित्र और चित्रित वस्तु के बीच निहित सम्बन्धों और व्यवस्थाओं से परिचित न हों ।[15]

जैसा कि विदित है अर्थ की लघुतम इकाई नाम है । सरल तर्कवाक्य इन्हीं इकाइयों के द्वारा विरचित हैं । कोई व्यक्ति एक नये तर्कवाक्य को समझता है क्योंकि वह उसके पुराने घटकों से परिचित है । जिनसे कि तर्कवाक्य बने हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार तर्कवाक्य का मूल तत्व यह है कि यह हमें एक नये तात्पर्य को सम्प्रेषित करता है ।[16] इससे यह सिद्ध होता है कि हमारी भाषा लचीली है । इसके द्वारा सीमित नामों से अनेक कथनों की रचना संभव है । इन नामों में तार्किक संयोजक ﴾Logical connectives﴿ अथवा परिमाणक शामिल नहीं हैं । इसका अर्थ यह है कि परिमाणक और तार्किक संयोजक को अर्थ की लघुतम इकाइयाँ नहीं माना गया है । वे अपने अर्थ में जटिल हैं और नामों के स्तर पर उनका विश्लेषण किया जाना चाहिए । बहुत से ऐसे शब्द हैं जो विश्लेषण करने योग्य नहीं हैं । और इसलिए उनकी भिन्न प्रतीतियों ﴾आभासों﴿ के बावजूद

कथनों में उनका घटित होना, कथनों को निरर्थक बना देता है । बहरहाल बहुत से ऐसे शब्द हैं जो नाम नहीं हैं, और न ही नामों में उनका विश्लेषण किया जा सकता है, उन्हें निरर्थक नहीं समझा जाना चाहिए । विटगेंस्टाइन के अनुसार नाम का अर्थवस्तु है । वस्तु इसका अर्थ है । निषेध अथवा परिमाणक की संवादी कोई वस्तु नहीं है । जब कई अर्थ की इकाइयां एक विशेष ढंग से संगठित की जाती हैं तो वे एक परमाणविक तथ्य को चित्रित करती हैं । परमाणविक तथ्य हमेशा विध्यात्मक होते हैं । इसी के परिणामस्वरूप सरल तर्कवाक्य भी स्वीकारात्मक होते हैं । 'ट्रैक्टे0 2·11 के अनुसार चित्र तथ्य को तार्किक देश में प्रस्तुत करता है'। " परमाणविक तथ्यों का अस्तित्व और अन-स्तित्व " यह उद्धरण यह नहीं कहता कि तथ्यों का अन-स्तित्व पारमाणविक तथ्यों के अन-स्तित्व की तरह चित्रित होता है । इसके अनुसार पारमाणविक तथ्यों का अन-स्तित्व पारमाणविक तथ्यों के अस्तित्व पर निर्भर है । जगत् स्वीकारात्मक तथ्यों की समग्रता है । और वे यह निर्धारित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वस्तुस्थिति क्या नहीं है । जटिल तर्क वाक्य, यदि इसका सत्यवृत्यात्मक स्वरूप ज्ञात है तो एक चित्र के रूप में गृहण किया जा सकता है, बशर्ते इसका सरल तर्कवाक्यों में विश्लेषण हो सके । इस सम्बन्ध में पिचर का दृष्टिकोण ठीक लगता है । पिचर के अनुसार जब किसी दूसरे प्रकार का तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों में पूर्णरूप से विश्लेषित होता है, जब इसका सही स्वरूप एक सरल तर्कवाक्य के सत्यताफलन के रूप में पूरी तरह प्रदर्शित होता है, तो यह स्वयं उस स्थिति का चित्र होता है, जिसका कि यह वर्णन करता है ।[17] प्रत्येक तर्कवाक्य कुछ निश्चित स्थितियों का एक निश्चित प्रतिनिधित्व करने वाला चित्र है । विटगेंस्टाइन के अनुसार सभी चित्र सरल तर्कवाक्यों के माध्यम से घटित होते हैं । जब कोई व्यक्ति एक तर्कवाक्य व्यक्त करता है तो वह विभिन्न नामों को परस्पर सम्बन्धित करता है । नामों का यह सह-सम्बन्ध ऐसा नहीं है कि जिसे चित्र स्वयं करता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार मेरे द्वारा चित्र के घटकों का वस्तुओं से सह सम्बन्धित करने से यह एक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है, जो गलत अथवा

सही होता है ।[18] इस उद्धरण में विटगैंस्टाइन के द्वारा प्रयुक्त मेरा ॥ My ॥ शब्द ने बहुत से लोगों को भ्रमित किया । नाम अपना तार्किक आकार रखते हैं और कोई व्यक्ति जो भाषा सीखता है, इन तार्किक आकारों को जानता है । अतः उसका उद्देश्य ॥ इरादा ॥ चुनाव की स्वतन्त्रता देना है ऐसी बात नहीं है । जर्मन भाषा में Satze शब्द का प्रयोग तर्कवाक्य और तर्कवाक्यात्मक चिन्ह दोनों के लिए किया जाता है । अपने चित्र-सिद्धान्त के सम्बन्ध में विटगैंस्टाइन तर्कवाक्यों के बारे में बात करता है न कि तर्कवाक्यात्मक चिन्ह के बारे में । तर्कवाक्य जगत् से अपने प्रक्षेपात्मक सम्बन्ध में एक तर्कवाक्यात्मक चिन्ह है । दूसरे शब्दों में तर्क-वाक्यात्मक चिन्ह तभी एक निश्चित प्रतिनिधित्यात्मक चित्र हो सकता है जब कि उसके तत्व सत्ता के तत्वों से सम्बन्धित हों । विटगैंस्टाइन के अनुसार हम तर्कवाक्य के दृश्य चिन्ह का प्रयोग संभावित स्थिति के प्रक्षेप के रूप में करते हैं । प्रक्षेपण की पद्धति तर्कवाक्य के तात्पर्य को सोचना है । ॥ ट्रैक्टे० 3.11॥ । इस प्रकार भाषा के लिए प्रक्षेपण के नियम हैं । यही नियम तर्कवाक्यात्मक चिन्ह को संभावित विशेष स्थिति का प्रक्षेपण ॥ बनाते ॥ करते हैं । विटगैंस्टाइन की दृष्टि में इनमें से प्रत्येक नियम संक्षिप्त रूप में यह कहने का एक तरीका है कि लोग स्वभावतः एक का प्रक्षेपण दूसरे में तर्कवाक्य का तात्पर्य सोचने के द्वारा करते हैं । तर्कवाक्य का तात्पर्य वह स्थिति है जिसका यह वर्णन करता है । तर्कवाक्य के तात्पर्य को सोचने की क्रिया एक तर्कवाक्यात्मक चिन्ह को, जो कि किसी स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है, के अर्थ की क्रिया हो जाती है । ऐसा घटित होता है यदि ऐसा अर्थ न किया जाय कि तर्कवाक्यात्मक चिन्ह का प्रत्येक नाम एक विशेष वस्तु का निर्देश करता है न कि दूसरी वस्तु का । इसकी अपेक्षा इसका अर्थ यह किया जाय कि वे वस्तुएं इस प्रकार से व्यवस्थित रहती हैं कि वस्तुस्थिति का इस-इस प्रकार का ढांचा होता है ।

यह उल्लेखनीय है कि पुनरूक्ति और व्याघात चित्र नहीं हैं । ॥ट्रैक्टे० 4.462॥। जिस प्रकार सभी सफेद अथवा काले ग्लोब मानचित्र नहीं है । इस प्रकार विटगैंस्टाइन के द्वारा प्रतिपादित अर्थ का चित्र-सिद्धान्त केवल आपातिक तर्कवाक्यों तक सीमित

कोई व्यक्ति aRb तथ्य को प्रस्तुत करना चाहता है तो वह एक भिन्न प्रतीक का प्रयोग कर सकता है जिसमें a को R के ऊपर और b को R के नीचे लिखा जा सके ।--- $\overset{a}{\underset{b}{R}}$ । अथवा इसके लिए रंगों का प्रयोग भी किया जा सकता था । aRb को प्रस्तुत करने के लिए a को काले और b को लाल रंग में लिखा जा सकता था । यदि aSb को चित्रित करना है तो a को काले और b को हरे रंग में लिखा जा सकता है । अतः वास्तविक सम्बन्ध जो a और b को सम्बन्धित करता है, विशुद्ध रूप से पारम्परिक है । तथापि यह एक तथ्य है कि a,b से एक निश्चित सम्बन्ध रखता है, भले ही यह सम्बन्ध पारम्परिक हो ।

तथ्य में स्वयं एक आकार होता है । किन्तु यह वस्तुओं का एक ढाँचा है । सरल तर्कवाक्यात्मक चिन्ह के तत्व तथ्यों के तत्वों का निर्देश करते हैं । और यह तथ्य कि चिन्ह एक-दूसरे चिन्ह से एक निश्चित सम्बन्ध रखता है, एक तथ्य का प्रतिनिधत्व करता है कि तथ्य में वस्तुएं आपस में एक निश्चित सम्बन्ध रखती हैं । § ट्रैक्टे० 4·031 § ।[20]

सर्वप्रथम विटगेंस्टाइन इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों की सत्यता वृत्तियां हैं और उसकी मांग यह थी कि सत्यतावृत्ति का सिद्धान्त सत्य हो । अन्ततोगत्वा विटगेंस्टाइन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि सभी प्रकार के तर्कवाक्य, जिन्हें वह सोच सकता था, सत्यताफलनात्मक हैं ।[21]

रसेल के अनुसार विटगेंस्टाइन इस प्रश्न से सम्बन्धित है कि एक तथ्य को दूसरे तथ्य के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध रखना चाहिए, ताकि उस व्यवस्था का एक प्रतीक हो सके । इसके लिए यह आवश्यक है कि वाक्य की संरचना और तथ्य की संरचना में कुछ चीजें उभयनिष्ठ होनी चाहिए । यह विटगेंस्टाइन का एक बहुत ही मौलिक सिद्धान्त है कि चित्र उन तत्वों से सम्बन्धित है जो वस्तुओं के लिए स्थानापन्न हो सके ।[22]

सिद्ध होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि विटगैंस्टाइन के ट्रैक्टेटस के चित्र-सिद्धान्त का आदर्श प्रमुख रूप से तथ्यात्मक तर्कवाक्यों को ध्यान में रखते हुए ही प्रतिपादित किया गया । पुनरूक्ति तथा व्याघात सरल तर्कवाक्य नहीं हैं । अतः वे चित्र नहीं हो सकते हैं । पुनरूक्ति के बारे में वह कहता है कि इसके समस्त अंग अर्थ रखते हैं । किन्तु यह ऐसा है कि इन अंगों के बीच में निहित सम्बन्ध एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं । अतः वे कुछ अप्रासंगिक ढंग से सम्बन्धित हैं ।[19]

इसी प्रकार व्याघात भी चित्र नहीं हो सकते, क्योंकि चित्र एक संभावित तथ्य है, जब कि व्याघात एक असंभावना को व्यक्त करता है । इन विवरणों से सिद्ध होता है कि विटगैंस्टाइन के चित्र-सिद्धान्त का विशेष महत्व तथ्यात्मक अथवा आपतिक तर्कवाक्यों के सम्बन्ध में है, न कि पुनरूक्त्यात्मक अथवा व्याघाती कथनों के संदर्भ में । इसी सिद्धान्त से प्रभावित होकर आगे चलकर तार्किक भाववादियों के सुप्रसिद्ध प्रमाणीकरण सिद्धान्त का विकास हुआ, जिसके आधार पर उन्होंने तत्व मीमांसा का प्रत्याख्यान करने का प्रयास किया ।

विटगैंस्टाइन के अनुसार वाक्य (तर्कवाक्यात्मक चिन्ह) शब्दों का समूह मात्र नहीं है जो कि एक स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है । जैसे aRb तथ्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए ये तीनों चिन्ह इस प्रकार व्यवस्थित किये जाने चाहिए - सबसे पहले a लिखा जाता है उसके ठीक बाद उसी पंक्ति में R लिखा जाता है । और पुनः उसके ठीक बाद उसी पंक्ति में b लिखा जाता है a के बायें और b के दायें स्थान रहता है । यह एक तथ्य है कि तीनों चिन्ह एक विशेष ढंग से लिखे जाते हैं जो aRb तथ्य का प्रतिनिधित्व करता है । इस प्रकार aRb चिन्हों का एक विन्यास मात्र नहीं है । यह एक तथ्य है कि a, b से एक विशेष सम्बन्ध रखता है । ये तीनों चिन्ह एक ही पंक्ति पर लिखे जाते हैं और a और b दोनों के बायें- दायें स्थान रहता है । यह तथ्य है कि दोनों चिन्ह a और b इस प्रकार से सम्बन्धित हैं कि वे aRb तथ्य का प्रतिनिधित्व करते हैं । ऐसा कुछ नहीं है जो यह दिखा सके कि यह सम्बन्ध एक विशेष प्रकार का है । वस्तुतः यह एक परम्परा का विषय है । परम्परा ऐसी भी हो सकती थी कि यदि

सत्यतावृत्ति के सिद्धान्त का एक परिणाम यह है कि जगत् परमाणविक तथ्यों में विभक्त होता है । रसेल ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि सामान्य तर्कवाक्य उन तर्कवाक्यों के सत्यताफलन नहीं हैं जो व्यक्तियों के विषय में हों । अतः उसके अनुसार अवश्य ही सामान्य तथ्य होने चाहिए,जो पारमाणविक तथ्यों की मिश्रित रचनाएं नहीं हैं । रसेल कहता है " यह स्पष्ट है, मैं सोचता हूँ कि सामान्य तथ्य विशेष तथ्यों से ऊपर और परे भिन्न है " ।[23]

सामान्य तर्कवाक्य अन्ततः सरल तर्कवाक्यों में विश्लेषणीय हैं । अतः रसेल ने निषेधात्मक तथ्यों के अस्तित्व का समर्थन किया है । जिनको पारमाणविक तथ्यों में नहीं घटाया जा सकता है,किन्तु विटगैंस्टाइन ने रसेल के इस सिद्धान्त का प्रतिवाद किया है, जिसके अनुसार सभी तर्कवाक्य सत्यवृत्यात्मक हैं,किन्तु सभी अपारमाणविक तर्कवाक्य और तथ्य पारमाणविक तथ्यों और तर्कवाक्यों से संरचित हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार एक जटिल स्थिति का वर्णन सरल तर्कवाक्यों के सत्य-वृत्ति के द्वारा किया जाता है । और यह उन तथ्यों का वर्णन करता है जो जटिल स्थितियों की संरचना करते हैं । वस्तुतः विटगैंस्टाइन का चित्र-सिद्धान्त रसेल के तार्किक परमाणुवाद से गंभीर रूप से प्रभावित है । विटगैंस्टाइन के इस सिद्धान्त को विटगैंस्टाइन का तार्किक परमाणुवाद कहा गया है । इस शब्द का प्रयोग दर्शन शास्त्र के क्षेत्र में सर्वप्रथम रसेल ने किया था । विटगैंस्टाइन का तार्किक परमाणुवाद तर्कवाक्यों का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार सरल तर्कवाक्य पारमाणविक हैं क्योंकि उनका विश्लेषण किसी अन्य मूल तर्कवाक्य में नहीं किया जा सकता है । ये मूल तर्कवाक्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं जिसका उल्लेख विटगैंस्टाइन के तर्कवाक्यों के सम्बन्ध में किया जा चुका है (ट्रैक्टे० 2·061, 2·062, 5·134, 4·211) विटगैंस्टाइन की मान्यता है कि दो सरल तर्कवाक्य एक-दूसरे के विपरीत नहीं हो सकते । परवर्ती विटगैंस्टाइन ने इस सिद्धान्त का परित्याग किया कि कोई सरल तर्कवाक्य एक-दूसरे का विपरीत नहीं हो सकता है । उसने इस मान्यता का समर्थन किया कि वे एक-दूसरे के व्याघाती नहीं हो सकते हैं ।[24] यहाँ पर यह तर्क किया जा सकता है कि यदि जगत् में कोई सरल तत्व नहीं है तो तर्कवाक्यों को दूसरे तर्क

वाक्यों में स्थानान्तरित किया जा सकता है । ये तत्व, प्राक्कल्पना पूर्वक कहा जा सकता है कि सरल नहीं हैं, बल्कि जटिल हैं । तर्कवाक्यों और उनके तर्कवाक्येतर निर्देशों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होगा । अतः . जगत् और चित्र के बीच में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । .इस प्रकार जगत् के चित्रीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता । इसका अर्थ यह है कि तर्कवाक्य तात्पर्य रहित है । अतः सरल तत्वों का निषेध इस मत से असंगत है कि तर्कवाक्य तात्पर्ययुक्त है ।[25]

यहाँ पर तर्क यह दिया जाता है कि यदि तर्कवाक्य दूसरे तर्कवाक्यों से निरपेक्ष रूप से तात्पर्य रखते हैं तो सरल तत्व हैं और विटगेंस्टाइन ने तर्कवाक्य के तात्पर्य का जो अर्थ किया है उससे यह नहीं सिद्ध होता कि यह युक्ति अज्ञान मूलक युक्ति नहीं है ।[26] यदि तर्कवाक्य और उसके निर्देश्य (Referent) के बीच संवाद है तो इसका अर्थ यह है कि तर्कवाक्य के पद तथ्य के तत्वों से अवश्य ही सह-सम्बन्धित होने चाहिए और तर्कवाक्य के प्रतिनिधित्व का आकार तथ्य की संरचना से अभिन्न होना चाहिए । यहाँ पर हम कह सकते हैं कि विटगेंस्टाइन यह स्वीकार करता है कि सरल वस्तुओं से सम्बन्धित युक्ति तात्पर्य पर निर्भर है । वह कहता है कि तथ्य वस्तुओं का संघात है । वह कहता है कि तथ्य वस्तुओं का संघात है (ट्रैक्टे० 2·01) । यदि यह सत्य है तो तथ्य एक विशेष प्रकार का तथ्य है और यदि तथ्य विशेष तथ्य है तो तथ्यों के पूर्वरूप से सरल अवयव अवश्य होने चाहिए । अब हम विटगेंस्टाइन के चित्र-सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं का विवेचन करने की स्थिति में हैं । हम कह सकते हैं कि चित्र यह व्यक्त करता है कि वस्तुएं एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि जैसे चित्र के तत्व एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं । यही चित्र का अर्थ है । ट्रैक्टेटस में वह कहता है कि " अणुतथ्य में वस्तुएं सुनिश्चित ढंग से परस्पर संयुक्त होती हैं । अणुतथ्य में वस्तुएं जिस ढंग से परस्पर सम्बद्ध होती हैं । वही अणुतथ्य की संरचना है । (ट्रैक्टे० 2·031, 2·032) । आकार संरचना की संभावना है । तथ्य की संरचना अणुतथ्यों की संरचनाओं से बनती है । (ट्रैक्टे० 2·033 व 2·034) । आकार तर्कवाक्य और तर्कवाक्यात्मक चिन्ह का अनिवार्य गुण है । विटगेंस्टाइन आकार और तार्किक

आकार में भी भेद करता है । वह कहता है कि जो कुछ चित्र और सत्ता में उभयनिष्ठ होना चाहिए, ताकि सही अथवा गलत ढंग से यह सत्ता को चित्रित कर सके-- जिस ढंग से यह सत्ता को चित्रित करती है यह उसका चित्रात्मक आकार है । (ट्रैक्टे0 2·17) ।

एक चित्र किसी भी सत्ता को चित्रित कर सकता है, जिसका कि यह आकार रखता है । एक दैशिक चित्र किसी भी दैशिक वस्तु को चित्रित कर सकता है । एक रंगीन चित्र किसी भी रंगीन वस्तु को चित्रित कर सकता है । इत्यादि (ट्रैक्टे0 2·171) । एक चित्र अपने चित्रित आकार को (Pictorial form को) चित्रित नहीं कर सकता है । इसी प्रकार 2·172, 2·18, 2·181 में भी विटगैंस्टाइन अपने मन्तव्य को स्पष्ट करता है । एक चित्र, जिसका चित्रात्मक आकार तार्किक आकार है उसे तार्किक चित्र कहा जाता है । प्रत्येक चित्र साथ ही साथ तार्किक चित्र भी है । किन्तु प्रत्येक चित्र दैशिक चित्र नहीं है (ट्रैक्टे0 2·181 व 2·182) । एक चित्र तार्किक आकार रखता है यदि चित्र तथ्य के तत्वों के संघात का अर्थ वस्तुओं का व्याघात है, जिसके लिए तत्व अनेक रूप से स्थित हैं । अतः मुख्य बिन्दु यह है कि चित्र का तात्पर्य दिखाया जाता है, न कि कहा अथवा स्वीकार किया जाता है और एक चित्र तात्पर्य रखता है, चाहे यह सत्य हो अथवा असत्य । अतः विटगैंस्टाइन ने तर्कवाक्यों के चित्र-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । वह कहता है कि तर्कवाक्य सत्ता का चित्र है । क्योंकि यदि मैं एक तर्कवाक्य को समझता हूँ । तो मैं उस स्थिति को जानता हूँ जिसका यह प्रतिनिधित्व करता है । मैं एक तर्कवाक्य को बिना इसके अर्थ की व्याख्या किये हुए समझता हूँ । (ट्रैक्टे0 4·01) । विटगैंस्टाइन के अनुसार एक तथ्य a को दूसरे तथ्य b का तार्किक चित्र होने के लिए तीन शर्तें अवश्य होनी चाहिए ।

(1) a और b के बीच में एक- एक की समरूपता । a और b में अवयवों की संख्या समान होनी चाहिए । तथ्य में वस्तु की संख्या के अनुरूप ही वाक्य में नामों का होना आवश्यक है । सरल वाक्य नामों का संयोजन है तथा प्रत्येक सरल वाक्य में प्रत्येक नाम के अनुरूप एक सरल वस्तु होनी चाहिए । यदि

सरल वाक्य में कोई ऐसा नाम है जिसके अनुरूप तथ्य में कोई वस्तु न हो अथवा तथ्य में ऐसी कोई वस्तु हो, जिसके अनुरूप सरल वाक्य में नाम न हों तो दोनों ही दशाओं में सरल तर्कवाक्य तथ्य का चित्र न होगा । इस संदर्भ में ट्रैक्टेटस 2·131, 3·22, 4·022, 4·0311 आदि उल्लेखनीय हैं ।

§II§ आकार की समरूपता दूसरी शर्त है । तथ्यों में संरचना और आकार दोनों होता है । जिस क्रम में तथ्य में वस्तुएं एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं वह क्रम ही तार्किक आकार है। जिस क्रम में नाम वाक्य में एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं वह क्रम ही वाक्य का तार्किक आकार है । जिस प्रकार प्रत्येक तथ्य में तार्किक आकार होता है, उसी प्रकार प्रत्येक वाक्य में भी तार्किक आकार होता है । कोई भी चित्र किसी स्थिति का चित्र तभी कहलायेगा, जब कि दोनों में आकारिक समरूपता हो । विटगैंस्टाइन कहता है - चित्र और जिस वस्तु का चित्रण किया जाता है दोनों में कुछ चीजें अभिन्न होनी चाहिए, ताकि एक-दूसरे का चित्र हो सके § ट्रैक्टे0 2·161§ । जेम्स ग्रिफिन के अनुसार आकार की समरूपता का अर्थ यह है कि वाक्य में नामों का व्यवहार वैसा ही है जैसा कि तथ्य में वस्तुओं का । प्रश्न यह उठता है कि आकारिक समरूपता क्यों आवश्यक है ? भाषा और सत्ता में एक खाई है । यदि आकारिक एकता न हो तो भाषा सत्ता का चित्रण नहीं कर सकती । सत्ता का आकार भाषा के आकार में अभिव्यक्त होता है । भाषा का आकार सत्ता के आकार का निदर्शन करता है । अतः चित्र और चित्रित वस्तु में आकार की समरूपता का होना आवश्यक है ।

§III§ प्रक्षेपण के नियम तीसरी शर्त हैं । संगीत लिपि और संगीत में जो सम्बन्ध होता है उसे प्रक्षेपण का नियम कहा जा सकता है । राग की लिपि को देखकर जाना जा सकता है कि वह कौन राग है । इसी प्रकार राग को सुनकर जाना जा सकता है कि वह कौन सी राग-लिपि है । यही बात भाषा और सत्ता के सम्बन्ध में भी लागू होती है । यदि हम वाक्य और तथ्य के सम्बन्ध को जानते हैं तो वाक्य को सुनकर तथ्य को जान सकते हैं । तथ्य का वर्णन हम वाक्य में कर सकते हैं ।

इस प्रकार चित्र और तथ्य के अवयवों का पारस्परिक सम्बन्ध जानना आवश्यक है। परन्तु यह सम्बन्ध बनता कैसे है ? कैसे नाम का प्रयोग सरल वस्तु के लिए होता है ? विटगेंस्टाइन के अनुसार नाम देने की क्रिया मानसिक क्रिया है। हम एक नाम का प्रयोग किसी वस्तु के लिए मानसिक क्रिया के द्वारा करते हैं। पिचर का कहना है — प्रक्षेपण के नियम , वे नियम हैं यदि a दिया है तो b की रचना संभव है और यदि b दिया है तो a की रचना संभव है अर्थात् वाक्य के दिये होने पर हम तथ्य को जान सकते हैंऔर तथ्य के दिये होने पर वाक्य को जान सकते हैं। अपने-आप में सभी चिन्ह मृत हैं। प्रक्षेपण के नियमों द्वारा ही चित्र और चित्रित वस्तु के स्थिति के अवयवों में सम्बन्ध संभव होता है। इसके द्वारा ही हम सार्थक कथन कर सकते हैं और दूसरे के कथनों का अर्थ समझ सकते हैं।

कहा जाता है कि ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन ने भाषा के चित्र-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वार्नाक के अनुसार एक वस्तु अथवा दृश्य के चित्र के तत्वों अथवा अंगों और वस्तु अथवा दृश्य के अंगों के बीच एक प्रकार की समरूपता होती है। किन्तु ये तत्व, न केवल उपस्थित होने चाहिए, बल्कि उनका ढाँचा (Structure) आकार अथवा व्यवस्था समान होनी चाहिए। पारमाणविक तथ्य वस्तुओं का संघात है तथा वस्तुओं का संघात तथ्य का निर्माण करता है। (ट्रैक्टे० 2·01 तथा 2·0272)। किन्तु भावात्मक चिन्ह स्वतः तथ्य हैं। ये भी तत्वों (शब्दों) के संघात हैं। अतः इस प्रकार का तथ्य दूसरे अशब्दात्मक तथ्यों को चित्रित करने में समर्थ है और इस प्रकार भाषा जगत् का निर्देश कर सकती है।[27] दार्शनिकों ने विटगेंस्टाइन के विचारों का विवरण इस प्रकार से दिया है कि चित्र और चित्रित वस्तु में सम्बन्ध सामान्य रूप से प्रतिवर्ती (Reversible) है।[28] " स्टेनियस के अनुसार केवल सत्य चित्र ही वास्तविक चित्र है "[29] एन्सकोम्ब के अनुसार विटगेंस्टाइन के लिए तर्कवाक्य तथ्यों के साथ समाकृतिक या एकैक समाकारी (Isomorphic) है। चित्र स्वतः किसी चीज का वर्णन नहीं करता है।[30]

स्टेनियस कहता है कि विटगेंस्टाइन के लिए चित्र प्रतिनिधित्यात्मक हैं और वह हमेशा सोचता है कि चित्र अपना एक वास्तविक मूल रूप रखता है । चित्र के तत्व तथ्य के तत्वों का संकेत करते हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार चित्र का तत्व वस्तुओं के समरूप होता है, न कि तथ्यों के तत्वों के अनुरूप । जब विटगेंस्टाइन कहता है कि चित्र प्रस्तुत करता है कि ऐसी अमुक-अमुक स्थिति है तो वह यह अर्थ करता है कि चित्र उपस्थित करता है कि अमुक-अमुक स्थिति है । चूँकि चित्र के घटक स्वतः चित्र हैं अतः सोचा जा सकता है कि शब्द चित्र है और वाक्य एक चित्र है । इस प्रकार चित्र-सिद्धान्त इसकी भी व्याख्या करता है कि असत्य वाक्य कैसे अर्थयुक्त हो सकता है । इसी प्रकार एक वाक्य यह दिखाता है कि इसका क्या अर्थ है ; भले ही इसका अर्थ एक वास्तविक तथ्य न हो । वह ट्रैक्टेटस 4.061 में कहता है — यदि कोई व्यक्ति निरीक्षण नहीं करता है कि तर्कवाक्य तथ्यों से स्वतन्त्र रूप में तात्पर्ययुक्त होता है तो कोई व्यक्ति आसानी से विश्वास कर सकता है कि सत्य और असत्य चिन्हों और चिन्हित वस्तुओं के बीच समान अधिकारों से युक्त दो सम्बन्ध हैं । (ट्रैक्टे० 2.22) → इस बात की व्याख्या करता है कि चित्र उसकी प्रस्तुति करता है । जिसे यह सत्यता अथवा असत्यता से निरपेक्षरूप (स्वतन्त्र रूप) में प्रतिनिधित्व करता है । यह प्रस्तुतीकरण प्रतिनिधित्वीकरण के आकार के माध्यम से होता है । सत्यता अथवा असत्यता से स्वतन्त्र रूप में तात्पर्ययुक्त होने के द्वारा वाक्य वास्तविक वर्णन के निकट नहीं आता है । Shoughnessy के अनुसार अर्थ का चित्र-सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है । यहाँ तक कि यह एक सरल भूल है । यह अनुभव करना एक विफलता है कि यह एक महान दार्शनिक विचार है कि जो एक सामान्य समस्या को विकसित करता है । अपनी बहुत सी त्रुटियों की ओर विटगेंस्टाइन ने Philosophical Investigations के प्रारम्भ में विवरण दिया है ।[31]

चित्र चाहे दैशिक हो अथवा संगीतात्मक, किन्तु इसे तार्किक चित्र भी होना चाहिए । तार्किक चित्र होने का अर्थ है कि यह एक विचार है । अतः सभी चित्र विचार हैं । इस प्रकार चित्र एक प्रकार का चिन्तन है कि अमुक-अमुक वस्तुस्थिति

है । बहुत से दार्शनिक एक वाक्य को उसके अर्थ से भिन्न करते हैं ।[32] अतः फ्रेगे ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि वाक्य का अर्थ वह विचार है जिसे वाक्य के द्वारा व्यक्त किया जाता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार विचार तात्पर्य की अभिव्यक्ति है और सोचना कुछ अर्थ करना है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वाक्य ऐसी वस्तुऐं नहीं हैं जो अर्थ को व्यक्त करतें हों, और अर्थ स्वतन्त्र विचार नहीं हो सकते हैं । जो कुछ भी अर्थयुक्त होता है अथवा जिसका अर्थ होता है वह अनिवार्य रूप से चिन्तन की एक क्रिया है । इस प्रकार चित्र के दो भिन्न पहलू हैं ।

§1§ चित्र के तत्वों के बीच सम्बन्ध ।

§2§ चित्र के तत्वों का चित्र के बाहय वस्तुओं से सह-सम्बन्ध ।

अतः चित्र के तात्पर्य के सम्बन्ध में स्टेनियस की मान्यता तार्किक दृष्टि से बहुत अच्छी नहीं है । उसके अनुसार प्रत्येक चित्र पर्याप्त है । वह विटगेंस्टाइन की इस मान्यता की ओर ध्यान नहीं देता है कि चित्र नाम जैसी कोई वस्तु नहीं । यह इस प्रकार की वस्तु नहीं है, जिसका कि हम प्रयोग करते हैं । वस्तुतः विटगेंस्टाइन का चित्र इस प्रकार की वस्तु नहीं है जिसे फ्रेम में रखकर दीवार पर टाँग दिया जाय । विटगेंस्टाइन के लिए चित्र एक विचार है । जिसकी अभिव्यक्ति चित्र को दीवार पर टाँगने या लटकाने से हो सकती है । इस प्रकार जब विटगेंस्टाइन कहता है कि यद्यपि एक तर्कवाक्य जो एक छपे हुए पृष्ठ पर लिखा होता है, वह चित्र की तरह नहीं दीखता है । उसका अर्थ यह है कि जो तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों में घटाये जा सकते हैं वे चित्र हैं । सरल तर्कवाक्य इस अर्थ में मूल चित्र हैं कि जटिल तर्कवाक्य उनके माध्यम से चित्र हैं । अतः चित्र-सिद्धान्त परमाणुवाद के बारे में कुछ व्यक्त करता है । विटगेंस्टाइन का चित्र-सिद्धान्त रसेल के परमाणुवाद से प्रभावित है । इन सभी युक्तियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ट्रैक्टेटस का चित्र-सिद्धान्त पूर्ण रूप से सुसंगत नहीं है । यही कारण है कि आगे चलकर

विटगेंस्टाइन ने Philosophical Investigations में अपने चित्र-सिद्धान्त का खण्डन किया । अन्य बहुत से दार्शनिकों ने भी इस सिद्धान्त की आलोचना की है । विटगेंस्टाइन स्वयं कहता है कि ट्रेक्टेटस पूरी तरह गलत नहीं है । वह ट्रैक्टेटस की उपमा एक ऐसी घड़ी से देता है जो सही समय नहीं बताती है ।

इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रश्न भी महत्वपूर्ण है । आरम्भ में अनेक आलोचकों ने ट्रैक्टेटस की व्याख्या तार्किक भाववाद के आधार पर किया । इस व्याख्या के अनुसार ट्रैक्टेटस के सरल वाक्य निरीक्षण वाक्य हैं । बाद में एन्सकोम्ब, पिचर, ग्रिफिन, बर्न्सटाइन आदि ने सरल तर्कवाक्यों को निरीक्षण वाक्यों से भिन्न माना । किन्तु मेरिल और जाको हिनटिक्का[33] ने पुनः ट्रैक्टेटस की वस्तुओं की अनुभववादी व्याख्या देकर सरल तर्कवाक्यों को निरीक्षण कथनों के समकक्ष बना दिया है । इनके अनुसार वस्तुयें केवल विशेष ही नहीं गुण और सम्बन्ध भी हैं तथा इन्द्रिय प्रदत्त इनके स्पष्ट उदाहरण हैं । पर वस्तुओं एवं तर्कवाक्यों के सम्बन्ध में विटगेंस्टाइन जिन विशेषताओं का उल्लेख करता है इन्हें देखते हुये एन्सकोम्ब की व्याख्या अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है ।

Notes and References

1. Findley, J.N., Meinong's Theory of objects, Oxford University Press 1933, p. 60 & 66.
2. Wittgenstein, L., Tractatus Logico Philosophicus, 4.061-2.
3. Bogen, J., Wittgenstein's Philosophy of Language, pp.15-16.
4. Shwayder, D.S., Critical Notice, pp. 284-85.
5. Bogen, J., Wittgenstein's Philosophy of Language, p. 18.
6. Wittgenstein, L., Unpublished Note books 1931.
7. Stenius, E., Wittgenstein's Tractatus, p.89.
8. Ibid P.89.
9. Bogen, J., Wittgenstein's Philosophy of Language, p. 21.
10. Ibid pp. 24-25.
11. Schwyzer, H.R.G. Wittgenstein's Picture Theory of Language. Reprinted in Irving Copi and R.Beards (eds) Keganpaul Routledge 1966.
12. Rhees, R., (ed.) Philosophiche Bermekungen, p. 303, Blackwell, 1965.
13. Bogen, J., Wittgenstein's Philosophy of Language, pp.26-27

14. Ibid p.27.

15. Ibid p.35

16. Malcolm, N. Ludwig Wittgenstein, A memoir, Oxford Paper backs 1966, pp.68-69, 4.027.

17. Pitcher, G. The study of Wittgenstein's Philosophy, p.81.

18. Wittgenstein, L. Note books 1914-16, Translator - Anscombe, G.E.M., Basil Blackwell Oxford, Entry on 26/11/14, 1969 p.33.

19. Quoted from Max Black's 'A Companion to Wittgenstein's Tractatus,' Cambridge University Press 1964, p.229.

20. Pitcher, G. The Study of Wittgenstein's Philosophy, pp.85-86.

21. Ibid p.67.

22. Russell, B. 'Introduction' Tractatus Logico Philosophicus.

23. Russell, B. 'The Philosophy of Logical Atomism' Marsh Volume, p.236.

24. Wittgenstein's Article Some Remarks on Logical Form, Proceedings of Aristotelian Society, Volume 9.

25. Weinberg, J.R. Are there ultimate simples in Essays in Wittgenstein's Tractatus, Edited by - Copi & Beard, p.80.

26.	Ibid	p.80
27.	Warnock, G.J.	English Philosophy since 1900, p.65.
28.	Schwyzer, H.R.G.	Wittgenstein's Picture Theory of Language, Reprinted in Essays Wittgenstein's Tractatus, Edited by Copi and Beard, p.272.
29.	Stenium, E.	Wittgenstein's Tractatus, p.95.
30.	Anscombe, G.E.M.	An Introduction to Wittgenstein's Tractatus, p.67.
31.	Strawson, P.F.	On Referring, Mind, 1950.
32.	Shoughnessy - Ibid	p.131
33.	Hintikka, M.B. & Hintikka, J.	Investigating Wittgenstein, Basil Blackwell, 1986.

तृतीय अध्याय

सत्यता-फलन

विटगैंस्टाइन के अनुसार किसी तर्कवाक्य के अर्थ का विश्लेषण करने के लिए सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त करना आवश्यक है । किसी तर्कवाक्य का तात्पर्य सरल तर्कवाक्यों और तर्कवाक्यात्मक संयोजकों के द्वारा कहा जा सकता है । अतः यदि कोई व्यक्ति सभी संभावित सरल तर्कवाक्यों तथा कुछ तर्कवाक्यात्मक संयोजकों की सूची रखता हो तो वह सूची से चुनी गयी किसी भी कथनीय बात को कह सकता है । जो तर्कवाक्य सरल नहीं है अर्थात् मिश्रित या जटिल हैं वे सरल तर्कवाक्यों के संघात हैं । विटगैंस्टाइन के अनुसार यदि मेरे समक्ष समस्त मूल तर्कवाक्य प्रस्तुत रहें तब सरलता पूर्वक पूँछा जा सकता है कि मैं उनसे कौन से वाक्य बना सकता हूँ । ये ही सब वाक्य हैं तथा इसीलिए ये सीमित हैं । §ट्रैक्टे0 4.51 § । किन्तु प्रश्न उठता है कि जटिल तर्कवाक्यों का ढाँचा कैसा है ? किस प्रकार सरल तर्कवाक्य जटिल तर्कवाक्यों की संरचना के लिए संगठित होने चाहिए ? यहीं पर विटगैंस्टाइन को सत्यता-फलन की आवश्यकता प्रतीत होती है । विटगैंस्टाइन के अनुसार वे सत्यता फलनात्मक संयोजकों के द्वारा संगठित होते हैं । इसलिए सभी जटिल तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों की सत्यता-वृत्तियाँ हैं । इस प्रकार सत्यता-फलन ट्रैक्टेटस का केन्द्रीभूत सिद्धान्त है । विटगैंस्टाइन के अनुसार एक तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों का सत्यता-फलन है । जब किसी तर्कवाक्य की सत्यता या असत्यता उसके घटक सरल तर्कवाक्यों की सत्यता और असत्यता के द्वारा निर्धारित होती है तो इसे उसके घटक तर्कवाक्यों की सत्यतावृत्ति § Truth function § कहते हैं । एक मिश्रित तर्कवाक्य p.q, p और q का सत्यता-फलन है । बशर्ते इसका सत्यता मूल्य p और q के सत्यता मूल्य के द्वारा निर्धारित हो । उसके अनुसार "और" §and §."अथवा"§Or § "या तो ..... या" §Either - Or § इत्यादि सत्यता फलनात्मक संयोजक § Truth functional connective § हैं ।

अब प्रश्न यह उठता है कि सत्यता-फलनात्मक संयोजक और सत्यता-फलन क्या हैं ? एक संयोजक (Connective) ऐसा चिन्ह है जो तर्कवाक्यों को सत्यता फलनात्मक मिश्रणों में मिलाता है । इस परिभाषा के अन्तर्गत "और" (And)एक सत्यताफलनात्मक संयोजक है क्योंकि यदि हम प्रत्येक तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य जानते हैं तो जटिल तर्कवाक्य के सत्यता मूल्य को भी जानना सरल होता है । जैसे-"राम और श्याम लन्दन में हैं, यह एक जटिल तर्कवाक्य है । इसका सत्यतामूल्य " राम लन्दन में है और " श्याम लन्दन में है" के सत्यता मूल्य पर निर्भर है । यदि ये दोनों तर्कवाक्य सत्य हैं तो तत्सम्बन्धी मिश्रित तर्कवाक्य भी सत्य होगा । इसके विपरीत यदि एक अथवा दोनों तर्कवाक्य असत्य हैं तो पूरा मिश्रित तर्कवाक्य असत्य होगा । इसे सत्यता-सारिणी के द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ।

य	र	य·र	य∨र	∼र	य·∼र	(य·∼र)
स	स	स	स	अ	अ	स
स	अ	अ	स	स	स	अ
अ	स	अ	स	अ	अ	स
अ	अ	अ	अ	स	अ	स

इसकी तुलना एक असत्यता फलनात्मक संयोजक से की जा सकती है। उदाहरण के लिए पिचर ने कारणता को व्यक्त करने वाले संयोजक " क्योंकि "(Because) का उल्लेख किया है । यदि हम इन तर्कवाक्यों का सत्यता मूल्य जानते भी हैं कि "स्मिथ अपने कोर्स में असफल हो गया " और " स्मिथ सीमा के पार पियक्कड़ है" तो भी सभी स्थितियों में हम इन जटिल तर्कवाक्यों का सत्यता मूल्य नहीं जानते हैं । स्मिथ अपने पाठ्यक्रम में असफल रहा क्योंकि वह सीमा के पार पीता है । यदि हम यह जानते हों कि इसके दोनों घटक तर्कवाक्य सत्य हैं तो भी जटिल तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य हम नहीं जानते हैं । यह अब भी सत्य अथवा असत्य हो सकता है । अतः कारण सूचक " क्योंकि " (Because)

सत्यताफलनात्मक संयोजक नहीं है ।[1]

सत्यता फलनात्मक संयोजक की उक्त परिभाषा के अनुसार "निषेध" एक सत्यताफलनात्मक संयोजक है । किन्तु निषेध को संयोजक मानना भद्दा लगता है । क्योंकि "निषेध" एक तर्कवाक्य का दूसरे तर्कवाक्य से सम्बन्ध स्थापित नहीं करता तब भी इसका वर्गीकरण सत्यता फलनात्मक संयोजक को सीमित करने वाली स्थिति के रूप में मानना सुविधा जनक है । विध्यात्मक तर्कवाक्य "त" इसके निषेधात्मक तर्कवाक्य " ~ त " के सत्यता मूल्य को निर्धारित करता है । यदि "त" सत्य है तो " ~त" असत्य होगा । यदि "त" असत्य है तो " ~ त" सत्य होगा । इस प्रकार " ~त", "त" का सत्यता-फलन है । विटगैंस्टाइन के अनुसार यदि दिये हुए सभी सरल तर्कवाक्यों की सत्यता या असत्यता को जान लिया जाय तो प्रत्येक चीज, जिसे जाना जा सकता है, जान सकते हैं क्योंकि किसी दूसरे तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य उसके घटक सरल तर्कवाक्यों के सत्यता मूल्य से निर्धारित होता है । विटगैंस्टाइन कहता है यदि सभी सत्य सरल तर्कवाक्यों की सूची बना ली जाय तो जगत् पूरी तरह वर्णित हो सकता है । जगत् का पूर्ण वर्णन सभी सरल तर्कवाक्यों को सूचीबद्ध करके किया जा सकता है । इसके पश्चात् यह सूची बनाना चाहिए कि उनमें से कौन सत्य और कौन तर्कवाक्य असत्य हैं । किन्तु ट्रैक्टेटस में वर्णित सिद्धान्त -- सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं, का कोई वास्तविक प्रमाण नहीं है । इस सिद्धान्त की सिद्धि केवल यह दिखाने से नहीं हो सकती है कि किसी तर्कवाक्य के विश्लेषण में हमें सरल तर्कवाक्यों को अवश्य प्राप्त करना चाहिए । यदि यह मान भी लिया जाय कि तर्कवाक्यों के विश्लेषण में हम अन्ततोगत्वा सरल तर्कवाक्यों को प्राप्त करते हैं फिर भी वे केवल विजातीय असम्बद्ध संघात अथवा ऐसे तर्कवाक्यों के संग्रह नहीं हो सकते हैं । किसी जटिल तर्कवाक्य के तात्पर्य को कहने के लिए यही इतना पर्याप्त नहीं है कि एक-एक करके सरल तर्कवाक्यों की एक लम्बी सूची पढ़ा जाय । सरल तर्कवाक्यों को एक-दूसरे से किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही सम्बद्ध होना चाहिए ।

विटगेंस्टाइन ने इस बात का अनुभव भी किया, किन्तु वह कभी भी स्पष्ट रूप से नहीं बता पाया कि क्यों सभी आवश्यक संयोजक अनिवार्य रूप से सत्यताफलनात्मक होने चाहिए । फिर भी उसके ऐसा सोचने का कुछ कारण अवश्य है । इनमें से मुख्य रूप से तीन विन्दु विचारणीय हैं --

1- विटगेंस्टाइन ने सोचा कि यह दिखाया जा सकता है कि सामान्य तर्कवाक्य वस्तुओं के बारे में विशेष तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं ।

2- उसने अवश्य सोचा होगा कि विशेष तर्कवाक्य जो जटिल व्यक्तियों के बारे में वस्तुत: सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं ।

3- उन स्थितियों में जहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि एक तर्कवाक्य दूसरे में सत्यता-फलन की युक्ति से भिन्न रूप में घटित होता है तो ऐसा दिखाया जा सकता है कि प्रतीति प्रवञ्चनात्मक है । पिचर ने इन तीनों ही विन्दुओं पर विचार किया है । सामान्य तर्कवाक्यों के दो मौलिक भेद हैं --

(1) सर्वव्यापी या सामान्य - जैसे - " प्रत्येक व्यक्ति जो इस कमरे में है," एक टोपी रखता है ।

(2) अस्तित्ववाची तर्कवाक्य - कम से कम एक या कुछ व्यक्ति इस कमरे में हैं और उनके पास एक टोपी है । ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम एक अस्तित्ववाची तर्कवाक्य व्यक्तियों का कथन करने वाले तर्कवाक्यों का सत्यता-फलन है । कमरे में कुछ व्यक्ति हैं और उनके पास हैट है, का अर्थ है या तो जाॅन कमरे में है और उसके पास हैट है अथवा स्मिथ कमरे में है और उसके पास हैट है अथवा राॅबिन्सन कमरे में है और उसके पास हैट है इत्यादि । "या .... अथवा " (Either ..... Or) एक सत्यताफलनात्मक संयोजक है । जटिल तर्कवाक्य P_1 अथवा P_2 अथवा .... सत्य है यदि इनमें से एक भी विकल्प सत्य है ।

इसी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि सामान्य तर्कवाक्य जटिल व्यक्तियों के बारे में कथन करने वाले तर्कवाक्यों के संयोजन के सम हैं । इस कमरे में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास एक हैट है का अर्थ यह नहीं है कि जॉन कमरे में है और उनके पास हैट है और स्मिथ कमरे में है और उसके पास हैट है इत्यादि । हमें इस तर्कवाक्य में यह अवश्य ही जोड़ना पड़ेगा कि जॉन, स्मिथ और राबिन्सन ही वे व्यक्ति हैं जो इस कमरे में हैं । इससे यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है कि प्रत्येक सामान्य तर्कवाक्य हमेशा एक अपरिवर्तनीय सामान्य घटक अपने में समाहित करता हैं । किन्तु विटगेंस्टाइन की विचारधारा इससे भिन्न है । उसके अनुसार जटिल वस्तुओं के बारे में कथन करने वाले सार्वभौमिक तर्कवाक्य वस्तुओं के बारे में कथन करने वाले सार्वभौमिक तर्कवाक्यों में घटाये जा सकते हैं क्योंकि उसने सोचा था कि वस्तुएं समस्त जटिल पदार्थों के अन्तिम घटक हैं (ट्रैक्टे० 2·0201) । दूसरे उसने सोचा कि वस्तुओं के बारे में सामान्य तर्कवाक्य अवश्य ही सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन होने चाहिए ।

रसेल के अनुसार सामान्य तर्कवाक्यों और तार्किक तर्कवाक्यों के बीच में व्यावहारिक भेद करना बहुत ही महत्वपूर्ण है । बहुत सी अभिव्यक्तियां जो सामान्य तर्कवाक्य प्रतीत होती हैं उन्हें वास्तव में देखा जाय तो वे तर्कवाक्य हैं ही नहीं । रसेल ने सामान्य तर्कवाक्यों को एक बहुत बड़ा Stumbling Block माना है । वे "सब" और "कुछ" शब्द के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं । रसेल के अनुसार सामान्य तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन के रूप में विश्लेषित नहीं किये जा सकते हैं । सामान्य तर्कवाक्यों के अनुरूप एक विशेष प्रकार के सामान्य तथ्य होते हैं[2]। रसेल की इस युक्ति में बल अवश्य है किन्तु विटगेंस्टाइन ने सामान्य तथ्यों की सत्ता को स्वीकार नहीं किया है । अतः वह सामान्य तर्कवाक्यों को अन्य तर्कवाक्यों से विजातीय नहीं समझता है । उसके अनुसार सामान्य तर्कवाक्य उसी प्रकार सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं, जैसे कि अन्य मिश्रित तर्कवाक्य ।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि वस्तुओं के बारे में कथन करने वाले सामान्य तर्कवाक्यों और जटिल वस्तुओं के बारे में कथन करने वाले तर्कवाक्यों के बीच में भेद क्यों है ? उदाहरण के लिए – सामान्य तर्कवाक्य — सभी वस्तुएं ग गुण रखती हैं । क्यों हम यह संयोजन नहीं जोड़ते है "अ" वस्तु में ग गुण है और "ब" वस्तु में ग गुण है और "स" वस्तु में ग गुण है । अगला तर्कवाक्य और a, b , c .... वस्तुएं हैं, ठीक वैसे जैसे कि हमने जटिल वस्तुओं के बारे में सामान्य तर्कवाक्यों को लिया था । विटगैंस्टाइन का उत्तर यह है कि ऐसे अतिरिक्त तर्क वाक्यों की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि ऐसा कोई तर्कवाक्य होता ही नहीं है । (ट्रैक्टे 4.1272(4) । भ्रामक तर्कवाक्य का विश्लेषण "और a,b,c ... . सभी वस्तुएं हैं ", को ऐसे तर्कवाक्य को समाहित करना पड़ेगा जैसे — अ एक वस्तु है और ऐसे तर्कवाक्य निरर्थक हैं अथवा निरर्थक तर्कवाक्य नहीं हो सकते हैं । हम यह अवश्य कह सकते हैं कि ऐसा कोई तर्कवाक्य नहीं है जैसे अ एक वस्तु है । इसका कारण है कि प्रत्येक सार्थक तर्कवाक्य अवश्य एक महत्वपूर्ण निषेध रखता है । यदि वाक्य उ0 वि0 है, एक तर्कसंगत तर्कवाक्य व्यक्त करता है तो उसे अवश्य ही ~ (उ0वि0 है) और उ0 वि0 है दोनों को व्यक्त करना चाहिए । यदि उ0 वि0 है निरर्थक है तो ~ (उ0वि0 है) और इसका विपरीत भी निरर्थक होगा । उदा0 के लिए यह कहना कि "किताब लाल है " सार्थक है या अर्थपूर्ण है तो यह कहना कि किताब लाल नहीं है अर्थपूर्ण है किन्तु यह कहना अर्थयुक्त नहीं है कि सत्यता लाल है । और इसलिए इसका कोई अर्थ नहीं है कि सत्यता लाल नहीं है । सत्यता लाल है, किसी तर्कवाक्य को नहीं व्यक्त करता है । और न "सत्यता लाल नहीं है" ही किसी तर्कवाक्य को व्यक्त करता है । विटगैंस्टाइन के अनुसार स्वीकारात्मक तर्कवाक्य अनिवार्य रूप से एक निषेधात्मक तर्कवाक्य की पूर्वापेक्षा रखता है । अपने नोट बुक में भी उसने इस बात को स्वीकार किया है ।[3] यदि हम इस सिद्धान्त का प्रयोग तर्कवाक्य पर करते हैं कि अ एक वस्तु है तो हम देखते हैं कि वस्तुतः यह एक तर्कवाक्य नहीं है क्योंकि इसका निषेध तर्कवाक्य नहीं

है ।[4] वस्तुओं का वर्ग मनुष्यों और पुस्तकों के वर्ग के विपरीत हमारे शब्द कोष अथवा व्याकरण के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जैसा कि उसने इसे कुछ वर्षों बाद प्रस्तुत किया । ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन का ऐसा ही विचार था किन्तु बाद के वर्षों में उसे अपनी इस भूल का अनुभव हुआ । जी०ई० मूर ने भी विटगैंस्टाइन की इस भूल की ओर संकेत किया है ।[5] पिचर के अनुसार वह विकल्प और संयोजन का प्रयोग अस्तित्ववाची और सर्वव्यापी सामान्य तर्कवाक्यों के विश्लेषण में नहीं करता, बल्कि एक सत्यता फलनात्मक संयोजन का प्रयोग करता है जिसके द्वारा "या .... अथवा" §Either ...Or § अथवा "और " § And § परिभाषित किये जा सकते हैं । यह एकाकी §Single § संयोजक H.M.Sheffer का " न तो .... नहीं" §Neither ....nor § है । जिसका प्रतीकीकरण Stroke " "|" के द्वारा व्यक्त किया गया है । जैसे p / q । इसे Neither P nor q अथवा not P and not q पढ़ा जाएगा ।

ट्रैक्टेटस में इसका कोई उल्लेख नहीं है कि जटिल व्यक्तियों के बारे में कथन करने वाले तर्कवाक्य वास्तव में सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन हैं किन्तु विटगैंस्टाइन की यह मान्यता अवश्य रही होगी । किन्तु यह कहना संदिग्ध है । उदाहरण के लिए जॉन ने स्मिथ को कर्ज देने के लिए चेक पर हस्ताक्षर किये, इस तर्कवाक्य के तात्पर्य में व्यक्ति, बैंकिंग, अर्थ या आर्थिक पहलू, नैतिक क्रिया-कलाप और दूसरे बहुत से संप्रत्यय निहित हैं । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अविश्वसनीय लगता है कि इसे सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन के रूप में अभिव्यक्त किया जा सके । इसके लिए यह आवश्यक होगा कि इसके पक्ष में पर्याप्त मात्रा में युक्तियाँ प्रस्तुत की जायें । किन्तु ट्रैक्टेटस में इस संदर्भ में कोई युक्ति नहीं दी गयी है । विटगैंस्टाइन ने तर्कवाक्यों के एक ऐसे प्रकार का परीक्षण किया है जिसमें उसका अभिमत असत्य प्रतीत होता है । § ट्रैक्टे० 5.541 § । -- प्रथम दृष्टि में ऐसा लगता है : मानों एक वाक्य के अन्दर दूसरा वाक्य किसी और तरह से भी स्थित हो सकेगा । विशेषत: मनोविज्ञान के वाक्य स्वरूपों में । जैसे --" अ सोचता है कि ब वस्तुस्थिति है " , अ ब सोचता है " आदि । किन्तु यह स्पष्ट है कि

अ का विश्वास है कि वा, अ, वा सोचता है, " अ, वा कहता है " का स्वरूप "वा" फिर वा कहता है "क" है । .... इत्यादि (ट्रैक्टे0 4.542) ।

ऐसा लगता है कि "अ" सत्यफलनात्मक ढंग से तर्कवाक्य "त" एक दूसरे तर्कवाक्य में घटित हो सकता है । (अ विश्वास करता है कि त) । पिचर के अनुसार यह विटगैंस्टाइन के सिद्धान्त के विपरीत है । अपने एक उद्धरण (ट्रैक्टे0 5.542) में विटगैंस्टाइन कहता है कि ऐसी प्रतीति भ्रामक है । जब ऐसे तर्कवाक्यों का सही विश्लेषण होता है तो वे सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन के रूप में अभिव्यक्त होने लगते हैं । इस प्रकार विटगैंस्टाइन की मान्यता है कि सभी तर्कवाक्य सरल तर्क वाक्यों के सत्यता-फलन हैं । एच0 एम0 शेफर ने सिद्ध किया है कि सभी सत्यता फलनात्मक संयोजक मूलभूत सत्यताफलनात्मक संयोजक के पदों में परिभाषित किये जा सकते हैं । (ट्रैक्टे0 5.3) → सभी वाक्य मूल वाक्यों पर सत्य व्यापारों के परिणाम हैं । सत्य व्यापार वह विधि है जिसमें मूल वाक्यों से कोई सत्यवृत्ति उत्पन्न होती है ।

सत्य व्यापारों के स्वभावानुसार ठीक उसी तरह सत्यवृत्तियों से कोई नयी सत्यवृत्ति उत्पन्न होती है जैसे मूलवाक्यों से उनकी सत्यवृत्तियाँ । प्रत्येक सत्य व्यापार मूलवाक्यों की सत्यवृत्तियों से मूलवाक्यों की एक अन्य सत्यवृत्ति, एक वाक्य उत्पन्न करता है । मूलवाक्यों पर सत्यवृत्तियों के परिणामों पर हुए प्रत्येक सत्य व्यापार का परिणाम साथ ही मूलवाक्यों पर एक सत्य व्यापार का भी परिणाम है ।

पिचर द्वारा निर्दिष्ट पूर्वोक्त तीन प्रकार के तर्कवाक्यों के अतिरिक्त ऐसे अनेक तर्कवाक्य हैं जो विटगैंस्टाइन के इस सिद्धान्त कि — भाषा के सभी कथन सत्यवृत्यात्मक होते हैं, निषेध करते हैं । एन्सकोम्ब ने ऐसे तर्कवाक्यों की सूची प्रस्तुत की है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं— अनुमान के नियम और सामान्यता, तार्किक सत्य, दो कथनों के प्रतिपत्ति सम्बन्ध, सब और कुछ परिमाणक युक्त तर्कवाक्य, गणित के आधार स्वरूप कुछ महत्वपूर्ण तर्कवाक्य जैसे — a, b का उत्तरवर्ती

है, संभावना, असंभावना, अनिवार्यता, निश्चयता इत्यादि से सम्बन्धित कथन, तादात्म्य के कथन, तर्कवाक्यों के व्यापार को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने वाले तर्कवाक्य जैसे -- यह अच्छा है कि त अथवा त संभव है, त अनिवार्य है अथवा अ विश्वास करता है प, अ विचार करता है प इत्यादि ।

प्रसंभाव्यता से सम्बन्धित गणित के तर्कवाक्य, प्रकृति के नियमों का कथन करने वाले तर्कवाक्य, देश और काल के विषय में कथन करने वाले तर्कवाक्य, आत्म केन्द्रित तर्कवाक्य, सम्पूर्ण जगत्, ईश्वर और जीवन के अर्थ से सम्बन्धित तर्कवाक्य ।[6]

एन्सकोम्ब के अनुसार चित्र-सिद्धान्त सत्यता-फलन के अतिरिक्त तर्कवाक्यों के किसी व्यापार की अनुमति नहीं प्रदान करता है । वस्तुत: हमें विटगेंस्टाइन के तर्कवाक्यों के सिद्धान्त को चित्र-सिद्धान्त और सत्यतावृत्ति के सिद्धान्त का संश्लेषण नहीं समझना चाहिए । उसका चित्र-सिद्धान्त और सत्यतावृत्ति का सिद्धान्त एक और वही है अर्थात् दोनों में कोई भेद नहीं है । एन्सकोम्ब के कहने का तात्पर्य यह है कि विटगेंस्टाइन का भाषा-सिद्धान्त, जिसके अनुसार सभी सार्थक तर्कवाक्य अन्य तर्कवाक्यों की सत्यतावृत्तियां हैं विटगेंस्टाइन का तर्कवाक्यों का प्रसिद्ध चित्र-सिद्धान्त है ।[7]

वे सत्यता-फलन जो सभी दशाओं में सत्य होते हैं पुनरूक्ति कहे जाते हैं । पुनरूक्ति कोई नयी सूचना नहीं देते हैं । इसके विपरीत वे सत्यतावृत्तियां जो सभी दशाओं में असत्य होती हैं, व्याघात कही जाती हैं । विटगेंस्टाइन के अनुसार सभी तार्किक तर्कवाक्य पुनरूक्ति के रूप में प्रदर्शित किये जा सकते हैं । तर्कशास्त्रीय सत्य केवल पुनरूक्तियां हैं, जो कोई नयी सूचना नहीं देते हैं । (ट्रैक्टे० 6·1) । तर्कशास्त्र के तर्कवाक्य पुनरूक्तियां हैं (ट्रैक्टे० 6·1) । अत: तर्कशास्त्र के तर्कवाक्य कुछ नहीं कहते (ट्रैक्टे० 6·12) । तर्कशास्त्र के कथन पुनरूक्तियां है, इससे भाषा और जगत् का आकार व्यक्त होता है ।

विटगेंस्टाइन का सत्यताफलन सिद्धान्त उसके तर्कशास्त्र से भी सम्बन्धित है । उसका तर्कशास्त्र उसके पुनरूक्ति विषयक विचार पर निर्भर है । पुर्नकथन एक ऐसी

सत्यतावृत्ति है, जो परमाणविक या सरल तर्कवाक्यों की सभी सत्य दशाओं या संभावनाओं के साथ सहमति व्यक्त करता है । व्याघात उन सबके साथ असहमति व्यक्त करता है । सार्थक कथनों के विपरीत पुनर्कथन कुछ नहीं कहते हैं । वाक्य जो कहता है उसे प्रदर्शित करता है । पुनरूक्ति और व्याघात कुछ नहीं कहते । पुनरूक्ति की कोई सत्य स्थितियां नहीं हैं क्योंकि वह शर्तहीन (स्थितिहीन) रूप से सत्य है और व्याघात किसी भी शर्त पर सत्य नहीं है । पुनरूक्ति और व्याघात अर्थहीन हैं जैसे – (1) (वर्षा हो रही है अथवा नहीं हो रही है) यह कथन मौसम के बारे में कोई सूचना नहीं देता है । इसके विपरीत वर्षा हो रही है और नहीं हो रही है, ऐसे बिन्दु के समान हैं जहाँ से दो तीर परस्पर विपरीत दिशाओं में चलते हैं । (ट्रैक्टे0 4·4611) । किन्तु पुनरूक्ति और व्याघात निरर्थक नहीं हैं । वे प्रतीक भाषा के अंग हैं, ठीक उसी तरह जैसे शून्य (Zero) अंकगणित की प्रतीक भाषा का अंग है (ट्रैक्टे0 4·462) । पुनरूक्ति और व्याघात सत्ता के चित्र नहीं हैं । वे किसी भी संभव वस्तुस्थिति को रूपायित नहीं करते हैं क्योंकि एक "पुनरूक्ति" प्रत्येक संभव स्थिति को स्वीकार करता है, "व्याघात" किसी को भी नहीं ।

विटगेंस्टाइन के अनुसार पुनर्कथन के सभी प्रतिस्थापन अंग अर्थ रखते हैं, किन्तु यह ऐसा है कि इन अंगों के बीच का सम्बन्ध एक-दूसरे को नष्ट कर देता है । अतः वे सभी किसी अप्रासंगिक तरीके से जुड़े हैं । उसने पुनर्कथन की तुलना एक यन्त्र में दन्त चक्र के मन्द गति से चलते हुए पहिये से की है । प्रश्न यह उठता है कि यदि पुनरूक्ति और व्याघात किसी स्थिति के चित्र नहीं हैं तो उन्हें तर्कवाक्य क्यों कहा जाय ? मास्लो ने इसके तीन कारण बताये हैं —

1- प्रथमतः वे सत्यतावृत्ति की निर्गमन गणना से स्वतः परिणमित होते हैं ।
2- वे परमाणविक तर्कवाक्यों से विरचित हैं ।
3- वे सत्यता-फलन की युक्ति के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।[8]

पुनरूक्ति को समझने के लिए पुनरूक्ति में घटित होने वाले चरों के सत्यतामूल्य को अवश्य जानना चाहिए । अतः शब्द के साथ पुनरूक्ति का सम्बन्ध इस प्रकार है कि समस्त तर्कवाक्यों को पुनरूक्ति के द्वारा प्रदर्शित की गयी विशेषताओं को अवश्य रखना चाहिए । $P \vee \sim P$ एक पुनरूक्ति है जो किसी विशेष तर्कवाक्य के बारे में कोई सूचना नहीं देती । किन्तु यह दिखाता है कि कोई विशेष तर्कवाक्य अनिवार्य रूप से इस प्रकार का होगा कि इसका तात्पर्य इसके निषेध के तात्पर्य को प्रच्छन्न रखता है ।[9] (ट्रैक्टे0 6.111)—" वे सिद्धान्त सदैव असत्य हैं जो तर्कशास्त्र के वाक्यों को वस्तुस्थिति- परक रूप में दिखाते हैं ।" उदाहरणार्थ, यह विश्वास किया जा सकता है कि "सत्य" और "असत्य" ये दो शब्द दो गुणों का अन्य गुणों के मध्य निर्देश करते हैं, और तब यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रतीत होगा कि प्रत्येक वाक्य में इन गुणों में से एक होता है । अब यह किसी तरह स्वतः प्रामाण्य नहीं जान पड़ता,उससे अधिक नहीं जितना कि वाक्य "सभी गुलाब या तो पीले हैं,या लाल" पड़ेगा, यदि वह सत्य भी हो । निस्संदेह अब वह वाक्य प्राकृत विज्ञान के वाक्यों की चारित्रिक विशेषता से युक्त हो जाता है और यह उसके गलत रूप में समझे जाने का एक निश्चित ज्ञापक है ।"

तर्कशास्त्र का सम्बन्ध प्रतीकीकरण के नियमों से है । तर्कशास्त्र का इस प्रश्न से कोई सम्बन्ध नहीं है कि हमारा जगत् वास्तव में इस प्रकार का है (ट्रैक्टे05.61) — तर्कशास्त्र जगत् को परिपूरित करता है, जगत् की सीमाएं उसकी भी सीमायें हैं ।

इसलिए तर्कशास्त्र में हम यह नहीं कह सकते ; यह और यह जगत् में है, वह नहीं ।

क्योंकि उसमें प्रकटतः यह मान्यता होगी कि हम किन्हीं संभावनाओं का बहिष्कार करते हैं, और वस्तुस्थिति इस तरह नहीं हो सकती,क्योंकि तब आवश्यक

होगा कि तर्कशास्त्र जगत् से परे निकल जावे, अर्थात् जब वह दूसरी ओर से भी इन सीमाओं का पर्यालोचन कर सके ।

जो हम नहीं सोच सकते, वह हम नहीं सोच सकते; इसलिए हम कह नहीं सकते कि हम नहीं सोच सकते ।"

रसेल के अनुसार औपचारिक दृष्टि से तर्कशास्त्र के तर्कवाक्यों की अनिवार्य कसौटी इस प्रकार है कि वे तार्किक चरों के साथ-साथ Logical constants के द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त किये जा सकते हैं । उसके अनुसार तर्कशास्त्र के तर्कवाक्यों की परिभाषा न केवल उनकी पूर्ण सामान्यता को बल्कि उनकी कुछ अन्य विशेषताओं को अपने में समाहित करती है । और इसे उसने पुनरूक्ति की विशेषता बतलाया है । किन्तु वह इसकी सन्तोषजनक परिभाषा न दे सका । उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि तर्कशास्त्र की परिभाषा .... पुराने विश्लेषणात्मक तर्क वाक्यों की एक नयी परिभाषा देने का प्रयास करके खोजी जा सकती है ।[10] रसेल के अनुसार पुनरूक्ति का महत्व मुझसे मेरे पूर्ववर्ती शिष्य लुडविग विटगेंस्टाइन के द्वारा बतायी गयी, जो इस समस्या पर कार्य कर रहा था ।

विटगेंस्टाइन के चित्र-सिद्धान्त का निरूपण करने के पश्चात् पूर्ववर्ती विटगेंस्टाइन का भाषा-सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है । चित्र-सिद्धान्त साधारण भाषा से सम्बन्धित है । विटगेंस्टाइन ने अपना दार्शनिक जीवन तर्कशास्त्र से प्रारम्भ किया था । जिसने उसे भाषा के तत्त्व की ओर अग्रसारित किया । विटगेंस्टाइन इस प्रकार तार्किक दृष्टि से पूर्ण भाषा की संरचना से संबंधित है, जो सत्यवृत्यात्मक है और जिसके सभी तर्कवाक्य सार्थक हैं । साधारण भाषा और दार्शनिक भाषा, इस तार्किक रूप से पूर्ण भाषा के द्वारा स्थानान्तरित कर दी जानी चाहिए । साधारण भाषा सार्थक तर्कवाक्यों को तभी अभिव्यक्त करती है, जबकि यह इस आदर्श से सुसंगत हो । तार्किक रूप से पूर्ण भाषा की खोज एक भूल है । ऐसा कहा जाता है कि ट्रैक्टेटस का भाषा दर्शन केवल तार्किक रूप से परिपूर्ण भाषा से ही सम्बन्धित है, जब कि Philosophical Investigations साधारण

भाषा से सम्बन्धित है । रसेल जैसे प्रमुख समकालीन दार्शनिक की यही मान्यता है ।[11] उनके अनुसार विटगेंस्टाइन तार्किक रूप से परिपूर्ण भाषा की शर्तों से सम्बन्धित है । .... भाषा का सम्पूर्ण व्यापार अर्थयुक्त होना है और यह कार्य यह उसी अनुपात में पूरा करती है जिस अनुपात में यह आदर्श भाषा के निकट पहुँचती है, जिसकी हम पूर्वमान्यता रखते हैं ।[12] ट्रैक्टेटस और Philosophical Investigations की मुख्य समस्या यह समझना है कि भाषा कैसे तात्पर्य की वाहिका होती है ? तार्किक रूप से परिपूर्ण भाषा में वाक्य विन्यास के नियम होते हैं जो निरर्थकता को रोकते हैं । भाषा का एक मात्र कार्य तथ्यों को स्वीकार करना है । यदि एक निश्चित वाक्य एक निश्चित तथ्य को स्वीकार करता है तो भाषा की संरचना वाक्य के आकार और तथ्य के आकार के बीच में की जाती है । कोपी के अनुसार साधारण भाषा को अस्वीकार करना अपना प्रभुत्व जमाने के लिए प्रतीत होता है । विटगेंस्टाइन एक पर्याप्त अंकन-पद्धति की संरचना से सम्बन्धित था ।[13] ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन साधारण भाषा की आलोचना करता है । ट्रैक्टेटस के अनुसार भाषा की सीमाएं सत्ता की सीमाएं हैं । ऐसा कहने के बदले हम यहभी कह सकते हैं कि भाषा की सीमाएं जगत् की वास्तविकता की सीमाएं हैं । (ट्रैक्टे० 5.6) —— मेरी भाषा की सीमाओं का अर्थ मेरे जगत् की सीमायें हैं और (ट्रैक्टे० 4.001) —— " वाक्यों की समग्रता भाषा है । इस प्रकार भाषा समस्त तर्कवाक्यों की समग्रता है । " प्रत्येक दिन की भाषा मानव जीवन का एक अंग है और इसकी अपेक्षा कम जटिल नहीं है" (ट्रैक्टे० 4.002) । कई स्थानों पर विटगेंस्टाइन ने कहा है साधारण भाषा तार्किक दोषों से बिल्कुल मुक्त है । (ट्रैक्टे० 5.5563) —> हमारी साधारण बोलचाल की भाषा के समस्त वाक्य वस्तुतः जैसे वे हैं, तर्कतः पूर्ण रूप से व्यवस्थित हैं । वह असंश्लिष्ट, जिसे हमें यहाँ प्रस्तुत करना ही चाहिए, सत्यता की कोई सारूप्यता नहीं, वरन् स्वतः पूर्ण सत्यता ही है ।

(हमारी समस्यायें अमूर्त नहीं, वरन् सर्वाधिक ठोस (समस्याओं) में से हैं) ।

विटगेंस्टाइन किसी पूर्णभाषा की शर्तों से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि सभी महत्वपूर्ण भाषाओं से । वह कहता है कि साधारण भाषा के तर्कवाक्य महत्वपूर्ण हो सकते हैं, बशर्ते वे सरल तर्कवाक्यों के सत्यता-फलन से संरचित हों । इस प्रकार उसकी मान्यतानुसार साधारण भाषा सार्थक भाषा है । सरल चिन्हों के अर्थ की व्याख्या उनके प्रयोग करने वालों को करना चाहिए । एन्सकोम्ब के अनुसार भाषा अर्थ रखने के निकट नहीं हो सकती है, कोई भाषा ठीक भाषा के रूप में अपने उद्देश्य को पूर्णरूप से पूरा करती है । एन्सकोम्ब ने यह भी दिखाया है कि साधारण भाषा के विषय में ट्रैक्टेटस और Philosophical Investigations समान ही हैं । साधारण भाषा के वाक्य तात्पर्य को व्यक्त करने में उसी प्रकार असफल नहीं होते हैं जैसे कि रोमन संख्या एक संख्या को व्यक्त करने में असफल हो जाती है । साधारण भाषा तात्पर्य को व्यक्त करती है जबकि रोमन संख्या एक संख्या को । किन्तु एक ऐसी भाषा, जिसका प्रतीकवाद तार्किक व्याकरण के नियमों का पालन करता है, जिसे कि एक पूर्ण भाषा के रूप में नहीं सोचा जाता है । उसके द्वारा साधारण भाषा को स्थानान्तरित कर देना चाहिए । इसका उद्देश्य केवल भाषा की कार्यशैली और कार्यविधि को व्यक्त करना है । विटगेंस्टाइन कहता है (4.002) —→ " मनुष्य भाषाओं की रचना की क्षमता रखता है, जिनसे हर एक तात्पर्य की अभिव्यक्ति हो सकती है, बिना इसकी धारणा के कि प्रत्येक शब्द का कैसे और क्या अर्थ है ? — वैसे ही जैसे कोई भी व्यक्ति, बिना यह जाने कि कैसे अलग-अलग ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, बोलने लगता है ।[14]

बोलचाल की भाषा मानव शरीर-रचना का एक भाग है और उनसे कुछ कम जटिल नहीं ।

मानव दृष्टिकोण से यह असंभव है कि भाषागत तर्क का तत्काल बोध हो सके ।

भाषा विचार को प्रच्छन्न रखती है, और इसलिए परिवेश के बाह्य रूप को देखकर आवरण युक्त विचार के स्वरूप का निर्णय नहीं किया जा सकता, क्योंकि

परिवेश का बाहयरूप बिल्कुल भिन्न तत्वों से बना होता है, उनसे नहीं जो शरीर के स्वरूप की पहचान करा सकें ।

बोलचाल की भाषा को समझने के लिए मूक समझौते (सुधार, परिष्कार आदि) बड़े ही जटिल हैं ।

आदर्श भाषा का उद्देश्य विचारों को स्पष्ट करना है । ऐसी भाषा को स्पष्टकारक भाषा कहा गया है, क्योंकि इस भाषा का उद्देश्य, जो कुछ प्रच्छन्न (संदिग्ध) है, उसे सुस्पष्ट करना है । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन ने साधारण भाषा और आदर्श भाषा दोनों का उल्लेख किया है (ट्रैक्टे0 6·55) —> मेरे वाक्य इसलिए व्याख्यात्मक हैं कि — जो मेरी बात पूर्णत: समझता है वह उन्हें निरर्थक रूप में जानता है, जब वह उनसे होकर, उन पर, उनके ऊपर चढ़ चुका होता है । (अथवा कहें, सीढ़ी पर चढ़ चुकने के बाद वह अवश्य उसे फेंक दे ।)

वह अवश्य इन वाक्यों को लांघ जाये ; तभी वह जगत् को सही रूप में देखता है ।

अत: इन तर्कवाक्यों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाषा दर्शनशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । इस प्रकार विटगेंस्टाइन ने साधारण भाषा और स्पष्टकारक भाषा में भेद दिखाया है । वह कहता है — जो दिखाया जा सकता है, उसे कहा नहीं जा सकता । स्पष्टकारक भाषा तर्कवाक्यों के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करती है । इसे आदर्श भाषा इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसमें भूल की कोई संभावना नहीं है । जेम्स ग्रिफिन के शब्दों में, "एक आदर्श भाषा विटगेंस्टाइन के लिए आदर्श है, क्योंकि यह उन विशेषताओं को जो साधारण भाषा में संदिग्ध या अस्पष्ट रहती हैं, को स्पष्ट करती है, किन्तु वे विशेषताएं जो आदर्श भाषा के द्वारा व्यक्त की जाती हैं, साधारण भाषा की ही विशेषताएं हैं ।[15] इस प्रकार विटगेंस्टाइन ने ट्रैक्टेटस में साधारण भाषा और आदर्श भाषा दोनों का उल्लेख किया है । यही स्पष्टकारक भाषा सत्यवृत्यात्मक भाषा है ।

जैसा कि विदित है विटगैंस्टाइन के अनुसार सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों की सत्यतावृत्तियां हैं । सभी तर्कवाक्य या तो पुनर्कथन,व्याघाती कथन अथवा वर्णनात्मक तर्कवाक्य हैं । इस बात का विवेचन किया जा चुका है कि पुनरूक्ति और व्याघात कोई कथन नहीं करते । अतः विटगैंस्टाइन की मान्यता है कि वे केवल औपचारिक (आकारिक) हैं । तर्कशास्त्र के तर्कवाक्य केवल पुनरूक्तियां हैं । तर्कशास्त्र और गणित के तर्कवाक्य तात्पर्य हीन हैं किन्तु निरर्थक नहीं हैं । वर्णनात्मक तर्कवाक्य तथ्यों के अस्तित्व अथवा अन-स्तित्व को स्वीकार करते हैं । वह कहता है (ट्रैक्टे० 4.11) —> " सत्य तर्कवाक्यों की समग्रता समस्त प्राकृत विज्ञान हैं ।" दर्शन की ठीक प्रणाली वास्तव में निम्नलिखित होगी —— जो कुछ कहा जा सकता है, उसके अतिरिक्त और कुछ न कहना अर्थात् प्राकृतिक विज्ञान के तर्कवाक्य, जिन्हें दर्शन शास्त्र से कुछ लेना-देना नहीं है (ट्रैक्टे० 6.53) । विटगैंस्टाइन के अनुसार जो भाषा हम बोलते हैं ,उसके बारे में सोच सकते हैं । वह कहता है "सत्ता, जिसका वर्णन किया जा सकता अथवा सोचा जा सकता है "और इसको विशिष्ट करने वाला वाक्यांश, जिसका वर्णन किया जा सकता है अथवा सोचा जा सकता है, को त्यागा जा सकता है ।[16] अतः भाषा की सीमाएं जगत् की सीमाएं हैं । भाषा समस्त तर्कवाक्यों की समग्रता है । विटगैंस्टाइन के अनुसार दार्शनिक कृतियों में पाये जाने वाले अधिकांश तर्कवाक्य और प्रश्न असत्य नहीं हैं । बल्कि निरर्थक (Non sensical) हैं । परिणामस्वरूप इस प्रकार के प्रश्नों का हम कोई उत्तर नहीं दे सकते हैं । दार्शनिकों के अधिकांश तर्कवाक्य और प्रश्न हमारी भाषा के तर्कशास्त्र को समझने की विफलता के कारण उत्पन्न होते हैं । यह विचारणीय है, कि महत्वपूर्ण भाषा कौन सा कथन नहीं कर सकती है । हम तथ्य (State of affairs) के तार्किक आकार का वर्णन नहीं कर सकते हैं, जो स्वयं को भाषा में व्यक्त करता है उसे हम भाषा के द्वारा नहीं व्यक्त कर सकते हैं । जो कुछ दिखाया जा सकता है,उसे कहा नहीं जा सकता है । ट्रैक्टेटस के अन्त में विटगैंस्टाइन कहता है — " मेरे वाक्य इसलिए व्याख्यात्मक हैं कि जो मेरी बात पूर्णतः समझता है, वह उन्हें अर्थहीन रूप में जानता

है'। जब वह उनसे होकर , उन पर , उनके ऊपर चढ़ चुका होता है ‖अथवा कहें, सीढ़ी पर चढ़ चुकने के बाद, वह अवश्य उसे फेंक दे‖। यदि ट्रैक्टेटस के वाक्य निरर्थक हैं तो इसका निष्कर्ष भी निरर्थक होना चाहिए। किन्तु निष्कर्ष यह है कि ट्रैक्टेटस के वाक्य कुछ कहने का प्रयास करते हैं जिसे केवल दिखाया जा सकता है और जिसे कहा नहीं जा सकता है। विटगेंस्टाइन की प्रसिद्ध उक्ति है " जहाँ कोई बोल नहीं सकता है, वहाँ उसे अवश्य ही शान्त रहना चाहिए।" कहने का अर्थ यह है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार जो कुछ कहा जा सकता है,वह प्राकृतिक विज्ञान के तर्कवाक्य हैं। सार्थक भाषा उन तर्कवाक्यों से सम्बन्धित है जो संभावित तथ्यों के चित्र हैं। प्रत्येक महत्वपूर्ण भाषा चित्रात्मक भाषा है। चूँकि ट्रैक्टेटस एक अचित्रात्मक भाषा में लिखी गयी है अतः इसके तर्कवाक्य निरर्थक हैं। ट्रैक्टेटस की भाषा व्याख्यात्मक है। यह भाषा तथ्यों का वर्णन नहीं करती है। किन्तु विटगेंस्टाइन के मन्तव्य की रक्षा ट्रैक्टेटस में प्रयुक्त व्याख्यात्मक भाषा को चित्रात्मक भाषा से पृथक करके, की जा सकती है। विटगेंस्टाइन के दर्शन में तात्पर्यरहित ‖ Senseless ‖, निरर्थक और सार्थक शब्दों की अवधारणा महत्वपूर्ण है। वह तात्पर्यहीन और निरर्थक तर्कवाक्यों में भेद करता है। गणित और तर्कशास्त्र के कथन तात्पर्यहीन है,किन्तु निरर्थक नहीं। क्योंकि उनसे भाषा का स्वरूप व्यक्त होता है। समस्त आनुभाविक तर्कवाक्य सार्थक हैं क्योंकि वे वास्तविक या संभावित तथ्यों के चित्रण हैं। इसके अतिरिक्त अन्य तर्कवाक्य निरर्थक हैं। केवल वें तर्कवाक्य ही सार्थक हैं जो वास्तविक अथवा संभावित तथ्यों का चित्रण करते हैं। वर्णनात्मक तर्कवाक्य भी तात्पर्य रखते हैं। इस प्रकार के सभी तर्कवाक्य तथ्यात्मक हैं। वे स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से यही कहते हैं कि या तो कुछ तथ्यों का अस्तित्व है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त सार्थक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार सम्पूर्ण सार्थक भाषा तथ्यों के बारे में है। विटगेंस्टाइन कहता है -- एक विचार तात्पर्ययुक्त तर्कवाक्य है। भाषा और विचार की सीमायें एक ‖ वही ‖ हैं। दूसरे शब्दों में भाषा और विचार तथ्यों तक सीमित है। तथ्यों का चित्रण सरल तर्कवाक्य करते हैं। इस

प्रकार विटगेंस्टाइन का निष्कर्ष है कि समस्त तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के ही सत्यता-फलन हैं । चूँकि तर्कवाक्य केवल तथ्यों का ही वर्णन कर सकते हैं और भाषा तर्कवाक्यों की समग्रता है । अतः पुनरूक्ति और व्याघात को छोड़कर तथ्यों के अतिरिक्त जो कुछ भी कहा जाता है वह निरर्थक है, जो कुछ कहा जा सकता है वह स्पष्ट रूप से कहा जाय । निरर्थक कथन करने की अपेक्षा चुप रहना अच्छा है । जो कुछ नहीं कहा जा सकता है, उसे कहने का प्रयास नहीं करना चाहिए । यदि ऐसा किया जाता है तो भ्रामक दर्शन के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त होता । हम अतीन्द्रिय तत्वों, जैसे - आत्मा,ईश्वर इत्यादि के बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं । तर्कवाक्य किसी उच्च स्तरीय सत्ता का चित्रण नहीं कर सकते हैं । नीतिशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र में निरूपित तत्व अतीन्द्रिय हैं; अतः वे निरर्थक हैं । भाषा के द्वारा उनका वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके अनुरूप जगत् में कोई तथ्य नहीं हैं ।

Notes and References

1. Pitcher, G., The Philosophy of Wittgenstein pp. 57-58.

2. Russell, B., Monist Article, Lecture - 5.

3. Wittgenstein, L., Note books 5/6/15

4. Moore, G.E., Wittgenstein's Lecture, 1930-33.

5. Moore, G.E., Philosophical papers, pp.297-99.

6. Anscombe, G.E.M., An Introduction to Wittgenstein's Tractatus, pp. 79-80.

7. Ibid P. 81.

8. Maslow, A., A study in Wittgenstein's Tractatus, p.112.

9. Black, M., A Companion to Wittgenstein's Tractatus, p. 330.

10. Russell, B., Introduction to Mathematical Philosophy, p. 202.

11. Ibid pp. 204-205.

12. Wittgenstein, L., Tractatus Logico Philosophicus, p.8.

13. Copi, I.M. Object, Properties & Relations in Tractatus, Reprinted in Essays in Wittgenstein's Tractatus : Edited by Copi and Beard.P.169.

14. Anscombe, G.E.M. An Introduction to Wittgenstein's Tractatus, pp.91-92.

15. Griffin, J. Wittgenstein's Logical Atomism, p.140.

16. Pitcher, G. The Philosophy of Wittgenstein p.141.

चतुर्थ अध्याय

ट्रैक्टेटस के भाषा-सिद्धान्त की आलोचना

ट्रैक्टेटस की रचना पूर्ण होने के बाद विटगेंस्टाइन ने सोचा कि उसने दर्शन की समस्त समस्याओं का समाधान कर दिया है । यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि जब उसने अनुभव किया कि कोई भी महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए अवशेष नहीं है तो उसने दर्शन शास्त्र का परित्याग कर दिया । पासमोर के अनुसार - " वह अपने अभियन्ता के तौर-तरीके में दार्शनिक बना, ताकि जो उसे एक दलदल के रूप में प्रतीत होता था, उससे निकला जा सके । कार्य पूर्ण हो गया है, इससे अधिक कुछ नहीं कहना है ।[1] कुछ दिनों तक विटगेंस्टाइन वियना सर्किल के सदस्यों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क में रहा । मार्च 1928 में उसने वियना में "गणित के आधार" पर प्रवचन सुना था । उसके बाद उसने अनुभव किया कि वह पुनः कुछ रचनात्मक कार्य कर सकता है । उसी वर्ष अपनी डी0फिल0 उपाधि के लिए अपना शोध प्रबन्ध " ट्रैक्टेटस लाँजिको फिलाँसाफिक्स" प्रस्तुत किया और तार्किक आकार पर कुछ "कथन" लिखा । इसका भी मूल आधार ट्रैक्टेटस ही था । इस समय तक उसके मन में कुछ नये विचार प्रसूत हो चुके थे । वास्तव में यह काल ट्रैक्टेटस लाँजिको फिलासाफिक्स से§ फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स § की ओर संक्रमण का समय है । मूर ने इस बात का उल्लेख किया है कि तार्किक आकार पर कुछ टिप्पणियाँ लिखते समय विटगेंस्टाइन के मन में नये विचार विकसित हो रहे थे, जिसके विषय में वह स्पष्ट नहीं था । वह यह नहीं सोचता था कि यह ध्यान देने के योग्य है ।[2] किन्तु अगले कुछ वर्षों में विटगेंस्टाइन को ट्रैक्टेटस के सिद्धान्तों के मिथ्यात्व का बोध होने लगा । अतः विटगेंस्टाइन ने अपने पूर्ववर्ती सिद्धान्तों के विरूद्ध § फिलाँसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स § में जो आक्षेप किया, उन्हें समझना आवश्यक है । उसके परवर्ती विचार उसके पूर्ववर्ती सिद्धान्तों के विरूद्ध आक्षेपों के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुए, इसीलिए फन राइट लिखता है- ट्रैक्टेटस के लेखक ने फ्रेगे और रसेल से सीखा था । उसकी समस्या उनके § रसेल

और फ्रेगे § बाहर विकसित हुई । फिलाँसफिकल इन्वेस्टीगेसन्स का लेखक अपने दर्शन में कोई पूर्वज नहीं रखता ।[3] फन राइट के कहने का तात्पर्य यह है कि पूर्ववर्ती विटगैंस्टाइन अपने दार्शनिक सिद्धान्त के लिए रसेल और फ्रेगे का ऋणी है, किन्तु परवर्ती विटगैंस्टाइन की दार्शनिक विचारधारा बिना किसी प्रभाव के स्वतन्त्र रूप में विकसित हुई । काण्ट की तरह विटगैंस्टाइन ने भी कहा है कि जिस तरह ह्यूम ने काण्ट को रूढ़िवाद § बुद्धिवाद § की मोहनिद्रा से जगाया, उसी प्रकार रैमजे ने विटगैंस्टाइन की मोहनिद्रा भंग किया । उसके परवर्ती विचार एफ0 पी0 रैमजे की आलोचना के घात-प्रतिघात से विकसित हुए । उसे ट्रैक्टेटस के सिद्धान्तों की भ्रामकता का ज्ञान हुआ । अपने जीवन के अन्तिम दो वर्षों में विटगैंस्टाइन ने दार्शनिक समस्याओं पर रैमजे के साथ अनेक बार विचार-विमर्श किया ।

इससे स्पष्ट है कि अपने परवर्ती विचारों के लिए विटगैंस्टाइन किसी का ऋणी नहीं है । अतः उसके विचार मौलिक है । रैमजे के साथ वार्तालाप से उसे केवल ट्रैक्टेटस की निःसारता का ही बोध नहीं हुआ, बल्कि कुछ विध्यात्मक विचारों का भी सुझाव ग्रहण किया । किन्तु अपने नये विचारों के विकास के लिए किसी से प्रभावित नहीं है । अपने परवर्ती ग्रन्थ में विटगैंस्टाइन ने न केवल अपने पूर्ववर्ती विचारों का खण्डन किया, बल्कि भाषा-दर्शन में व्यापक रूप से सामान्यतया स्वीकृत बहुत से सिद्धान्तों का प्रत्याख्यान किया । अर्थ सिद्धान्त की समीक्षा की सही समझ विटगैंस्टाइन के मानसिक घटनाक्रम को समझने की पूर्वशर्त है ।[4] यद्यपि विटगैंस्टाइन फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के प्राक्कथन में लिखता है — " चार वर्ष पहले मुझे अपनी प्रथम कृति के पढ़ने का अवसर मिला और दूसरों को इसके विचारों की व्याख्या करने का अवसर मिला । मुझे शीघ्र ही यह प्रतीत हुआ कि मुझे उन पुराने विचारों को और नये विचारों को साथ-साथ प्रकाशित करना चाहिए । परवर्ती विचार केवल मेरे पूर्ववर्ती विचारों के साथ और विरूद्ध ही सही प्रकाश में देखे जा सकते हैं ।[5]

इन विवरणों को ध्यान में रखते हुए अब हमें ट्रैक्टेटस के सिद्धान्तों के विरुद्ध स्वयं विटगेंस्टाइन के द्वारा उठाये गये आक्षेपों पर विचार करना है। ट्रैक्टेटस का केन्द्रीय सिद्धान्त यह है कि —" जगत् वस्तुओं में विभक्त नहीं होता है, बल्कि तथ्यों में ; और सभी तर्कवाक्य सरल तर्कवाक्यों के सत्यताफलन हैं ; और प्रत्येक तर्कवाक्य केवल एक ही अन्तिम विश्लेषण रखता है। किन्तु फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स (में उसने अनुभव किया कि विश्लेषण का यह प्रत्यय भ्रामक है।

परवर्ती विटगेंस्टाइन के अनुसार किसी वस्तु का विभक्त होना सत्ता के द्वारा निर्धारित नहीं होता। हम एक मिश्रित (संश्लिष्ट) वस्तु का विभाजन विभिन्न दृष्टिकोणों से कर सकते हैं। किसी वस्तु के विश्लेषण की अनेक पद्धतियाँ हैं। अतः यह कहना गलत है कि जगत् तथ्यों में विभक्त होता है और वस्तुओं में नहीं। जाँन विजडम के अनुसार जगत् का विवरण वस्तुओं के पदों में करना, जगत् की गणना तथ्यों के पदों में करना और जगत् की गणना घटनाओं के रूप में करना एक जगत् की तीन भाषाओं में गणना करना है।[6]

विटगेंस्टाइन के अनुसार एक विशेष तरीके में वस्तु या तो सरल होती है अथवा जटिल। फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में वह इसे स्पष्ट करता है कि कोई वस्तु न तो निरपेक्ष रूप में सरल है और न जटिल। ट्रैक्टेटस में उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि नाम पूर्ण रूप से सरल वस्तुओं का निर्देश करते हैं और तर्कवाक्य तथ्यों का कथन करते हैं। किन्तु फिलाँसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स में वह कहता है कि कुछ सन्दर्भों में वस्तु को सरल कहा जा सकता है, किन्तु दूसरे सन्दर्भों में एक भिन्न दृष्टिकोण से वही वस्तु जटिल कही जा सकती है। इस प्रकार वस्तुओं का ऐसा कोई महत्वपूर्ण गुण नहीं है, जिसके आधार पर उन्हें सरल या जटिल कहा जा सके। कोई वस्तु सरल अथवा जटिल है, यह उस संदर्भ पर निर्भर करता है ; जिसमें कि इसे समझा जा रहा है। अतः सरलता और जटिलता वस्तुओं में निहित निरपेक्ष गुण नहीं है। वह कहता है — यदि मैं किसी व्यक्ति से बिना किसी अगली व्याख्या के कहता हूँ, जो मैं इस समय अपने आगे देखता हूँ, वह जटिल है,

तो उसे यह पूँछने का अधिकार होगा, "जटिल से तुम्हारा क्या अर्थ है ?" क्योंकि अनेक प्रकार की वस्तुएं हैं जिनका अर्थ वह (जटिल) हो सकता है । यह प्रश्न, जो तुम देखते हो, क्या वह जटिल है ? एक अच्छा तात्पर्य व्यक्त कर सकता है, बशर्ते यह स्थापित हो चुका हो कि वह किस प्रकार की जटिलता है, जिस विशेष प्रकार के शब्द का प्रयोग तथाकथित प्रश्न में हुआ है । उदाहरण के लिए क्या एक इंच लम्बी लाइन सरल है अथवा जटिल ? एक विशेष तरीके से इसकी ओर देखने के अलावा किसी संदर्भ से अलग, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि इसमें तात्पर्य का अभाव है । अतः अन्त में विटगेंस्टाइन सोचता है- यह इस दार्शनिक प्रश्न "क्या यह इस जटिल चिन्ह की दृश्य प्रतिमा है और इसके अंग क्या हैं ? इसका सही उत्तर इस पर निर्भर करता है कि तुम "जटिल" से क्या समझते हो । वस्तुतः यह प्रश्न का उत्तर नहीं है, बल्कि प्रश्न का निराकरण है ।[7]

विटगेंस्टाइन के अनुसार कोई भी वस्तु निरपेक्ष रूप से सरल नहीं है । यदि तथ्यों का परमाणविक तत्वों में विश्लेषण द्व्यर्थक नहीं है तो तर्कवाक्यों का सरल वाक्यों में निश्चित विश्लेषण भी नहीं हो सकता । किसी वस्तु का केवल एक ही अन्तिम विश्लेषण नहीं हो सकता है । यह उल्लेखनीय है कि ट्रैक्टेटस में उसकी मान्यता यह थी कि प्रत्येक वाक्य का केवल एक ही अन्तिम विश्लेषण हो सकता है । प्रत्येक तर्कवाक्य एक पूर्णरूप से निश्चित तात्पर्य रखता है (ट्रैक्टे0 3.251) उसकी इसी मान्यता ने उसे यह तर्क करने के लिए प्रेरित किया कि तर्कवाक्य सत्यताफलनात्मक है और उनका विश्लेषण सरल तर्कवाक्यों में ही हो सकता है । फिलासाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में वह लिखता है कि वाक्य का अवश्य ही एक निश्चित अर्थ होना चाहिए । एक अनिश्चित तात्पर्य वास्तव में कोई तात्पर्य है ही नहीं । यह एक अनिश्चित सीमा के समान है, जो कोई सीमा नहीं है । यहाँ पर शायद कोई सोच सकता है, यदि मैं कहता हूँ — मैंने उस व्यक्ति को कमरे में ताला लगाकर बंद कर दिया है, केवल एक ही दरवाजा खुला है, तो मैंने सरल रूप से उसे ताला लगाकर बंद नहीं किया है । उसको, उसको कमरे में बंद करना एक ढोंग है । यहाँ पर कोई व्यक्ति कहना चाहेगा कि तुमने कुछ भी नहीं किया है ।[8]

दूसरे शब्दों में यदि कोई वाक्य तात्पर्ययुक्त है तो उसे अवश्य ही निश्चित तात्पर्य रखना चाहिए । निःसंदेह कोई वाक्य संदिग्ध हो सकता है, किन्तु इसे अवश्य ही एक पूर्णतया निश्चित तात्पर्य रखना चाहिए । पूर्ववर्ती विटगेंस्टाइन ने इस अवधारणा के आधार पर अपने दर्शन का विकास किया । परवर्ती विटगेंस्टाइन ने अनुभव किया कि यह एक पूर्व विचारित प्रत्यय है, न कि वास्तविक विश्लेषण का परिणाम । 1932-33 के अपने प्रवचन में विटगेंस्टाइन ने कहा कि न तो रसेल ने, न स्वयं उसने परमाणविक तर्कवाक्य का कोई उदाहरण प्रस्तुत किया है ।[9] वह लिखता है - वह व्यक्ति जो दार्शनिक उलझन में है, जिस तरीके से शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं उसमें एक नियम देखता है ।[10] वह अन्यत्र कहता है, हम यह कहना चाहते हैं कि तर्कशास्त्र में कोई संदिग्धता नहीं हो सकती है । यह विचार हमें सम्मोहित करता है कि यह आदर्श सत्ता में अवश्य पाया जाना चाहिए ।[11] यह विचार कहाँ से आता है, यह हमारी नाक पर शीशे के उस युग्म के समान है, जिसके माध्यम से हमः जिस किसी भी वस्तु की ओर देखते हैं, हम उसे देखते हैं । ....।[12]

1932-33 के अपने प्रवचन में विटगेंस्टाइन ने कहा है कि तर्कशास्त्र की भूमिका उन मान्यताओं से कुछ भिन्न है ; जो मान्यताएं तर्कशास्त्र के सम्बन्ध में विटगेंस्टाइन, रसेल और फ्रेगे ने परिकल्पित किया था । वह तर्कशास्त्र की एक खेल के अतिरिक्त एक सामान्य परिभाषा नहीं दे सकता है । उसने पुनः कहा कि वह "तात्पर्य" (Sense) " — अभिव्यक्ति के द्वारा बहुत ही अधिक भ्रमित हुआ । उसके अनुसार न तो तात्पर्य को और न ही तर्कवाक्य को कठोरता के साथ बांधा जा सकता है । अन्ततोगत्वा उसका निष्कर्ष है कि "तात्पर्य रखता है " (Makes sense) संदिग्ध है और विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न तात्पर्य रखेगा ।[13]

इसी प्रकार वह ब्ल्यू बुक्स में कहता है कि शब्दों का प्रयोग कोई एक सुनिश्चित तात्पर्य नहीं रखता है ।[14] फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स में वह कहता है कि उसने कभी भी वास्तविक प्रयोगों की गवेषणा नहीं किया । उसके भाषा-सिद्धान्त की आवश्यकता यह है कि अवश्य ही वास्तविक आकार अथवा ठीक तात्पर्य

होना चाहिए । किन्तु यदि हम पहले से स्वीकृत विचारों का परित्याग कर दें और वास्तविक प्रयोगों की ओर देखें तो हम पाते हैं कि हमारी भाषा पूर्ववर्ती आवश्यकताओं के साथ सुसंगत नहीं है ।[15] यह कहना गलत है कि हम किसी तर्क वाक्य को तभी समझ सकते हैं जब यह एक पूर्णरूप से निश्चित अर्थ रखता हो । अपने वास्तविक वाद-विवाद में हम ऐसे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जो संदिग्ध और अनिश्चित हैं, किन्तु वे हमारे समक्ष कोई कठिनाई नहीं उपस्थित करते । बहुत से शब्द कठोरतापूर्वक सुनिश्चित अर्थ नहीं रखते, किन्तु यह दोषपूर्ण नहीं है । ऐसा सोचना यह कहने के सदृश है कि मेरे वास्तविक दीपक का प्रकाश वास्तविक प्रकाश नहीं है क्योंकि इसकी कोई सुनिश्चित सीमा नहीं है ।[16] यदि ये संदिग्ध अभिव्यक्तियाँ कुछ गलत समझ उत्पन्न करती हैं तो भी इसके पुनः स्पष्टीकरण और व्याख्या के द्वारा इस संदिग्धता को दूर किया जा सकता है । आवश्यकता है संक्षिप्त स्पष्टीकरण की, न कि विश्लेषण की । यदि सामान्य रूप से हमारी अभिव्यक्तियाँ ठीक नहीं हैं तो भी वे हमें अपना उद्देश्य प्राप्त करने में बाधा नहीं उत्पन्न करती हैं । यदि मैं समझता हूँ कि मेरा उद्देश्य प्राप्त हो गया है, भले ही अभिव्यक्ति अनिश्चित हो तो पुनर्विश्लेषण की कोई आवश्यकता नहीं है । केवल सुनिश्चितता के मिथ्या आदर्श को प्राप्त करने के लिए भ्रमित एक दार्शनिक ही इसके लिये कार्य करेगा । अतः विटगेंस्टाइन सुनिश्चितता (Exactness) के संप्रत्यय का वर्णन करने के लिए अग्रसर होता है । वह सुनिश्चितता और असुनिश्चतता में भेद स्पष्ट करता है । कोई भी चीज निरपेक्ष रूप से सुनिश्चित नहीं है । सुनिश्चित शब्द का अर्थ उन स्थितियों एवं संदर्भों पर निर्भर करता है, जिनमें कि इसका प्रयोग किया जाता है । उदाहरण के लिए सुनिश्चित समय (Exact time) को लिया जा सकता है । क्या इसका अर्थ पूर्णरूप से सुनिश्चित समय है । वस्तुतः सुनिश्चित समय स्थितियों के प्रकार, जिनमें लोगों के उद्देश्य और आवश्यकतायें भी समाहित हैं, पर निर्भर करता है और तदनुसार बदलता भी रहता है । विटगेंस्टाइन कहता है-- असुनिश्चितता (In Exactness) वास्तव में एक निन्दा और सुनिश्चितता प्रशंसा है । कहने का तात्पर्य यह है कि जो असुनिश्चित है, अपने उद्देश्य को, जो

अधिक सुनिश्चित है,की अपेक्षा कम पूर्णता से प्राप्त करता है । इस प्रकार यहाँ पर मुख्य बिन्दु,जिसे हम उद्देश्य कहते हैं ; है । क्या मै असुनिश्चित हूँ, जब मैं सूर्य से अपने निकटतम पग की दूरी नहीं देता हूँ ।[17] फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार "निरपेक्ष रूप से या पूर्णरूप से सुनिश्चित " के विषय में बात करना कोई, अर्थ नहीं रखता । प्रत्येक स्थिति "सुनिश्चितता" का अपना तात्पर्य और प्रतिमान रखती है । सामान्यता के लिए हमारी लालसा हमें पथभ्रष्ट करती है ।

ट्रैक्टेटस की यह मान्यता सुविदित है -- तर्कवाक्य का विश्लेषण सरल तर्कवाक्यों में किया जाता है,जो मौलिक तर्कवाक्य के तात्पर्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं । किन्तु फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में विटगेंस्टाइन ने इस मान्यता के विरूद्ध निम्नलिखित आक्षेप किये --

1- यह कहना कठिन है कि उक्त संदर्भ में सरल तर्कवाक्य मूल तर्कवाक्यों के समतुल्य है ।

2- यह कहना गलत है कि सरल तर्कवाक्य मूल तर्कवाक्यों के तात्पर्य को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हैं (फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स सेक्शन 60) । फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में विटगेंस्टाइन ने इन बिन्दुओं को प्रदर्शित किया है । मान लीजिए हमें इस तर्कवाक्य की व्याख्या करनी है । --" वह झाडू कोने में है" । विश्लेषण करने पर यह तर्कवाक्य इन तर्कवाक्यों के संयोजन के समतुल्य होगा । (अ) झाडू कोने में है, (ब) ब्रुश कोने में है और झाडू का डण्डा (Broom stick) ब्रुश से जुड़ा है । प्रश्न यह है क्या विश्लेषित तर्कवाक्य वही व्यक्त करते हैं जो मूल तर्कवाक्य कहता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार ऐसा नहीं है । उसने इस बात पर बल दिया है कि केवल विश्लेषण ही संदिग्ध अभिव्यक्ति के विषय में स्पष्टता प्राप्त करने की एक मात्र पद्धति नहीं है । पूर्ण रूप से सरल और पूर्ण रूप से ठीक (Exact) काल्पनिक संप्रत्यय हैं । तर्क वाक्यों के विश्लेषण पर अधिक बल देना असंगत है ।

ट्रैक्टेटस की एक महत्वपूर्ण मान्यता अर्थ का सिद्धान्त है, जिसकी विटगेंस्टाइन ने अपनी परवर्ती कृतियों में कटु आलोचना की है। ट्रैक्टेटस के अर्थ-सिद्धान्त के अनुसार शब्द का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पारिभाषिक अर्थ में प्रत्येक शब्द अर्थयुक्त है। उसने कभी भी नहीं कहा कि प्रत्येक शब्द के अनुरूप कोई वस्तु होती है। केवल तार्किक रूप से व्यक्तिवाचक नाम ही अर्थयुक्त होते हैं। उसने नाम और वस्तु का प्रयोग एक पारिभाषिक अर्थ में किया है। नाम वह पद है जिसकी शाब्दिक परिभाषा नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार वस्तु का अर्थ ऐसी इकाई से है, जो पूर्ण रूप से सरल हो। इस प्रकार उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि केवल तर्कतया (तार्किक रूप से) व्यक्तिवाचक नाम ही अर्थयुक्त होते हैं और नाम का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु है। दूसरे शब्दों में, वस्तु नाम का अर्थ है (ट्रैक्टे० 3·203)। अर्थ की यह अवधारणा दो मान्यताओं पर आधारित है। —

कुछ वस्तुएं पूर्णतया सरल हैं और तर्कवाक्य पूर्ण रूप से निश्चित तात्पर्य रखते हैं। उसके अनुसार यदि कोई पद किसी जटिल वस्तु का निर्देश करता है तो यह तर्कतया व्यक्तिवाचक नाम नहीं हो सकता। यह उस जटिल वस्तु का अव्यक्त वर्णन मात्र है।

अपनी परवर्ती कृतियों में विटगेंस्टाइन ने दिखाया कि कोई भी वस्तु पूर्ण रूप से सरल नहीं है और यह कहना निरर्थक है कि कोई तर्कवाक्य पूर्णरूप से सुनिश्चित अर्थ रखता है। परवर्ती विटगेंस्टाइन इस विचार को स्वीकार नहीं कर सका कि तर्कतया व्यक्तिवाचक नाम का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट सरल वस्तु है। कोई न तो तर्कतया व्यक्तिवाचक नाम और न ही सरल वस्तु है। मान लीजिए "यह" (This) एक व्यक्तिवाचक नाम है। हम किसी शब्द " Tove " की व्याख्या एक पेन्सिल के द्वारा निर्दिष्ट करके कहते हैं " यह एक Tove (टोव) है। यह वाक्य यह अर्थ दे सकता है कि "यह (This) अपरोक्ष रूप से एक विशेष वस्तु को संज्ञा प्रदान करता है। "यह टोव (Tove) है " की संकेतात्मक परिभाषा कई प्रकार

से निरूपित की जा सकती है । परिभाषा की व्याख्या निम्नलिखित अर्थ दे सकती है । यह एक पेन्सिल है, यह गोल है,यह लकड़ी है,यह एक है, यह कठोर है इत्यादि ।[18]

अतः यह विचार कि सरल वस्तुएं तर्कतया व्यक्तिवाचक नामों के अर्थ हैं, असंगत है । यदि नाम और वस्तु को पारिभाषिक अर्थ में न प्रयुक्त किया जाय,तो यह संभव है कि पद का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु है । अतः इस मान्यता पर निरपेक्ष रूप से सरल वस्तुओं की असंभावना पर आधारित आक्षेप लागू नहीं होता है । यदि नाम और वस्तु को विटगेंस्टाइन के पारिभाषिक अर्थ में न ग्रहण किया जाय तो सुकरात, हिमालय,गांधी इत्यादि नाम हैं और उनके द्वारा निर्दिष्ट वस्तुएं इन नामों के अर्थ हैं । किन्तु अपनी परवर्ती रचनाओं में विटगेंस्टाइन ने इस अधिमान्यता का भी खण्डन किया ।

परवर्ती विटगेंस्टाइन ने अपनी इस भूल का अनुभव किया कि उसने ट्रैक्टेटस में अर्थ का निर्देश के साथ गलत तादात्म्य स्थापित कर दिया । यह कहना गलत है कि नाम का अर्थ उसकी संवादी वस्तु है (या उसके अनुरूप वस्तु है) । ऐसी मान्यता नाम शब्द के व्याकरण की गलत समझ पर आधारित है । ब्ल्यू बुक में विटगेंस्टाइन कहता है कि अर्थ का अर्थ (Meaning of Meaning) समझने के लिए शब्द का अर्थ क्या है, के स्थान पर अर्थ की व्याख्या क्या है ? इस प्रश्न को रखना अधिक लाभदायक है ।[19] इसी प्रकार वह ब्राउन बुक में कहता है कि आगस्टाइन का भाषा सीखने का वर्णन हमारी भाषा की अपेक्षा एक सरलतर भाषा के लिए अधिक सही था ।[20] उसने उन शब्दों की उपेक्षा किया जो नाम नहीं हैं । जैसे —"आज", "नहीं", "किन्तु", "शायद" इत्यादि। फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स में उसने आगस्टाइन के ग्रन्थ (Confessions) से एक उद्धरण प्रस्तुत किया है ; जो मानव भाषा के मूल तत्व की एक विशेष तस्वीर प्रदान करता है —"प्रत्येक शब्द एक अर्थ रखता है । यह अर्थ शब्द से सम्बन्धित है । यह वस्तु है जिसके लिए शब्द है" (फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स सेक्शन 1) । भाषा के तत्व का यह वर्णन

मुख्य रूप से संज्ञाओं को जैसे – मेज,कुर्सी और लोगों के नामों से सम्बन्धित है और गौड़ रूप से कुछ कार्यों और गुणों से सम्बन्धित है । दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य जो हममें यह विश्वास पैदा करता है कि नाम का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु है ; वह यह है कि भाषा का केवल एक कार्य, तथ्यों का वर्णन करना है । विटगेंस्टाइन इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहता है कि वाक्य अनेक प्रकार के होते हैं जैसे –स्वीकारात्मक, प्रश्नवाचक और आदेशात्मक । प्रतीकों, शब्दों, वाक्यों आदि के अगणित प्रकार के प्रयोग होते हैं ; यहाँ तक कि वर्णन ही अनेक प्रकार का होता है जैसे -- शरीर की स्थिति का वर्णन करना,चेहरे की अभिव्यक्ति का वर्णन करना, स्पर्श की संवेदना का वर्णन करना, अवस्था का वर्णन करना इत्यादि । यहाँ तक कि केवल आश्चर्य को भी उनके विभिन्न व्यापारों के द्वारा सोचा जा सकता है । —

WATER

AWAY

OW

HELP

FINE

NO

फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में विटगेंस्टाइन कहता है कि क्या आप अब भी इन शब्दों को वस्तुओं के नाम कह सकते हैं ? (फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स सेक्शन 27)

विटगेंस्टाइन भाषा के चित्र-सिद्धान्त पर एक दूसरे प्रकार से आक्षेप करता है । उसके अनुसार कोई व्यक्ति एक व्यक्तिवाचक नाम की संकेतात्मक रूप से परिभाषा दे सकता है । किन्तु एक संकेतात्मक परिभाषा प्रत्येक स्थिति में भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित की जा सकती है । (फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स सेक्शन 28) इस सिद्धान्त को स्वीकार करने से जो विसंगतियां पैदा होती हैं, उनको प्रदर्शित करके विटगेंस्टाइन इस सिद्धान्त का परित्याग कर देता है । यदि नाम

का अर्थ उसके अनुरूप वस्तु है तो यह कहना सार्थक होना चाहिए कि मान लीजिए कोई व्यक्ति "अ" मरता है" का अर्थ " अ मरता है" । यह कहना निरर्थक है कि "अ मर गया है" क्योंकि जब "अ" मरता है तो उसका नाम अर्थ खो देता है । हम यह कभी भी नहीं कहते हैं कि नाम का अर्थ मृत है और यह कहना पूर्णतया सार्थक है कि अ मृत है । परिणामस्वरूप अर्थ नामित वस्तु के साथ तादात्म्यक नहीं हो सकता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार नाम के अनुरूप अर्थ नहीं, बल्कि धारक है (फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स सेक्शन 40) । ट्रैक्टेटस में उसने नाम का अर्थ नाम के धारक (Bearer) के साथ सीमित कर दिया था । अर्थधारक से भिन्न है । यही कारण है कि हम कह सकते हैं कि "अ" का धारक मरता है और "अ" का धारक मर गया है । मृत मनुष्य के विषय में चर्चा करना संभव है क्योंकि उसकी मृत्यु के बाद भी उसका नाम अर्थरहित नहीं होता है ।

यह कहा जा सकता है कि विटगेंस्टाइन का मन्तव्य ठीक नहीं है क्योंकि व्यक्तिवाचक नाम अर्थयुक्त नहीं होते हैं । यदि इस आक्षेप को वैध भी माना जाय तो इससे अर्थ के विश्लेषण में कोई हानि नहीं । शब्द का अर्थ और शब्द से निर्दिष्ट वस्तु दो भिन्न वस्तुएं हैं । यही कारण है कि यह कहना संभव नहीं है कि मैंने ईंट शब्द के अर्थ का एक भाग तोड़ दिया है अथवा मैंने ईंट शब्द के अर्थ के हजारों भाग किये हैं । यदि ईंट शब्द का अर्थ स्वयं ईंट है तो ऐसे कथन असंगत नहीं होने चाहिए थे । अतः विटगेंस्टाइन ने शब्द का अर्थ वस्तु है, इस मान्यता का खण्डन किया । उसके अनुसार शब्द का अर्थ भाषा में इसका प्रयोग है । (फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स सेक्शन 43) वस्तुतः यह प्रयोग है जो शब्द के अर्थ को निर्धारित करता है न कि शब्द की संवादी वस्तु । कोई शब्द जिसके अनुरूप बाह्य जगत् में कोई सत्ता न हो, सार्थक हो सकता है । परिणाम स्वरूप चित्र-सिद्धान्त की आधार शिला ध्वस्त हो जाती है ।

ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन के द्वारा प्रतिपादित चित्र-सिद्धान्त बहुत ही पारिभाषिक था । इसका अर्थ सरलतया यह नहीं था कि वाक्य तथ्यों के बारे में है ।

चित्र-सिद्धान्त का मूल तत्त्व यह मान्यता थी कि तर्कवाक्य और उसका संवादी तथ्य अपने तार्किक आकार में तादात्म्यक हैं । कठोर अर्थ में केवल सरल तर्कवाक्य ही तथ्यों के चित्र माने गये थे । चित्र और चित्रित तथ्यों के अंगों के बीच में एक-एक की समरूपता होनी चाहिए । केवल सरल तर्कवाक्य,जो पूर्णरूप से नामों के संघात हैं,ही इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं । सरल तर्कवाक्य अपने अनुरूप तथ्य का चित्र माना गया था ; क्योंकि पूर्ववर्ती विटगेंस्टाइन के अनुसार नाम अपरोक्ष रूप से तथ्य की सरल वस्तुओं का निर्देश करते हैं ।

सरल वस्तुओं के सिद्धान्त का परित्याग करने के साथ ही साथ संक्षिप्त विश्लेषण सिद्धान्त (Reductive Analysis Theory) और सरल चिन्हों पर आधारित चित्र-सिद्धान्त निर्बल हो जाता है, क्योंकि इसकी आधार शिला ही खण्डित हो जाती है । अतः यह पुनर्जीवित नहीं हो सकता । यदि निरपेक्ष रूप से सरल वस्तुओं के बारे में कहना सार्थक नहीं है तो उनकी व्यवस्था के अस्तित्व (परमाणविक तथ्यों) को भी संभव नहीं माना जा सकता । इसी प्रकार निरपेक्ष रूप से सरल वस्तुओं का न होना यह सिद्ध करता है कि उनको संज्ञा प्रदान करने के लिए कोई शब्द नहीं हो सकता । शब्दों के अभाव में सरल तर्कवाक्य भी संभव नहीं हैं । इस प्रकार चित्र (सरल तर्कवाक्य) और चित्रित तथ्यों (सरल तर्कवाक्यों) का निराकरण करने से भाषा का चित्र-सिद्धान्त धराशायी हो जाता है । अपनी परवर्ती कृतियों में विटगेंस्टाइन ने यह स्वीकार किया कि भाषा का कार्य केवल तथ्यों का वर्णन करना ही नहीं है । इसके अनेक कार्य हैं ।

ट्रैक्टेटस की एक मुख्य समस्या भाषा और जगत् के सम्बन्ध को निर्धारित करना भी है । तर्कवाक्यात्मक चिन्ह तथ्यों का वर्णन कैसे करते हैं । एक तर्कवाक्यात्मक चिन्ह स्वतः कोई वर्णन नहीं कर सकता है । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन का यह विश्वास था कि एक तर्कवाक्य अपने संवादी तथ्यों का वर्णन करता है । भाषा और जगत् के सम्बन्ध की स्थापना अभिप्राय की मानसिक क्रिया (Mental act of intending) द्वारा करता है ।[21] भाषा एवं जगत् का सम्बन्ध ऐसा है जो

वक्ता के द्वारा सम्पन्न किया जाता है । प्रतीकों §चिन्हों§ का समूह कभी भी किसी प्रकार का चित्र नहीं हो सकता है । यह किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व तभी कर सकता है जब कि एक चेतन व्यक्ति §कर्ता§ ऐसा करने का उद्देश्य रखता है । इस तरह से तर्कवाक्य के तत्व एक तथ्य के तत्वों से सह-सम्बन्धित हैं । यह इस बात की व्याख्या करता है कि चित्र सत्ता से इस प्रकार सम्बद्ध है ।

विटगैंस्टाइन ने इस मान्यता का खण्डन ब्ल्यू बुक्स और फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स दोनों में किया है । वह अनुभव करता है कि यदि स्वतः शब्दों के एक समूह का अर्थ कुछ नहीं है और अतिरिक्त रूप में अभिप्राय की क्रिया की आवश्यकता रखता है तो हमें इसके द्वारा कोई भी अर्थ रखने के योग्य होना चाहिए । उदाहरण के लिए हमें कहना चाहिए " A - B - C - D " और अभिप्राय की सहायता से इसका अर्थ मौसम सुहावना है ; स्वीकार करने में समर्थ होना चाहिए § फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स सेक्शन 508 § । किन्तु यह बहुत ही कठिन है । यदि मानसिक प्रक्रिया सिद्धान्त सत्य है तो ऐसा संभव होना चाहिए था । चूँकि ऐसा संभव नहीं है । अतः अर्थ की मानसिक क्रिया का सिद्धान्त भी खण्डित हो जाता है । इस प्रकार विटगैंस्टाइन ने अपनी परवर्ती रचनाओं में अनेक कठिनाइयों का उल्लेख किया है । जो उसके पूर्ववर्ती विचारों की सत्यता पर प्रश्न चिन्ह रखती हैं । उसकी परवर्ती रचनाओं के अनुसार अर्थ मानसिक क्रिया अथवा अभिप्राय पर निर्भर नहीं है ; प्रत्युत् परम्पराओं और संदर्भों पर आधारित है । शब्द के अर्थ का निर्धारण इस पर निर्भर है कि उसका किन परिस्थितियों और संदर्भों में प्रयोग हो रहा है न कि किसी मानसिक क्रिया पर ।

किसी अभिव्यक्ति का अर्थ एक भाषा समुदाय के सदस्यों के द्वारा की गयी अभिव्यक्ति का व्यापार है । मुख्य बिन्दु यहाँ पर यह है कि शब्द के अर्थ का संप्रत्यय वाक्य के अर्थ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । विटगैंस्टाइन कहता है— "अनेक स्थितियों के लिए ——— यद्यपि सबके लिए नहीं, जिनमें कि हम अर्थ शब्द का प्रयोग करते हैं, इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है — शब्द का अर्थ उसका

भाषा में प्रयोग है और नाम का अर्थ कभी-कभी इसके धारक को निर्दिष्ट करके व्याख्यायित किया जाता है ﴾ फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स सेक्शन 43 ﴿ । इस प्रकार किसी अभिव्यक्ति के अर्थ की व्याख्या करने के लिए उसके अर्थ शैली को दिखाना पड़ता है । भाषा-खेल के व्यापार में प्रयोग अस्पष्ट रहता है । भाषा-खेल का सम्बन्ध नियमों के एक विन्यास की रचना करने और उनका पालन करने में निहित है । नियम यह व्याख्या करता है कि अमुक-अमुक प्रकार का चिन्ह अमुक-अमुक प्रकार के दूसरे चिन्हों के साथ संयोजित हो सकता है । शब्दों और वाक्यों का अर्थ नियमों के द्वारा नियन्त्रित होता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार अपने वास्तविक प्रयोगों में शब्दों का कोई एक निश्चित नियम और सभी अवसरों पर कोई एक निश्चित अर्थ नहीं होता है । नियम महत्वपूर्ण हैं, किन्तु न तो नियम भाषा में छिपे हुये हैं जिन्हें विश्लेषण से या कृत्रिम भाषा द्वारा स्पष्ट करने की आवश्यकता है ; न ही ये नियम गणित के नियमों के समान सामान्य, कठोर एवं परिवर्तन रहित हैं । नियम स्वतः प्रयोग पर निर्भर हैं ।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि विटगेंस्टाइन चित्र की अवधारणा का पूर्णतः त्याग कर देता है ? अनेक आलोचकों की मान्यता है कि बाद में चित्र का कोई उपयोग नहीं किया गया है । किन्तु ऐसा नहीं है । लगभग सभी परवर्ती रचनाओं में चित्र का उल्लेख है किन्तु चित्र की व्याख्या में अन्तर आ गया है ।

Notes and References

1. Passmore, J. A Hundred Years of Philosophy', p.425.
2. Moore, G.E. Wittgenstein's Lectures in 1930-33; Reprinted in Philosophical Papers, p.253.
3. Wittgenstein, L. Philosophical Investigations, Preface, p.10.
4. Stagmuller, W. 'Main Currents in Contemporary German, British & American Philosophy', p.429.
5. Wittgenstein, L. PI, Preface, p. 10.
6. Wisdom, J. 'Logical Constructions' Volume-2, 1931, p. 460.
7. Wittgenstein, L. PI, Section 47.
8. Ibid Section 99.
9. Moore, G.E. 'Wittgenstein's Lectures in 1030-33', Philosophical Papers, p. 296.
10. Wittgenstein, L. 'Blue and Brown Books', p. 27.
11. Wittgenstein, L. PI, Section 101.
12. Ibid Section 103.
13. Moore, G.E. 'Wittgenstein's Lectures, Philosophical Papers', pp. 261-274.
14. Wittgenstein, L. BB, P.19.
15. Wittgenstein, L. PI, Section 107.

16. Wittgenstein, L. BB, P. 27.

17. Wittgenstein, L. PI Section 88.

18. Wittgenstein, L. BB, P. 2.

19. Ibid P. 1 .

20. Ibid P. 77.

21. Wittgenstein, L. 'Note books' Entry 26/11/74.

पंचम अध्याय

भाषा के कार्यों की विविधता और भाषा-खेल

पूर्ववर्ती अध्याय में यह दिखाया गया है कि स्वयं विटगेंस्टाइन ने किस प्रकार "ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलॉसाफिकस" के भाषा विषयक सिद्धान्तों की विसंगतियों का निराकरण किया है । ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलॉसाफिकस का वह सिद्धान्त, जिसका फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में निराकरण किया गया है, सारतत्त्ववाद नाम से जाना जाता है । इसके अनुसार केवल नाम ही अर्थयुक्त होते हैं । शब्द वस्तु के लिए होता है । वस्तुएं निश्चित और पूर्णरूप से सरल हैं । तर्कवाक्य नामों के संघात हैं । इसके परिणामस्वरूप भाषा तार्किक आकार से युक्त होती है, जो कि साधारण भाषा के द्वारा छुपा लिया जाता है । विश्लेषण भाषा और सत्ता के वास्तविक स्वरूप को व्यक्त करता है । इस प्रकार भाषा जगत् का चित्र है । भाषा सीखना वस्तुओं को नाम देना है इत्यादि । ट्रैक्टेटस के इन विचारों की विटगेंस्टाइन ने फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में कटु आलोचना किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी भाषा के आकारों का कोई अन्तिम विश्लेषण संभव है और इसलिए प्रत्येक अभिव्यक्ति का एक पूर्णतया निश्चित आकार होगा । इसे भाषा, तर्कवाक्य, विचार, प्रत्येक वस्तु जो अन्तर्निहित है, के आवश्यक तत्व के रूप में अभिव्यक्त किया गया है ; जिसे हम जब वस्तु को देखते हैं, तो देखते हैं .... ।[1]

इससे सिद्ध होता है कि विचार एक परिवेश के द्वारा घिरा होता है । इसका सारतत्त्व एक प्रागानुभविक व्यवस्था को प्रस्तुत करता है, जो जगत् और भाषा दोनों में उभयनिष्ठ है । सारतत्त्व को सभी अनुभवों का पूर्ववर्त्ती और सरल होना चाहिए । यह समस्त अनुभवों में व्याप्त होता है और कोई अनुभव-विषयक धुँधलापन इसे प्रभावित नहीं कर सकता । इसे विटगेंस्टाइन ने "विशुद्धतम मणिभ"[2] कहा है ।[3] विटगेंस्टाइन कहता है हम लोग भ्रमित हैं कि जो गहन और आवश्यक है वह सार (तत्व) है । हम सोचते हैं कि संदिग्धतम अभिव्यक्ति में एक पूर्ण व्यवस्था होनी

चाहिए ।[4] ऐसा कभी नहीं होता है कि हम अपनी वास्तविक भाषा की परीक्षा करें । हम कहना चाहते हैं कि तर्कशास्त्र में कोई अस्पष्टता (दुर्बोधता) नहीं होनी चाहिए । जितने ही अधिक संकुचित रूप से हम अपनी वास्तविक भाषा की परीक्षा करते हैं ; हमारी भाषा और हमारी आवश्यकता के मध्य उतना ही तीक्ष्णतर संघर्ष होता है ।[5]

" ब्ल्यू एण्ड ब्राउन बुक्स" में विटगेंस्टाइन कहता है कि सामान्यता के लिए हमारी लालसा और विशेष स्थिति के प्रति तिरस्कार परक दृष्टिकोण पूर्वोक्त भाषा और सत्ता सम्बन्धी विचारों के लिए उत्तरदायी है । " हम यह मान लेते हैं कि सभी वाक्य "बिल्ली चटाई पर है" के सदृश कार्य करते हैं । सभी संज्ञायें "वृक्ष" के समान कार्य करती हैं । सभी क्रियायें "दौड़ना" के समान कार्य करती हैं । और सामान्य शब्दों के अनुरूप कुछ सार तत्व हैं ।

जैसा कि विदित है – ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलॉसाफिकस में विटगेंस्टाइन की मान्यता यह थी कि भाषा का केवल एक कार्य है,वह है तथ्यों और स्थितियों का वर्णन करना । भाषा वर्णनात्मक है । ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलॉसाफिकस में तर्कवाक्य का सामान्य आकार है -- वस्तुएं किस प्रकार स्थित हैं ।[7] किन्तु अपनी परवर्ती रचनाओं में उसे अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं की भ्रामकता का बोध हुआ । विटगेंस्टाइन के अनुसार किसी वाक्य का व्याकरणात्मक आकार हमेशा यह नहीं बताता है कि किस कार्य के लिए इसका प्रयोग किया जाता है । एक विशेष व्याकरणात्मक आकार वाला वाक्य विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है । अतः वाक्य का व्याकरणात्मक आकार नहीं,प्रत्युत् प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

यह मान्यता पूर्णतया मिथ्या है कि महत्वपूर्ण भाषा का केवल एक व्यापार होता है, वह है तथ्यों का वर्णन करना । किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कितने प्रकार के वाक्य होते हैं । विटगेंस्टाइन कहता है कि ये वाक्य क्या स्वीकारात्मक, प्रश्नवाचक, आज्ञासूचक हो सकते हैं ? वाक्यों के असंख्य प्रकार हैं । प्रतीकों, शब्दों और वाक्यों के प्रयोग के विभिन्न प्रकार हैं और यह सम्मिश्रण कोई निश्चित नहीं

है कि यह हमेशा के लिए निर्धारित कर दिया गया है,प्रत्युत् नये प्रकार की भाषा, नये भाषा-खेल अस्तित्व में आ सकते हैं । जैसा कि हम कह सकते हैं- अस्तित्व में आ सकते हैं और दूसरे त्यागे और भूले जा सकते हैं । भाषा की विविधता का निरूपण करते हुए विटगेंस्टाइन ने कहा है कि --- आदेश देना और उनका पालन करना,एक वस्तु की प्रतीति का वर्णन करना अथवा इसकी नाप-जोख करना,वर्णन के द्वारा किसी वस्तु की रचना करना, किसी घटना की रिपोर्ट करना, किसी घटना का आकलन अथवा कल्पना करना ,एक प्राक्कल्पना को बनाना और उसका परीक्षण करना,सारिणी और आरेख द्वारा किसी प्रयोग के परिणामों को प्रस्तुत करना,कहानी बनाना और पढ़ना,नाटक करना,गीत गाना,अटकल लगाना,मजाक करना और इसे कहना, व्यावहारिक अंकगणित में समस्या हल करना,एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना, प्रश्न पूँछना, धन्यवाद देना, अभिशाप देना, अभिनन्दन करना, प्रार्थना करना इत्यादि । विटगेंस्टाइन यहाँ तक कहता है कि वर्णन करने का अर्थ विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न होता है । सभी वर्णनात्मक अभिव्यक्तियों में कोई ऐसी सर्वमान्य विशेषता नहीं है जो सब में समान रूप से पायी जाय । शरीर की स्थिति का वर्णन करना,चेहरे की अभिव्यक्ति का वर्णन करना, संवेदना अथवा मानसिक अवस्था का वर्णन करना इत्यादि परस्पर भिन्न हैं ।[9] इन उद्धरणों से विदित होता है कि विटगेंस्टाइन के अनुसार शब्द और वाक्य अनेक तरीकों से प्रयोग में लाये जाते हैं । यह असंभव है कि उनका वर्गीकरण व्याकरणात्मक दृष्टि से इस प्रकार किया जा सके,जो उनके व्यापारों के जानने में हमारी मदद कर सके । व्याकरण से शब्दों और वाक्यों के व्यापारों की ओर संक्रमण करने का कोई प्रागनुभविक रास्ता नहीं है । हमारी भाषा हमारे व्यवहार से अन्तर्मिश्रित है । अतः हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप भाषा अपने कार्यक्षेत्र में भी विस्तृत है ।

विटगेंस्टाइन के अनुसार हमारे शब्द वस्तुतः कैसे कार्य करते हैं और वास्तव में उनके प्रयोग क्या हैं ? यह इस प्रकार है ---- वस्तुतः दार्शनिक समस्याएं

आनुभविक समस्याएं नहीं हैं । वे हमारी भाषा के कार्यों को देखने के द्वारा हल की जाती हैं । उनको गलत समझने के बावजूद हम उनके कार्यों को इस तरीके से जानें ।[10] उदाहरण के लिए हम "समय" शब्द को ले सकते हैं । हम ऐसा मानते हैं कि "समय" शब्द का प्रयोग वृक्ष, मेज, नदी इत्यादि के प्रयोग की तरह ही है । किन्तु यदि हम उस स्थिति का परीक्षण करें, जिनमें "समय" शब्द का प्रयोग होता है तो हम देखेंगें कि यह किसी अमूर्त्त (ghostly) माध्यम के नाम के समान कार्य नहीं करता । वह कहता है -- हमारे समझने की विफलता का मूल स्रोत यह है कि हम अपने शब्दों के प्रयोग के स्पष्ट विचार नहीं रखते हैं । इस प्रकार हमारा व्याकरण सुस्पष्टता से वंचित है इत्यादि ।[11] विटगेंस्टाइन प्राय: किसी दूसरे शब्द की अपेक्षा "प्रयोग" शब्द का प्रयोग अधिक करता है । किन्तु वह शब्दों के व्यापारों,उनके उद्देश्यों और उनको लागू करना इत्यादि की बात करता है । अब विचारणीय यह है कि वस्तु के प्रयोग के विभिन्न पहलू क्या हैं ? हमें शब्दों के प्रयोग के विभिन्न पहलुओं को देखना है । विटगेंस्टाइन दर्शन में भाषा दर्शनकेआन्दोलन के लिए उत्तरदायी है । किन्तु वह शब्दों के प्रयोग के अनेक पहलुओं के विषय में बहुत स्पष्ट नहीं था । ध्वन्यात्मक,वाक्य संरचनात्मक,अर्थगत, व्याकरणात्मक तथा कथन क्रिया और अन्य वाक् कार्यों (Speech acts) के रूप में शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है । उनका अध्ययन उद्भव मूलक व्याकरण (generative grammer) और रूपान्तरण परक व्याकरण (Transformational grammar) के उपकरण के रूप में किया जा सकता है । वस्तुत: शब्दों के इन उत्कृष्ट रूपों का अध्ययन विटगेंस्टाइन के बाद किया गया । शब्दों का प्रयोग बोलने और लिखने के विषय-वस्तु के रूप में किया जाता है । इस अर्थ में सभी शब्द तादात्म्यक हैं । शब्दों के प्रयोग का एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय शब्द व्याकरण के ऐसे रूप से सम्बन्धित है जहाँ शब्द घटित हो सकते हैं और नहीं भी घटित हो सकते हैं,किन्तु समस्या यह है कि हम व्याकरणात्मक दृष्टि से उपयुक्त शब्द समूह (वाक्य) की ऐसी रचना कैसे करते हैं, जिसमें शब्द निहित होते हैं तथा जो व्याकरणात्मक दृष्टि से गलत शब्द समूहों को पहचानने में समर्थ हो । इसे शब्दों के प्रयोग का व्याकरणात्मक

पहलू कहा जा सकता है ।

अतः शब्दों का प्रयोग कुछ करने के लिए किया जाता है । जब हम शब्दों के प्रयोग की बात करते हैं तो शब्दों का प्रयोग कुछ कथन -- कार्यों के लिए किया जाता है । जैसे- आदेश देना, प्रश्न पूँछना इत्यादि । इसे हम शब्दों के प्रयोग का स्पीच एक्ट (Speech act) पहलू कह सकते हैं । जब हम स्पीच एक्ट पहलू का प्रयोग करते हैं तो हम शब्दों के प्रयोग के एक कार्य अथवा दूसरा कार्य करने के लिए करते हैं । जब हम शब्द के व्याकरणात्मक पहलू पर विचार करते हैं तो विशेष-विशेष शब्द कुछ भाषायी संरचना में नियमित रूप से घटित होते हैं ।

शब्दों के प्रयोग का एक अर्थगत (Semantic) पहलू भी है । शब्द के प्रयोग का अर्थ विटगैंस्टाइन की दृष्टि में शब्द के प्रयोग का व्याकरणात्मक पहलू है । शब्द के प्रयोग को जानने में यह जानना भी समाहित है कि किस प्रकार के भाषायी सन्दर्भों में शब्द घटित हो सकता है अथवा नहीं घटित हो सकता है । विटगैंन्सटाइन कहता है इसीलिए हमारी गवेषणा व्याकरणात्मक है । ऐसी गवेषणा हमारी गलत समझ को दूर करके हमारी समस्या पर प्रकाश डालती है ।[12] किन्तु विटगेन्सटाइन ने व्याकरण शब्द का प्रयोग साधारण अर्थ में नहीं किया । इसका अर्थ बहुत ही व्यापक तथा भाषा-मूलक है । वह भाषा-मूलक और आनुभविक गवेषणा के बीच में भेद करता है । उसके अनुसार दार्शनिक क्रियाएँ भाषा-मूलक क्रियाओं के साथ तादात्म्य रखती हैं । इन्हीं अर्थों में वह व्याकरण का प्रयोग करता है । वह स्थूल व्याकरण (Surface grammar) और गम्भीर व्याकरण (Depth grammar) में भेद करता है । वह कहता है कि शब्दों के प्रयोग में कोई स्थूल व्याकरण (Surface grammar) को गम्भीर व्याकरण (Depth grammar) से पृथक् कर सकता है - - - - - - - - - - ।[13] विटगेन्सटाइन की दृष्टि में स्थूल व्याकरण का प्रयोग व्याकरण के साधारण अर्थों में किया गया है । अपने सामान्य अर्थ में व्याकरण शब्द गुमराह करने वाला है । वह हमारे व्याकरण में " कष्टदायक लक्षणों" के विरुद्ध चेतावनी देता है ।[14] इसी प्रकार वह

व्याकरणात्मक भ्रम के विरूद्ध भी सचेत करता है ।[15] इस प्रकार शब्द के प्रयोग से विटगेंन्सटाइन का तात्पर्य कुछ दूसरा ही है । वह शब्दों की तुलना उपकरणों (औजारों) से करता है ।[16]

विटगेन्सटाइन प्रयोग के संप्रत्यय का सम्बन्ध भाषा- खेल से करता है । जब वह शब्द के प्रयोग के परीक्षण की बात करता है तो वह शब्द के द्वारा खेले गये भाषा-खेल का संकेत करता है । उसके अनुसार भाषा का प्रयोग करना भाषा-खेल खेलना है । एन0 मलकॉम ने लिखा है -- एक दिन जब विटगेन्सटाइन एक मैदान से गुजर रहा था,जहाँ एक फुटबाल का खेल प्रगति पर था । खेल को देखकर यह विचार उसके मन में प्रथमतः गूँजा कि भाषा में हम शब्दों के साथ खेल खेलते हैं ।[17] विटगेन्सटाइन कहता है - भाषा-प्रयोग के विभिन्न तरीके विशेष प्रकार के भाषा-खेल हैं जैसे - आदेश देना,किसी घटना की रिपोर्ट करना,किसी नाटक में भाग लेना, प्रश्न पूछना, सम्मान करना इत्यादि । निम्नलिखित बातें यह सिद्ध करती हैं कि विटगेन्सटाइन भाषा को खेल कहता है । "अ" इमारत के पत्थरों के साथ इमारत बना रहा है । वहाँ ब्लाक,स्तम्भ, स्लैब और शहतीर (Beam) हैं "ब" को पत्थर पार करना है और उस क्रम या व्यवस्था में,जिनमें कि "अ" को उनकी (पत्थरों की) जरूरत है । इस उद्देश्य के लिए वे एक भाषा का प्रयोग करते हैं । जो शब्दों, ब्लाक, स्तम्भ, स्लैब, बीम से सम्बन्धित है ।[18] विटगेन्सटाइन के अनुसार अ- भाषात्मक व्यवहार भी भाषा-खेल के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।[19] इस सम्बन्ध में वह विशुद्ध भाषा-खेल और अविशुद्ध भाषा-खेल में भेद करता है ।

सांकेतिक परिभाषा (Ostensive Definition) प्रत्येक स्थिति में विभिन्न प्रकार से निरूपित की जा सकती है । इसका प्रयोग भ्रामक समझ को दूर करने के लिए किया जाता है ; किन्तु जिस वस्तु की ओर कोई व्यक्ति संकेत कर रहा है,उसे हम गलत समझ सकते हैं । संकेत करना अपने-आप में सफलता की गारण्टी नहीं प्रदान करता । सफलता की गारण्टी यह प्रदान करता है कि सीखने वाला सभी भाषा-खेल,जिसमें कि वह शब्द,जिसे वह सीख रहा है,घटित हो

सकता है, खेल सकता है । अतः भाषा दार्शनिकों के प्रयोग के लिए की गयी कृत्रिम रचना नहीं है । कोई भाषा बोलना और इसे समझना, बहुत सी चीजें करने में समर्थ होना, विशेष प्रकार के व्यवहार करना और ऐसा उचित दशाओं के अन्तर्गत् करने पर आधारित है ।[20] इस प्रकार भाषा बोलना व्यवहार के विशेष आकारों में व्यस्त होना है । यह जीवन के आकारों में लगाना है । भाषा की कल्पना करना जीवन के एक आकार की कल्पना करना है ।[21] विटगेन्सटाइन का प्रसिद्ध कथन है - यदि एक शेर बात-चीत कर सकता है तो हम इसे समझ नहीं सकते हैं ।[22] अतः विटगेन्सटाइन कहता है कि जब हम भाषा का प्रयोग करते हैं तो एक खेल खेलते हैं । शब्द का अर्थ यह है कि विभिन्न प्रकार के भाषा-खेलों में इसकी भूमिका क्या है ? अर्थात् शब्द का अर्थ भाषा-खेल में इसकी भूमिका और वह व्यवहार है, जिसमें कि इसका प्रयोग किया जाता है । कोई भी अभिव्यक्ति व्यवहार के इन आकारों से ही अर्थ प्राप्त करती है । विटगेन्सटाइन ने एक बार कहा था -- कोई अभिव्यक्ति केवल जीवन की धारा में अर्थयुक्त होती है । इस प्रकार विटगेन्सटाइन सोचता है कि भाषा प्रायः जीवन से अवियोज्य रूप से सम्बन्धित है । इस प्रकार इसका अर्थ यह नहीं है कि शब्दों के प्रयोग के लिए हमेशा किसी न किसी प्रकार की अभाषात्मक क्रिया आवश्यक है । उसने ऐसी विशुद्ध भाषात्मक क्रियाओं का उल्लेख किया है । जैसे - मजाक करना, कहानी कहना, किसी घटना की रिपोर्ट करना इत्यादि ।[23] भाषा-खेल के अन्तर्गत विटगेन्सटाइन भाषात्मक और अभाषात्मक दोनों ही प्रकार की क्रियाओं को समाहित करता है । पिचर ने भाषात्मक क्रिया को विशुद्ध भाषा-खेल कहा है तथा अभाषात्मक क्रिया को अविशुद्ध भाषात्मक खेल कहा है । उसने अविशुद्ध ‡ Impure ‡ शब्द का प्रयोग किसी निन्दनीय अर्थ में नहीं किया है । वस्तुतः विशुद्ध और अविशुद्ध भाषा-खेलों के बीच में कोई कठोर और स्पष्ट सीमा रेखा नहीं है । विपरीततः कुछ सन्दर्भों में विटगेन्सटाइन यह विश्वास करता है कि अविशुद्ध भाषा-खेल मौलिक हैं तथा विशुद्ध भाषा-खेल उनके परजीवी हैं अर्थात् उनपर

आश्रित हैं । इस प्रकार विटगेन्सटाइन यह स्वीकार करता है कि शब्द अपना अर्थ भाषा-खेलों से ग्रहण करते हैं जो उनका मूल गृह ≬ Original home ≬ है । जब दार्शनिकगण एक शब्द का प्रयोग करते हैं --"ज्ञान","सत्ता","विषय, "मैं","तर्कवाक्य", "नाम" ------ और वस्तुओं के सारतत्व को ग्रहण करना चाहते हैं, तो उसे स्वयं से अवश्य पूँछना चाहिए -- क्या वह शब्द जो भाषा-खेल में,जो कि इसका मूलघर है,में इस तरह से हमेशा प्रयुक्त होता है ? हम शब्दों को उनके तत्वमीमांसीय प्रयोग से उनके दैनिक प्रयोग में लाते हैं ।[24] विटगेन्सटाइन कहता है कि यदि हम यह भूल जाते हैं कि शब्द अपना अर्थ भाषा-खेल से ग्रहण करते हैं जो कि उनका मूल घर है और भाषा तथा व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा शब्दों का प्रयोग वास्तविक व्यावहारिक स्थितियों से अलग करके करते हैं तो हम उलझन में पड़ जाते हैं । वह कहता है - दार्शनिक समस्याएं तब उत्पन्न होती हैं,जब भाषा छुट्टी पर चली जाती है ।[25] वे भ्रम जो हमें परेशान करते हैं तब उत्पन्न होते हैं, जब भाषा यार्ड में रखे इंजन के समान हो जाती है,न कि जब यह कार्य करती है ।[26]

विटगेन्सटाइन खेल के सादृश्य का प्रयोग इस बात पर बल देने के लिए करता है कि हम खेल अथवा भाषा में निश्चित नियमों के अनुसार आगे नहीं बढ़ते हैं । खेलों के बारे में वह कहता है कि खेल प्रत्येक स्थान पर नियमों में बंधे नहीं होते हैं ।[27] वह कहता है कि यदि हम सीमा नहीं प्रदान कर सकते हैं तो इसका अर्थ अज्ञान नहीं है । वस्तुतः हम सीमा का निर्धारण एक विशेष उद्देश्य के लिए कर सकते हैं । नियम का पालन करना स्वतः एक क्रिया है जो अन्य अनेक क्रियाओं की पृष्ठभूमि के विरूद्ध सीखी जाती है । एक नियम स्वतः गलत ढंग से निरूपित किया जा सकता है ।[28] विटगेन्सटाइन इस मत का प्रतिपादन करता है कि -- खेल क्या है नियम इसका निर्धारण नहीं करते हैं । नियमों को सुन करके हम खेल खेलने की व्याख्या नहीं करते हैं । खेल खेलना प्राकृतिक इतिहास का एक अंग है ।[29] मुख्यतः खेल-सादृश्य के सम्प्रत्यय के द्वारा विटगेन्सटाइन ने यह स्पष्ट किया है कि सभी खेलों में कोई ऐसी सर्वगत विशेषता नहीं है जो समान रूप से पायी जाती हो । नियमों के द्वारा निर्धारित की जाने वाली विशेषताओं का कोई विन्यास प्राप्त

नहीं है । यही बात भाषा के सम्बन्ध में भी लागू होती है । भाषा के क्षेत्र में नियम का पालन करना बहुत कुछ अभ्यास पर निर्भर करता है जैसा कि खेल खेलने में । नियम का पालन करना, कोई रिपोर्ट करना, आदेश देना, शतरंज खेलना परम्परायें (Customs) हैं ।[30] कहने का तात्पर्य यह है कि नियम पर्याप्त नहीं हैं । यह जानना आवश्यक है कि भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में एक विशेष नियम का पालन किया गया है कि नहीं । यह तभी संभव है जब कि वास्तविक स्थितियों की ओर देखा जाय । विटगेन्सटाइन कहता है और इसलिए नियम का पालन करना एक अभ्यास है ; और यह सोचना कि कोई नियम का पालन कर रहा है, नियम का पालन करना नहीं है । अतः व्यक्तिगत रूप से किसी नियम का पालन करना संभव नहीं है । अन्यथा यह सोचना कि एक व्यक्ति नियम का पालन कर रहा था, इसके पालन करने के समान होगा ।[31]

हम शब्दों और वाक्यों को कुछ ऐसे विशेष सन्दर्भों में सीखते और सिखाते हैं जो अर्थ के मूल स्रोत (Original home) हैं । अतः भाषायी और अभाषायी दोनों ही सन्दर्भ, जिनमें कि शब्दों का प्रयोग किया जाता है ; की ओर देखना महत्वपूर्ण है । शब्द का अर्थ कोई अद्वितीय और पौराणिक बात नहीं है । महत्वपूर्ण जीवन का वह प्रवाह है जिससे शब्द अपना अर्थ ग्रहण करते हैं । विटगेन्सटाइन ने शब्द के अर्थ का तादात्म्य भाषा में इसके प्रयोग से किया है । इस व्याख्या को स्वीकार करते हुए कुछ आक्षेप इस प्रकार लगाये गये हैं । पिचर के अनुसार अभाषायी क्षेत्रों में प्रयोग रखने वाली चीजों के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वे अर्थ युक्त हैं और वे वस्तुएं जिन्हें अर्थयुक्त कहा जा सकता है अथवा वस्तुएं, जो कभी-कभी कुछ अर्थ रखती हैं, जैसे क्षितिज पर काले बादल, बर्फ में पग चिन्ह ; कुछ अपवादों को छोड़कर प्रयोग नहीं रखते हैं ।

इसी प्रकार भाषा में अर्थ और प्रयोग के बीच में सम्बन्ध सार्वभौमिक रूप से नहीं माना जाता । शब्द का अर्थ जानना और फिर भी इसके प्रयोग को न जानना संभव है, और अर्थ को बिना जाने हुए प्रयोग को जानना संभव है ।[32]

किसी अभिव्यक्ति में बहुधा उससे अधिक अर्थ होता है, जितना कि इसे हम प्रदान करते हैं ।[33] इस आधार पर पिचर और पोल इस सिद्धान्त का प्रतिपादन

करते हैं कि अर्थ और प्रयोग में भेद   है । विटगेन्सटाइन का सिद्वान्त मुख्य रूप से भाषा से सम्बन्धित है न कि अभाषायी क्षेत्रों में अर्थ और प्रयोग से । सामान्यतया प्रयोग और अर्थ ऐसी भाषा में जहाँ इन शब्दों का प्रयोग अभाषायी क्षेत्रों में किया जाता है,एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं होते हैं जैसा कि पिचर के कथन से विदित है । अभाषायी क्षेत्रों में जो वस्तुएं प्रयोग युक्त होती हैं वे अर्थयुक्त नहीं होती ; और वे वस्तुएं जो अर्थयुक्त होती हैं, वे प्रयोगयुक्त नहीं होती । किन्तु भाषा में कुछ अपवादों को छोड़कर कोई अभिव्यक्ति अर्थ और प्रयोग दोनों से युक्त होती है । कोई यह दावा नहीं कर सकता है कि वह किसी शब्द के प्रयोग को पूरी तरह समझता है किन्तु भाषा में उसके प्रयोग को नहीं जानता है । यदि वह यह नहीं जानता है कि विभिन्न भाषा-खेलों में शब्दों का प्रयोग कैसे किया जाता है तो वह यह नहीं कह सकता कि किसी शब्द के अर्थ को जानता है । अत: अर्थ और प्रयोग में घनिष्ठ सम्बन्ध है । जिसका अभाषायी क्षेत्रों में अभाव रहता है । इससे सिद्ध होता है कि अभाषायी क्षेत्रों में अर्थ और प्रयोग से सम्बन्धित सत्यों से कोई सुनिश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जाता,जिससे भाषा में किसी शब्द के प्रयोग और अर्थ का वर्णन किया जा सके ।

पिचर का यह कहना सत्य है कि प्रयोग को बिना जाने हुए अर्थ को जानना और अर्थ को बिना जाने हुए प्रयोग को जानना संभव है । संभवत: विटगेन्सटाइन भी इससे असहमत नहीं हो सकता था । किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि कोई व्यक्ति शब्द के अर्थ को जानने का दावा, भाषा में इसके प्रयोग को जाने हुए बिना कर सकता है । यदि कोई शब्द अर्थ और प्रयोग दोनों रखता है तो कोई व्यक्ति शब्द को पूरी तरह जानने का दावा तभी कर सकता है,जब वह इसके अर्थ और प्रयोग दोनों को जानता हो । यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या शब्द का अर्थ जानना; बिना इसका प्रयोग जाने और इसके प्रयोग को जानना बिना इसके अर्थ को समझे ? सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या किसी शब्द का अर्थ उसके प्रयोग से स्वतन्त्र रूप में निर्धारित किया जा सकता है । इस प्रकार अर्थ और प्रयोग का सम्बन्ध ही महत्वपूर्ण विषय है जो विटगेन्सटाइन के अर्थ-सिद्वान्त से सम्बन्धित

है । विटगेन्सटाइन का उद्देश्य इस बात का वर्णन करना है कि शब्द अपना अर्थ किस प्रकार ग्रहण करते हैं । ट्रैक्टेटस में उसकी मान्यता यह थी कि शब्द का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु से अभिन्न है । इसी प्रकार कोई यह कह सकता है कि वह अपनी परवर्ती रचनाओं में शब्द का अभेद इसके प्रयोग से करता है । किन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है । उसने अर्थ और प्रयोग के अभेद को अधिकांश अथवा बहुत सी स्थितियों में किया है यद्यपि सब में नहीं ।[34] किन्तु अधिकांश अभिव्यक्तियों के संदर्भ में वह यह स्वीकार करता है कि शब्द का अर्थ उसके प्रयोग द्वारा निर्धारित होता है । महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कोई अभिव्यक्ति अपना अर्थ कैसे प्राप्त करती है । विटगेन्सटाइन अपनी परवर्ती रचनाओं में यह अनुभव करता है कि न तो वह तरीका, जिसमें कि कोई अभिव्यक्ति अर्थ ग्रहण करती है और न ही इसका अर्थ अद्वितीय और रहस्यात्मक है । शब्द अपना अर्थ भाषा-खेल से प्राप्त करते हैं । शब्द का प्रयोग उसे अर्थ प्रदान करता है न कि शाब्दिक अथवा संकेतात्मक परिभाषाएं । जब तक शब्दों का प्रयोग ठीक और निश्चित तरीके से नहीं किया जाता है तब तक उनके अर्थों में कोई एकरूपता नहीं होती है । कोई शब्द एक ही अर्थ रखता है इस पूर्वाग्रह से मुक्त होने के लिए विटगेन्सटाइन शब्दों के वास्तविक प्रयोगों की ओर देखने को कहता है । कुछ अर्थों में शब्द के प्रयोग को बिना जाने हुए इसके अर्थ को जानना संभव है । किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि शब्द का अर्थ उसके प्रयोग से स्वतन्त्र है । विटगेन्सटाइन ने इस बात पर बल दिया है कि दार्शनिक प्रक्रिया शब्दों के प्रयोग से सम्बन्धित है । दार्शनिक समस्याओं के स्वरूप को समझने के लिए हमें अभिव्यक्तियों के वास्तविक प्रयोगों की ओर देखना चाहिए । जैसा कि वह कहता है -- हमें शब्दों को उनके तत्वमीमांसीय प्रयोगों की ओर से दैनिक प्रयोगों की ओर लाना चाहिए । विज्डम और पी०एफ० स्ट्रॉसन ने इसे विटगेन्सटाइन का मुख्य विचार बताया है । विज्डम के अनुसार - अर्थ के लिए मत पूँछो, प्रयोग के लिए पूँछो ।[35] इसी प्रकार स्ट्रॉसन ने भी दिखाया है कि पद के रहस्यात्मक और अद्वितीय सन्दर्भों की ओर मत देखो, बल्कि प्रयोग की ओर देखो, क्योंकि वही अर्थ है । दर्शन में यह बात नहीं है कि

तुम अर्थ से अनभिज्ञ हो, जो तुम जानना चाहते हो, वह प्रयोग है ।[36]

इस प्रकार अर्थ और प्रयोग का सम्बन्ध जो भी हो, किन्तु दर्शनशास्त्र में यह शब्द का प्रयोग ही है, जो महत्वपूर्ण है । विटगेन्सटाइन कहता है "पाँच" शब्द का अर्थ क्या है । प्रश्न इस बात का नहीं है बल्कि केवल "पाँच" शब्द का प्रयोग कैसे किया जाता है, इस बात का है ।[37] उसके अनुसार यदि हम विविध भाषा-खेलों में शब्दों के प्रयोग पर स्पष्ट रूप से अधिकार रखते हैं तो हम दार्शनिक समस्याओं से जो परेशानियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे मुक्त हो सकते हैं । उसके बाद हम इस उहापोह से मुक्त हो जाते हैं कि भाषा इस प्रकार से कार्य करती है अथवा किसी अन्य प्रकार से । उसके बाद हम यहविश्वास नहीं करेंगे कि किसी शब्द के अर्थ में कोई रहस्यात्मक और अद्वितीय तत्व तो नहीं छिपा है । साथ ही साथ हमारे लिए मार्ग दर्शन के रूप में किसी प्रतिमान की आवश्यकता नहीं है ।

विटगेन्सटाइन आगस्टाइन की भाषा से सम्बन्धित एक मुख्य अंग -"सभी वाक्य नामों के संघात हैं और वर्णन की तरह व्यवहृत होते हैं" का परीक्षण करता है । इस सम्बन्ध में अविवादास्पद सुझाव यह है कि आगस्टाइन का भाषा का चित्र इस प्रश्न का एक गलत उत्तर देता है । वाक्य क्या है ? अर्थात् नामकरण की अपेक्षा वर्णन करना भाषा के मूल तत्व से अधिक सम्बन्धित नहीं है । इस .मन्तव्य का एक परिणाम यह है कि कथन करना भाषा का आवश्यक व्यापार है जो भाषा के दार्शनिक सिद्धान्तों के मूल में निहित है । आगस्टाइन द्वारा प्रतिपादित भाषा का चित्र अर्थ और वाक्यों के प्रयोग के आकर्षक विवरण से अलंकृत है । वाक्य का अर्थ शब्द के अर्थ के समान बोधगम्य होने के लिए आन्तरिक रूप से अपनी समझ के लिए प्रतिमानों से सम्बन्धित है । ये कसौटियाँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं * ---

1- इसकी व्याख्या करना ।

2- इसका ठीक-ठीक प्रयोग करना ।

यहाँ पर हमारा मुख्य सम्बन्ध वाक्य के प्रयोग से है । वाक्यों के प्रयोग के दो पहलू होते हैं और ये समझ की कसौटियों के एक उपवर्ग में प्रतिबिम्बित होते हैं । कोई व्यक्ति उचित परिस्थितियों में एक वाक्य को उत्पन्न करता है, दूसरा व्यक्ति उपयुक्त परिस्थितियों में किसी वाक्य के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । ये दोनों ही प्रकार के मानदण्ड महत्वपूर्ण हैं । प्रथम प्रकार का प्रतिमान एक स्वीकरण के आधार को इसके अर्थ से जोड़ता है साथ ही साथ वक्ता के व्यवहार के साथ उसकी आन्तरिक मनःस्थिति के स्वीकरण के सत्य को भी संयुक्त करता है । इनमें से प्रतिमान का द्वितीय प्रकार विटगेंन्सटाइन के भाषा-खेल के वर्णन में बहुत ही महत्वपूर्ण है । विटगेन्सटाइन के द्वारा सत्यापन के सिद्धान्त का प्रयोग करना घोषणात्मक वाक्यों के विशिष्ट प्रयोग (Typical use) सम्बन्धी पहलू पर विशेष बल देता है । अर्थात् ऐसे वाक्यों को समझने के एक प्रकार के प्रतिमान पर विशेष बल देता है । इस सिद्धान्त के द्वारा घोषणात्मक वाक्यों के अर्थ और स्वीकारात्मक शर्तों के बीच आन्तरिक सम्बन्ध पर विशेष बल दिया गया है । उसकी भूल यह है कि उसने घोषणात्मक वाक्यों के प्रयोग की एकरूपता का अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण दिया है । कोई वाक्य किस प्रकार सत्यापनीय है इसका वर्णन करना इस वाक्य को समझने का केवल एक प्रतिमान है । अतः यह इसके व्याकरण के सम्बन्ध में भी एक योगदान है ।[38] भाषा-खेल को प्रतिपादित करने में विटगेन्सटाइन का एक मुख्य उद्देश्य वाक्यों के अप्राकृतिक (Non assertoric) प्रयोगों पर बल देकर के और इस बात पर ध्यान दे करके कि कथनों की प्रतिक्रियाएं कहे गये वाक्यों को समझने की कसौटियों के समान हैं, के बीच में सन्तुलन स्थापित करना है । भाषा-प्रयोग के इन लक्षणों से सिद्ध होता है कि विटगेन्सटाइन ने वाक्यों को एक औजार के रूप में प्रयुक्त किया है । दूसरों के साथ विमर्श में हम वाक्यों का प्रयोग किस प्रकार करते हैं, दूसरों के द्वारा कहे जाने पर हम उनका उत्तर किस प्रकार देते हैं, हम उन्हें कैसे समझते हैं । समझ के प्रतिमानों के विषय में यह बिन्दु इस विचार का एक महत्वपूर्ण अंग है कि भाषा बोलना जीवन का एक रूप है । विटगेन्सटाइन कहता है कि केवल एक वाक्य के द्वारा ही कोई व्यक्ति भाषा-खेल में गतिशील हो सकता है ।[39] भाषा-खेल की विशेषज्ञता (Mastery)

वाक्य को समझने की प्रागपेक्षा है या उसका अर्थ जानने की प्रागपेक्षा है ।[40] वाक्यों को समझने का यह संप्रत्यय विटगेन्सटाइन के भाषा-दर्शन में शब्द के अर्थ को समझने के समानान्तर है । शब्द को समझने का अर्थ यह है कि इसका ठीक-ठीक प्रयोग कैसे किया जाय । अर्थात् इसके प्रयोग के सम्बन्ध में प्रौढ़ता प्राप्त करना । शब्द का ठीक-ठीक प्रयोग करना, इसको समझने का एक मानदण्ड है । वाक्यों की औजारों से तुलना करना तथा यह अभिमत कि वाक्य का अर्थ इसका निश्चित रूप से प्रयोग करना और स्पष्ट करना है । यह विटगेन्सटाइन के सम्पूर्ण भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यक्त करता है । तीन दृष्टियों से यह मत महत्वपूर्ण है । ---

1- वाक्यों के प्रयोग का यह चित्र आगस्टाइन की भाषा में मान्य वाक्य के अर्थ के विवरण के सम्बन्ध में विटगेन्सटाइन के आक्षेपों को स्पष्ट कर देता है ।

2- वाक्य का अर्थ इसका प्रयोग है ; यह सिद्धान्त वाक्यों को समझने के बारे में विशिष्ट समस्याओं के प्रति विटगेन्सटाइन की तकनीक और शैली को सार रूप में प्रस्तुत करता है ।

3- वाक्य की तुलना एक औजार अथवा उपकरण से करना और वाक्य के प्रयोग की तुलना यन्त्र के प्रयोग से करना ; एक स्पष्ट चित्र प्रदान करता है, जिसके द्वारा वाक्य के आकार और प्रयोग के बीच सम्बन्ध के विषय में बोध होता है ।[41]

यह उल्लेखनीय है कि हम वाक्य के आकार को चाहे कितना ही विकसित करें, किन्तु एक विशेष अवसर पर इसका प्रयोग इसके आकार का अनुगमन नहीं करता है । इस सम्बन्ध में दो बातें उल्लेखनीय हैं । —

1- वाक्यों का वर्गीकरण, स्वीकरण, आदेश, प्रश्न इत्यादि के रूप में करना, उनके प्रयोग का वर्गीकरण है, न कि आकार का ।

2- किसी उक्ति को समझना (जानना) यह आपादित करता है कि एक औजार के प्रयोग की तरह उस वाक्य के प्रयोग का अभ्यास किया गया है ।

विटगेन्सटाइन कहता है - " वाक्य की ओर एक औजार के समान देखो और इसके अर्थ की ओर (इस औजार के प्रयोग की तरह) देखो " ।[42] वस्तुतः वाक्य को एक औजार कहना विटगेन्सटाइन के उद्देश्य को सिद्ध करता है कि वह एक विशेष भाषा-खेल में इस वाक्य की भूमिका पर बल देना चाहता है ताकि इसके उपकरणात्मक व्यापार को अच्छी तरह प्रकाशित (बताया) किया जा सके । आदेश देना, धमकाना या भयभीत करना, प्रश्न पूँछना, वर्णन करना इत्यादि का उद्देश्य श्रोताओं से शब्दात्मक अथवा अशब्दात्मक उत्तरों को देने अथवा उन्हें परिष्कृत करने के उद्देश्य से किया जाता है । वास्तव में देखा जाय तो वाक्य की तुलना एक औजार से करना, दोनों के बीच एक समानता (सादृश्य) व्यक्त करना है । विशेष रूप से यह समानता वाक्य के अर्थ की ओर दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित करती है, जिससे भाषा की संदिग्धता और अस्पष्टता को दूर किया जा सके । इससे वाक्य के आकार और प्रयोग के सम्बन्ध की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया । यह उस सीमा तक बल देता है जिससे वाक्यों को समझना उनके प्रयोग के जटिल अभ्यास की विशेषज्ञता (Mastery) का एक अंग है ।

विटगेन्सटाइन द्वारा प्रस्तुत वाक्यार्थ विवरण इस पर बल देता है कि किसी उक्ति को समझने की प्रागपेक्षा, उस कथित वाक्य के प्रयोग को जानना है । दूसरे शब्दों में अर्थ की समझ की प्रागपेक्षा वाक्यों के प्रयोग की प्राद्योगिकी में पाण्डित्य प्राप्त करना तथा इन तकनीकों के बीच विभेदीकरण है । एक कुशल भाषा-वक्ता को यह अवश्य जानना चाहिए कि वाक्य का प्रयोग क्या है ? स्वीकार करना, आदेश देना, प्रश्न पूँछना, नियम की रचना करना इत्यादि क्या है ? तथा अस्वीकार करना, खण्डन करना, स्वीकरण के बारे में किसी निर्णय को स्थगित करना, आज्ञा का पालन अथवा उल्लंघन करना, किसी प्रश्न का उत्तर देने में सफल होना अथवा विफल होना इत्यादि के प्रयोग किस प्रकार किये जाँय । इन क्रियाओं को करने की कसौटियाँ अवश्य होनी चाहिए । साथ ही साथ इसका भी एक मानदण्ड होना चाहिए कि इन अभ्यासों में पाण्डित्य प्राप्त करने का प्रतिमान भी होना चाहिए। वाक्यों के मौलिक प्रयोगों के स्पष्टीकरण और विभेदीकरण के सम्बन्ध में तीन बातें

बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । ----

1- स्वीकरण करना, आदेश जारी करना, प्रश्न पूँछना इत्यादि उद्देश्यात्मक कर्म (Intentional actions) हैं, जिनके किसी व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न किये जाने के लिए व्यवहारात्मक प्रतिमान अवश्य होने चाहिए । यद्यपि ये क्रियायें बिना कुछ कहे ही सम्पादित की जा सकती हैं । वे वाक्यों के कथन द्वारा सम्पादित की जा सकती हैं । इसके अतिरिक्त यदि चिन्ह और वाक्य जैसे पद कथनों को पर्याप्त रूप से आवृत करने के लिए सोचे जाते हैं, जो हाव-भाव (gestures), उदाहरण (Samples), डिजाइन बनाना (Drawing) इत्यादि से सम्बद्ध होते हैं । ये क्रियाएं स्थिर रूप से वाक्यों के कहने के द्वारा सम्पादित की जाती हैं और इसलिए इन्हें Speech act कहा जाता है । स्वीकरण, आदेश का पालन करना, प्रश्नों का उत्तर देना इत्यादि का निराकरण करने की सम्वादी उद्देश्यात्मक क्रियाओं (Intentional actions) की विशेषताएं हमेशा एक कथित वाक्य का उत्तर देती हैं । और इन क्रियाओं के लिए भी व्यवहारात्मक प्रतिमान होगें । दोनों ही प्रकार के कर्मों के प्रतिमान अपराजेय नहीं हैं, बल्कि कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं ।

2- बहुत सी भाषाओं में वाक्यों के अनेक व्याकरणात्मक रूप हो सकते हैं । हम घोषणात्मक (Declarative), प्रश्नवाचक (Interrogative) आदेशात्मक (Imperative) और इच्छाबोधक (Optative) वाक्यों में भेद करते हैं । कोई व्यक्ति जो किसी वाक्य का उच्चारण करता है वह कोई स्वीकरण करता है, आदेश जारी करता है, प्रश्न पूँछता है इत्यादि केवल उसके संदर्भ पर निर्भर नहीं हैं प्रत्युत् इसके आकार पर भी निर्भर करता है । वस्तुतः एक प्रश्न वाचक वाक्य का उपयुक्त संदर्भ में उच्चारण करना, प्रश्न पूँछने का एक मानदण्ड है । अन्य मानदण्डों के समान यह भी अपराजेय नहीं है । उचित परिस्थितियों में कोई व्यक्ति, जो इस आकार के वाक्य का उच्चारण करता है, वह एक स्वीकृति करता है (जैसे -- आलंकारिक (Rhetorical) प्रश्न पूँछना ।) इसके अतिरिक्त इस आकार के वाक्य का उच्चारण न करना प्रश्न पूँछने की विफलता के लिए पर्याप्त

शर्त नहीं है । कोई व्यक्ति एक उचित घोषणात्मक वाक्य का उच्चारण करने के द्वारा एक प्रश्न पूँछ सकता है (जैसे – मैं यह जानना चाहूँगा कि क्या वर्षा हो रही है) (अथवा एक ऐसा प्रश्न जो उचित न हो, के उच्चारण द्वारा यह पूँछ सकता है कि क्या वर्षा हो रही है, बशर्ते वह इस वाक्य के कहने में एक प्रश्न पूँछने के उद्देश्य के लिए मानदण्डों को पूरा करता हो । अन्ततोगत्वा वह हाव-भाव अथवा डिजाइन बनाने के द्वारा कोई प्रश्न पूँछ सकता है अथवा उसके बारे में सहमति व्यक्त कर सकता है, जिस सम्बन्ध में कथित वाक्य के व्याकरणात्मक स्वरूप (आकार) के बारे में प्रश्न किया गया है । एक विशेष व्याकरणात्मक आकार के किसी व्यक्ति द्वारा कथित वाक्य से उसके इस वाक्य का एक विशेष तरीके में प्रयोग करने में अनुमान की विफलता सहमति व्यक्त करने, आदेश जारी करने, नियम बनाने आदि के सम्प्रत्ययों का अंग है । तदनुसार वाक्य का ऐसा कोई प्रयोग नहीं है, जो इसके आकार में लिखा जा सके ।

3– वाक्यों के प्रयोग की क्रियाओं का विभेदीकरण लोगों को एक निश्चित मनसवादी पौराणिकी की दिशा में आकर्षित करता है । एक आदेश जारी करने के सम्बन्ध में कोई व्यक्ति सोच सकता है कि आदेश को व्यक्त करने वाले वाक्य का एक अर्थ होना चाहिए । आदेश के पालन करने की यह प्रागपेक्षा है कि हम आदेश को एक आदेश के रूप में समझते हों । इसी प्रकार हमें एक सहमति अथवा स्वीकरण के रूप में, एक प्रश्न को प्रश्न के रूप में समझना चाहिए । दूसरे शब्दों में स्वीकारात्मक, प्रश्नवाचक, आदेशात्मक इत्यादि वाक्यों केप्रयोग के पहले उनका ज्ञान होना चाहिए । सहमति व्यक्त करना अथवा आदेश देने जैसी क्रियायें उद्देश्यात्मक (Intentianal) समझी जा सकती हैं । किन्तु परोक्ष रूप से ये भ्रामक हैं । न तो आदेश का अर्थ समझना और न ही आदेश को आदेश के रूप में समझना, किसी कथन के बोलने अथवा सुनने की मानसिक संलग्नता है । Neither Meaning nor Understanding an order as an order is a mental accompaniment of speaking or hearing an utterance.[43]

एक आदेश को एक आदेश के रूप में समझने को हम आदेश जारी करने की जटिल क्रिया के पृथक् करने योग्य अंश के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते हैं । वाक्यों के प्रयोग की मानसिक संलग्नता के बीच में जो सामंजस्य प्रतीत होता है वह वाक्यों की व्याख्या के अभ्यास, उनकी उत्पत्ति का अभ्यास और उनके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के बीच में आपातिक नियमितताओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।[44]

वाक्यों के अर्थ और उनको समझने के प्रतिमानों के दृष्टिकोण से जो सबसे निर्णायक पहलू है,वह यह है उनके प्रयोगों को ग्रहण किया जाय -- विशेष रूप से स्वीकरण, आदेश , प्रश्न, इच्छा, निवेदन (प्रार्थना) इत्यादि पदों के द्वारा निर्दिष्ट प्रयोग में मौलिक विभेदों को ग्रहण करना । यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के भेद केवल स्थूल रूप में ही वाक्यों के व्याकरणात्मक आकार में विभेदीकरण के समरूप होते हैं । विशेषतया एक ही टाइप सेन्टेन्स (Type sentence) के दो टोकेन (Token) बिल्कुल एक-दूसरे से भिन्न तरीके से प्रयुक्त हो सकते हैं और आकार या स्वरूप में भिन्नता रखने वाले टाइप सेन्टेन्सों के टोकेन परस्पर अभिन्न (तादात्म्यक - Identical) रूप में प्रयुक्त (लागू) हो सकते हैं । अपने व्याकरणात्मक स्वरूपों के सन्दर्भ में वाक्य प्रकारों (Sentence types) के वर्गीकरण के स्थान में विटगेन्सटाइन विभिन्न प्रकार से वाक्यों का प्रयोग करने के लिए प्रतिमानों पर आधारित उक्तियों के वर्गीकरण को प्रतिस्थापन्न (Substitutes) करता है । बुद्धि विकल्पों में शब्दों के वियोजन के समान इस प्रकार का वर्गीकरण इसको स्थापित करने में हमारे उद्देश्य के सापेक्ष होगा । यह आविष्कृत भाषा के स्वरूप या प्रकृति और भाषा के प्रयोग कर्ताओं की क्रियाओं पर निर्भर होगा ।[45] अन्ततोगत्वा जहाँ तक भाषा मूलक अभ्यास विकसित होते हैं, इसको संशोधित करने की आवश्यकता होगी ।

विटगेन्सटाइन के अनुसार भाषा के तर्कशास्त्र की उत्कृष्टता प्राप्त करने की प्रवृत्ति हमें सारतत्ववाद (Essentialism) की ओर ले जाती है । उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि सभी घोड़ों में कुछ चीजें उभयनिष्ठ हैं । यदि

ऐसा न होता तो सभी घोड़ों को पशुओं के एक वर्ग (घोड़े) में समाहित न किया जा सकता । इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में कुछ ऐसा तत्व होता है, जिसके कारण यह एक वर्ग के अन्तर्गत् रखी जा सकती है । एक सामान्य शब्द एक एकतामूलक (Unitary) अर्थ रखता है । उदाहरण के लिए खेल शब्द अवश्य कुछ सार्वभूत तत्वों को निर्दिष्ट करता है जो इसके अर्थ हैं । दूसरे शब्दों में सभी सामान्य नाम कुछ लक्षणों से युक्त होते हैं जो उनके द्वारा निर्दिष्ट सभी वस्तुओं में उभयनिष्ठ होते हैं । विटगेन्सटाइन ने इन मान्यताओं का खण्डन किया । उसके अनुसार भाषा के तर्कशास्त्र की उत्कृष्टता सम्बन्धी हमारी मनोवृत्ति केवल समानताओं को ही देखती है और विषमताओं की उपेक्षा करती है । दर्शन के क्षेत्र में अनेक प्रकार की भ्रान्तियों का एक प्रमुख कारण यही है । यदि हम सभी खेलों की ओर देखें, तो हम यह पाते हैं कि ऐसी कोई विशेषता नहीं हैं जो सभी खेलों में विद्यमान हो । हम केवल उनमें सादृश्यता ही पाते हैं । बोर्ड खेल ,कार्ड खेल, गेंद खेल, आलम्पिक खेल इत्यादि को खेल कहा जाता है । इन सब में क्या उभयनिष्ठ विशेषता है ? ऐसा नहीं कहा जा सकता,उनमें कोई चीज अवश्य ही उभयनिष्ठ होनी चाहिए अथवा उन्हें खेल नहीं कहा जाएगा,किन्तु देखो उन सब में कोई बात उभयनिष्ठ है,यदि तुम उन्हें देखते हो,तो उनमें कोई बात सामान्य नहीं पाओगे, किन्तु केवल समानताएं, सम्बन्ध और उनकी सम्पूर्ण श्रृंखला - - - - - - - सोचो मत किन्तु देखो । उदाहरण के लिए बोर्ड खेलों को, उनके विविध सम्बन्धों को देखो । अब कार्ड-खेलों को देखिये - - - - - - जब हम गेंद-खेल की ओर ध्यान देते हैं,कुछ बातें उभयनिष्ठ होती हैं,किन्तु बहुत सी चीजें नहीं पायी जाती हैं । क्या ये सब मनोरंजनकारक हैं । यहाँ पर मनोरंजनकारक तत्व हैं किन्तु कितनी दूसरी विशेषताएं लुप्त हो गयी हैं । इसी प्रकार हम अन्य बहुत से खेलों के बारे में देख सकते हैं । कैसे उनमें सामान्यताएं दिखायी पड़ती हैं और लुप्त हो जाती हैं ? इस परीक्षा के फलस्वरूप हम समानताओं का एक जटिल परस्पर व्यापन और मिला जुला रूप (Criss Crossing) देखते हैं और कभी-कभी विस्तार की समानता ।[46]

विटगेन्सटाइन के अनुसार उपरिनिर्दिष्ट वास्तविकताओं का अनुभव न करने के कारण दार्शनिकों ने वास्तविक आकारों और मूर्त सामान्यों के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है । किन्तु मूल समस्या यह है कि यदि उनमें कोई सर्वसामान्य विशेषता नहीं है तो एक वर्ग के अन्तर्गत् आने वाली बहुत सी वस्तुओं का निर्देश करने के लिए एक पद का प्रयोग कैसे किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में विटगेन्सटाइन का कहना है यद्यपि सभी वस्तुओं में कोई भी उभयनिष्ठ तत्त्व नहीं है तथापि उनमें एक पारिवारिक समरूपता है, जिस प्रकार सभी खेल एक परिवार का निर्माण करते हैं ।[47]

खेल के सादृश्य की अभिव्यक्ति द्वारा भाषा-खेल के प्रत्यय का विकास हुआ । यद्यपि भाषा-खेल के संप्रत्यय का परिचय ब्ल्यू बुक में मिलता है किन्तु इसकी परम्परा विटगेन्सटाइन के पूर्ववर्ती विचारों में स्पष्ट रूप से मिलती है । विटगेन्सटाइन का यह सिद्धान्त कि "सरल तर्कवाक्य तर्कतः एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं", ट्रैक्टेटस की आधार शिला है । दो तर्कवाक्यों के बीच में तार्किक अवलम्बन का अस्तित्व आन्तरिक जटिलता की प्रमुख विशे ता मानी गयी । यदि P , q के लिए अपरिहार्य है तो P के कुछ तत्त्व अवश्य जटिल होने चाहिए । उसके लिए q का तात्पर्य P के तात्पर्य में निहित है । इसकी व्याख्या इस तथ्य के द्वारा की जाती है कि q का कुछ तत्त्व P के तत्त्व की प्रमुख विशेषता है । इस प्रकार जब विश्लेषण के द्वारा समस्त जटिलता दूर कर दी जाती है तो इस विश्लेषण के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले सरल तर्कवाक्य तर्कतः स्वतन्त्र होते हैं । यहाँ पर कोई भी दो सरल तर्कवाक्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं । उनमें समानता केवल इतनी है कि वे एक भाषा परिवार के हैं अर्थात् तर्कवाक्य हैं । किन्हीं दो तर्कवाक्यों में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे वे एक-दूसरे के अधीन हों । ट्रैक्टेटस के तार्किक परमाणुवाद के मूल में तर्कवाक्यों की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त एक दोष था ।[48]

तर्कवाक्य एक निकाय से सम्बन्धित समझे जाते हैं, वह यह है — तर्कवाक्यों का एक समूह, जिसके सदस्यों के बीच में अपवर्जन सम्बन्ध होता है, जो सत्यता फलनात्मक

संयोग के परिणाम नहीं हैं, प्रत्युत् परमाणविक तर्कवाक्यों में घटित होने वाले संप्रत्यय शब्दों के संयोजन हैं । इस सिद्धान्त के कारण विटगेन्सटाइन अपने एक पूर्ववर्ती मूलभूत सिद्धान्त को मानता रहा । वह यह है कि भाषा एक प्रकार का आकलन (Calculas) है । यह (भाषा) आकारीकरण की तार्किक व्याकरणात्मक निकाय (Logico syntactical system of formation) है और रूपान्तरण नियमों के साथ-साथ अपरिभाष्यों के अर्थ को प्रदान करने वाली है । ये सब संयुक्त रूप से भाषा के प्रत्येक सुरूपायित वाक्य के अर्थ को निर्धारित करते हैं ।

विटगेन्सटाइन का खेल संप्रत्यय बहुत महत्वपूर्ण है । उसके भाषा-सिद्धान्त पर खेल के सादृश्य का पर्याप्त प्रभाव है । खेल संप्रत्यय के अन्तर्गत अनेक वांछित साहचर्य,जो भाषा-संप्रत्यय को सफलता पूर्वक प्रकाशित कर सकते हैं,समाहित हैं । खेल सादृश्य के द्वारा विटगेन्सटाइन ने भाषा के विविध पहलुओं को प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया है । खेल मानव मस्तिष्क की स्वतन्त्र संरचनाएं हैं,जो स्वायत्त और नियम से नियन्त्रित हैं । खेल खेलने की क्षमता का आधार तत्सम्बन्धी प्रशिक्षण में निहित है । इसको खेलने की योग्यता,तत्सम्बन्धी तकनीकी परिपक्वता है । इसका अस्तित्व सामान्य प्रतिक्रियाओं और योग्यताओं की अपेक्षा रखता है । खेल का उद्देश्य,इस सीमा तक कि यह एक जीतने के लिए अथवा खोने के लिए है, खेल के द्वारा निर्धारित होता है । खेल का उद्देश्य खेल के बाहर नहीं है । यद्यपि कोई व्यक्ति सुख, यश अथवा धन के लिए भी खेल सकता है । खेल का संप्रत्यय जो विटगेन्सटाइन का पारिवारिक साम्य संप्रत्यय को व्यक्त करने के लिए प्रिय उदाहरण हो गया, स्वतः पारिवारिक साम्य के महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है जिससे भाषा-संप्रत्यय,तर्कवाक्य और नियमों का बोध होता है । खेल-सादृश्य के द्वारा ही भाषा-खेल के संप्रत्यय का विकास हुआ है और इसीलिए दार्शनिक विश्लेषण की उत्तम तकनीकी को भाषा-खेल पद्धति कहा जा सकता है । भाषा-खेल का प्रत्यय ब्ल्यू बुक में प्राप्त होता है — — — — — — — — — — — भाषा-खेल भाषा के आकार हैं,जिनसे एक बच्चा शब्दों का प्रयोग

करना प्रारम्भ करता है । भाषा-खेलों का अध्ययन मूल भाषा अथवा भाषा के मूल आकारों का अध्ययन है । यदि हम सत्यता और असत्यता की समस्याओं, तर्कवाक्यों की सत्ता से सहमति अथवा असहमति, स्वीकरण (Assertion) का स्वरूप, मान्यता (Assumption) और प्रश्न का अध्ययन करना चाहते हैं तो भाषा के मूल आकारों की ओर हम महान लाभ के साथ देखेंगे, जिनमें चिन्तन के ये आकार विचार की बहुत जटिल प्रक्रियाओं की भ्रामक पृष्ठभूमि के बिना प्रकट होते हैं । जब हम भाषा के इन सरल आकारों को देखते हैं तो वह मानसिक कुहरा (धुंधलापन) जो भाषा के हमारे साधारण प्रयोग को आच्छादित करता है, लुप्त हो जाता है । हम क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, जो स्पष्ट और सुबोध हैं, को देखते हैं । दूसरी तरफ - हम देखते हैं कि हम मूल आकारों में नये आकारों को जोड़कर एक जटिल आकार बना सकते हैं ।[49]

उपर्युक्त उद्धरण विश्लेषणात्मक और उत्पत्तिमूलक पद्धति की ओर संकेत करता है । जिसका बाद में परित्याग कर दिया गया । इन्वेस्टीगेशन्स में इसे भाषा-खेल के संप्रत्यय के अन्तर्गत नहीं माना गया है कि यह भाषा-आकार है जिसके द्वारा एक बच्चा शब्दों का प्रयोग करना सीखता है । यद्यपि इस प्रकार के कुछ आविष्कृत भाषा-खेल हो सकते हैं ।[50] इस विश्लेषणात्मक अनुभव मूलक मान्यता के विरुद्ध दो आक्षेप हैं --

1- विटगेन्सटाइन का भाषा सीखने सम्बन्धी विवरण एक प्रकार का आर्म चेयर (Arm chair) सम्बन्धी अटकलबाजी है । मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रगतिशील सविस्तृत अनुभवमूलक प्रयोगों के कारण इस मान्यता का खण्डन हो चुका है । यह एक अनुभवमूलक विवरण प्रस्तुत करता है जो अर्थ के दार्शनिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अप्रासंगिक सिद्धान्त है । यह उत्पत्तिमूलक गवेषणाओं को संप्रत्यय विश्लेषण के साथ मिला देती है । यह मनोविज्ञानवाद का एक जटिल आकार है और इसलिए असंगत है । पढ़ाना और सीखना आन्तरिक रूप से समझ के संप्रत्यय से सम्बन्धित हैं । समझ एक प्रकार की मूलभूत मनोवैज्ञानिक घटना है । इस प्रकार विटगेन्सटाइन का उक्त भाषा-खेल सिद्धान्त दार्शनिक सिद्धान्तों से सुसंगत नहीं है ।

2- ब्ल्यू बुक में अव्यक्त चित्र प्रारम्भिक कुशलताओं का अपरिवर्तनशील तत्व है, जिसे बच्चे सीखते हैं और जिस पर अपेक्षाकृत अधिक जटिल और परिष्कृत कुशलताएं आधारित हैं । यह सही है कि बच्चा अभिव्यक्तियों का प्रयोग सीखता है जो हमारे भाषायी जाल के साथ विविध सम्बन्ध रखते हैं । किन्तु यदि हम दार्शनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काल्पनिक भाषा-खेलों का आह्वान करते हैं तो हमें बच्चे के सीखने की स्थितियों की ओर नहीं देखना चाहिए, जो एक ऐसे विशाल निकाय के अंग हैं जो स्वतः भ्रमोत्पादक हैं ।[51]

इन्वेस्टीगेसन्स में विटगेन्सटाइन मूल भाषा पर बल नहीं देता है और एक बच्चा भाषा कैसे सीखता है की ओर ध्यान नहीं देता है (या इन बातों की उपेक्षा करता है) । वस्तुतः इन मूल भाषाओं की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे अपने-आप में परिपूर्ण हैं । जब हम भाषा का एक अंश किसी बच्चे को पढ़ाते हैं तो हम इस पर विचार करते हैं कि बच्चा एकीकृत सम्पूर्ण भाषा का कौन सा भाग सीखता है । इसका विस्तार स्वतन्त्र रूप से परिपूर्ण भाषा की अपेक्षा,जबकि यह सीख लिया जाता है,हमारी भाषा की परिपूर्णता मानी जाती है । भाषा की आंशिक विशेषज्ञता की कसौटियों को पूर्ण विशेषज्ञता की कसौटी से हम पृथक् करते हैं । किन्तु फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के पूर्ण भाषा-खेलों में जोड़ और परिष्कार,उसके मूल आधार को बदल सकते हैं । वस्तुतः प्रारम्भिक शतरंज में कठपुतलियों को जोड़ना खेल का विस्तार करना नहीं है,प्रत्युत् एक दूसरे प्रकार के खेल की खोज करना है । क्योंकि संभावित गतियों के क्षेत्र को यह बदल देता है ।[52]

विटगेन्सटाइन का भाषा-खेल सम्बन्धी विचार ब्राउन बुक में अपनी परिपक्वता को प्राप्त होता है । यहाँ ब्राउन बुक में और फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में भाषा-खेल सम्बन्धी सिद्धान्त में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

भाषा-खेल की निम्नलिखित विशेषताएं हैं ---

1- संयोजन नियमों (Combinatorial Rules) के अनुसार भाषा-खेलों द्वारा बनाये गये शब्द और वाक्य ।

2- उपकरण (Instruments) - (

(क) ब्राउन बुक[53] में विटगेन्सटाइन इसे संकेत कहता है । जैसा कि पढ़ाने में प्रयोग किया जाता है । जैसे - वहाँ ।

(ख) आदर्श या नमूना (Pattern) - जैसे - नमूने शब्द या आकृति खींचना ।

(ग) एक सारिणी में चित्र जो शब्दों, चित्रों और उपकरणों को सहसंबद्ध करते हैं । यह शब्दों के लिए उसके द्वारा समर्थित उपकरण सादृश्य के साथ समझौता करता है ।

3- संदर्भ अथवा प्रसंग - प्रसंग के संप्रत्यय की वह सामान्यता, जिसका प्रयोग किया जा रहा है और वह उद्देश्य, जिसके लिए यह विचार में लाया जाता है, को पृथक् करना आवश्यक है । अन्य खेलों के समान भाषा-खेल भी एक समूह में खेला जाता है । प्रसंग का संप्रत्यय अर्थ की प्रागपेक्षा में सम्मिलित है । यदि भाषा-खेल का प्रसंग उससे बिल्कुल अलग है तो भाषा-खेल नहीं खेला जा सकता, क्योंकि यह आधारहीन होगा । प्रत्येक खेल की कुछ शर्तें होती हैं । ये शर्तें खेल की प्रागपेक्षाएं हैं ।[54] दूसरे शब्दों में प्रसंग भाषा-खेल की प्रागपेक्षा है । जे0एल0 आस्टिन के अनुसार शब्दों का अर्थ उनके प्रयोगों और प्रसंगों पर आधारित होता है । प्रमाण क्या है ?, निश्चय क्या है?, संशय क्या है ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर इन शब्दों के किसी विशेष सन्दर्भ में प्रयोग पर निर्भर है । यदि इन शब्दों को उनके विशेष प्रयोगों और प्रसंगों से पृथक् करके एक सामान्य उत्तर की माँग की जाती है तो इन अर्थों में ज्ञान मीमांसा संभव नहीं है ।[55] यहाँ पर आस्टिन की समस्या विटगेन्सटाइन के भाषा-खेल की समस्या से पृथक् है । किन्तु उसके ये विचार ये सिद्ध करते हैं कि भाषा-खेल में जिस प्रसंग में शब्दों का प्रयोग किया जाता है । वह प्रसंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

4- खेल की क्रिया — यह लक्षण प्रसंग से सम्बन्धित है । क्रिया पर ध्यान देना,

जो कि भाषा-खेल का खेलना है ; भाषायी खेलों की विविधता को प्रकाशित करता है, उनके प्रयोग के सामान्य प्रसंगों पर ,उनके सामान्य विविध उद्देश्यों और उनके प्रयोग के सामान्य प्रमाणीकरण पर बल देता है ।

5- भाषा-खेल का पांचवा लक्षण भाषा के प्रयोग, उद्देश्य और उपकरणों,शब्दों, वाक्यों के व्यापार तथा प्रक्रिया से सम्बन्धित है । ये बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं । यहाँ संप्रत्ययों का एक ऐसा परिवार है जो विटगेन्सटाइन के भाषा-दर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । विटगेन्सटाइन के अनुसार बीसवीं शताब्दी के दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण त्रुटि यह है कि दार्शनिकों ने इन लक्षणों की अपेक्षा अभिव्यक्ति के आकार और ढांचे पर विशेष बल दिया।[56]

6- खेल-सीखना -- हम खेल सीखते हैं और इस सीखने का आधार प्रशिक्षण है ।[57] बहुत से आविष्कृत भाषा-खेलों में विटगेन्सटाइन विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण को चित्रित करता है जो भाषा-खेल में भाग लेने वालों के लिए अनिवार्य हैं । जैसे - शब्दों को याद करना,प्राकृतिक संख्याओं के अनुक्रम को याद करना, नमूनों की तुलना के अभ्यास को सीखना अथवा एक नमूने के प्रक्षेपण की पद्धति को सीखना इत्यादि । यह नियम-पालन के स्वरूप को व्यक्त करता है । इससे यह भी पता चलता है कि किस तरह नियम और उसके प्रयोग की खाई को पाटा जा सकता है । यहाँ पर व्याख्या की प्रागपेक्षा, संशय और प्रश्न की आवश्यकता पर बल दिया गया है । विभिन्न शब्दों के प्रयोग के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण को प्रकाशित करते हुए यह शब्द के प्रकार की तार्किक विविधता को स्पष्ट करता है । जैसे --"रंग" "शब्द", "भौतिक वस्तुओं के नाम" इत्यादि ।

7- पूर्णता -- सामान्यतया विटगेन्सटाइन इस बात पर बल देता है कि उसके द्वारा आविष्कृत खेल भाषा के अंग नहीं हैं किन्तु इन्हें पूर्ण समझना चाहिए ।[58] यद्यपि सभी खेल इस प्रकार के नहीं हैं किन्तु जिन्हें पूर्ण समझा जाता है वे तुलना के विषय के रूप में महत्वपूर्ण हैं । स्पष्टतया उनमें उन लक्षणों का अभाव है जो उनके सदृश (Analogous) शब्दों में विशेषताएँ होती

हैं ।

प्राकृतिक भाषा-खेल — भाषा-खेल का प्रयोग हमारे वास्तविक भाषायी अभ्यास के अंश को इंगित करने के लिए भी किया जाता है । विटगेन्सटाइन शब्दों के साथ भाषा-खेल की बात करता है । जैसे- खेल[59], तर्कवाक्य, भाषा, विचार, जगत्,[60] दर्द[61] (Pain), पढ़ना[62], कहना [63], आदेश देना, आज्ञा का पालन करना, वर्णन करना, विषय की अभिव्यक्ति, इसको आंकना, किसी घटना की रिपोर्ट करना[64], एक स्वप्न को कहना[65], किसी हेतु को स्वीकार करना[66] इत्यादि ।

जिस सीमा तक प्राकृतिक भाषा-खेल का पृथकत्व संभव है, भाषायी क्रिया के लक्षणों को इतनी दृढ़ता के साथ हमारे दैनिक अभ्यासों में सन्निहित होना चाहिए कि हमें उनकी ओर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता न पड़े । इस बात को प्रकाशित करना भाषा-खेल के लिए आवश्यक है । यदि कृत्रिम भाषा-खेल और उस प्रकार की भाषा के बीच में पर्याप्त और गहन समानताएं हैं । यह स्वाभाविक है कि भाषा-खेल पद का विस्तार स्वयं भाषा के अंश पर भी लागू किया जाय । यह भाषा का एक सुविदित विकास है । इसकी सफलता का आकलन भाषा-खेल के रूप में हमारी भाषा के अंशों (की समस्याओं) के वर्णन में निहित स्वाभाविक मात्रा है । तथापि अन्य सभी सादृश्य मूलक भाषा विकासों के समान पदावली का स्थानान्तरण खतरनाक होता है । वस्तुतः हम लोग सादृश्य के क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं । भाषा एक खेल नहीं है । न,ही भाषा की कोई ऐसी आदर्शमूलक क्रियायें हैं, जिसमें इसका प्रयोग अनुस्यूत हो ।[67]

पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय विटगेन्सटाइन और अन्य समकालीन पाश्चात्य दार्शनिकों के द्वारा विस्तृत रूप से प्रयोग में लाया गया महत्वपूर्ण उपकरण है । पारिवारिक साम्य के प्रत्यय का परिचय और स्पष्टीकरण मुख्य रूप से खेल संप्रत्यय के संदर्भ में मिलता है । विशेष रूप से भाषा और खेल के बीच में सादृश्य के आधार पर । यह परोक्षतः इस सिद्धान्त का समर्थन करता है कि भाषा-संप्रत्यय एक पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय है । इस संदर्भ में विटगेन्सटाइन द्वारा लिखित

कुछ विशेषतायें उल्लेखनीय हैं ---

वे क्रियायें जिन्हें खेल कहा जाता है, उनमें कोई ऐसा सामान्य धर्म निहित नहीं है, जिसके आधार पर उन सबके लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जा सके ।[68] यदि हम विभिन्न खेलों को ध्यानपूर्वक देखें तो हम पाते हैं कि यह नियम असत्य है कि उनमें कोई चीज सर्वसामान्य है ।[69]

इसके परिणामस्वरूप खेल की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं है ।[70] कोई भी सुझायी गयी परिभाषा "खेल" के वास्तविक प्रयोग के साथ अंशतः ही सुसंगत होगी ।[71]

खेलों में निहित समानताओं के एक जटिल जाल के कारण हम विविध क्रियाओं को खेल के नाम से पुकारते हैं । इन विभिन्न क्रियाओं में बहुत बड़ा सम्बन्ध होता है । बहुत सी समानताओं के परस्पर व्यापी होने के कारण, जो कि अधिक अथवा कम मात्रा में होते हैं, खेल नाम दे दिया जाता है ।

एक शब्द की Merkmal परिभाषा देने की योग्यता इसको समझने की अनिवार्य शर्त नहीं है । यदि सभी खेलों में कोई सामान्य धर्म न हो तो खेल को परिभाषित करना असंभव है । अतः कोई व्यक्ति इसे परिभाषित नहीं कर सकता है । किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता है कि कोई व्यक्ति खेल को समझ नहीं सकता है ।[72]

यद्यपि खेल की व्याख्या की जा सकती है किन्तु इसकी Merkmal परिभाषा नहीं दी जा सकती है । यह सोचना एक दोष है कि एक अपरिभाष्य अभिव्यक्ति अव्याख्येय है ।

खेल के संप्रत्यय की कोई स्पष्ट सीमा नहीं है । चूँकि खेल की व्याख्या किसी Merkmal definition के द्वारा नहीं की जा सकती है । अतः इसके विस्तार की कोई कठोर तथा सुनिश्चित सीमा नहीं है ।

खेल क्या है, की व्याख्या मुख्य रूप से उदाहरण देने से सम्बन्धित है अर्थात् खेलों के वर्णन करने से । इन उदाहरणों में समानता हो सकती है । " ये और सदृश वस्तुएं" खेल कही जाती हैं ।

विभिन्न खेलों को जो एक साथ समाहित करता है और उन्हें जो एकता प्रदान करता है, वे खेलों के बीच में परस्पर व्यापी बहुत सी समानताएं हैं । इस एकता के विचार में खेल के संप्रत्यय,संख्या का संप्रत्यय उचित है ।

पारिवारिक साम्य संप्रत्यय की अभिव्यक्ति जब इस प्रकार के प्रत्ययों के लिए प्रयोग में लायी जाती है तो यह प्रकारान्तर से एक प्रकार के रूपक का आहवान है । परस्पर व्यापी समानताओं का यह मायाजाल,जो कि खेल के संप्रत्यय का निर्माण करता है ; की तुलना परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच में निहित परस्पर व्यापी समानताओं के साथ की जाती है । ये बहुत ही भिन्न प्रकार की हो सकती हैं । जैसे बनावट में सादृश्य, चेहरे के लक्षणों में सादृश्य, आंखों, बालों, मानसिक सन्तुलन, बोलने के ढंग, दृष्टिकोण और तौर-तरीके इत्यादि में सादृश्य । इनमें से कोई भी धर्म ﴾गुण﴿ उस समुदाय के सदस्य होने के लिए न तो पर्याप्त है और न ही अनिवार्य है । इसी कारण से पारिवारिक साम्य का रूपक,जबकि यह खेल के साथ प्रयोग में लाया जाता है स्पष्टकारक है ।

विशेष उद्देश्यों के लिए हम खेल के संप्रत्यय की एक परिसीमा मान सकते हैं किन्तु यह सीमा हमें किन परिस्थितियों में, कहाँ,यहाँ,वहाँ इत्यादि खींचना है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमारे लिए कौन सी सीमायें अथवा परिस्थितियां सुविधाजनक हैं ।

प्रासंगिक समानताओं को प्रस्तुत करना खेल के प्रयोग को उचित ठहराता है, क्योंकि यह विभिन्न खेलों के बीच में एक सम्बन्ध के कारण है । विशेष रूप से वे सम्बन्ध जो क्रियाओं और खेलों के मूलभूत उदाहरणों के बीच में हैं,जिन्हें हम सही रूप से खेल कहते हैं । सादृश्यों की विद्यमानता इन सभी क्रियाओं के लिए एक ही शब्द के प्रयोग को उचित ठहराती है । हम किसी चीज को खेल इसलिए कहते

हैं क्योंकि यह उन दूसरी क्रियाओं के समान है जो तर्कसंगत रूप में खेल कही जाती हैं ।

उपर्युक्त विवरणों से सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्लेषण निषेधात्मक है । विटगेन्सटाइन का उद्देश्य संप्रत्यय शब्दों के अर्थ को प्रतिबिम्बित करने वाली प्रचलित तस्वीर को अपदस्थ करना था । उसका मुख्य लक्ष्य इस सिद्धान्त का खण्डन करना है कि उस प्रत्येक वस्तु में कुछ धर्म सामान्य (Common) होना चाहिए, जिस पर कोई संप्रत्यय शब्द लागू होता है । हम लोग इस रूढ़ि के जाल में फंसे रहते हैं कि संप्रत्यय शब्दों की व्याख्या और प्रयोग के बारे में हमें जो ज्ञान है उसका ये शब्द सही-सही वर्णन करते हैं या नहीं। उसकी दृष्टि में Merkmal परिभाषा की मांग और व्याख्या के दूसरे आकारों का कोई औचित्य नहीं है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विटगेन्सटाइन पुराने सिद्धान्तों के स्थान पर किन्हीं नये सिद्धान्तों को प्रस्तावित करता है । वह यह स्वीकार करता है कि खेलों में कोई सामान्य गुण नहीं होता । किन्तु हम इसे कैसे सिद्ध कर सकते हैं ? यहाँ पर विटगेन्सटाइन ने अनावश्यक रूप से एक दृढ़ कथन प्रतिपादित किया है --- इस मन्तव्य को असिद्ध करने के लिए कुछ सामान्य गुण अवश्य होना चाहिए, यह किसी की आवश्यकता नहीं है, को स्थापित करने के लिये पर्याप्त है और यह दावा निर्बल है,अपेक्षाकृत कि उनमें (वस्तुओं में) कोई चीज सामान्य नहीं है । विवाद का मुख्य बिन्दु यह है कि सभी खेलों में सामान्य किन्हीं भी गुणों को हम नहीं जानते, जिनकी हम "खेल" के रूप में व्याख्या खेलों के Merkmal की गणना के द्वारा नहीं करते हैं । यदि हम सभी खेलों में सामान्य कुछ गुणों को खोजते भी हैं तो यह खेल संप्रत्यय का एक अंग नहीं है क्योंकि यह हमारे खेल की व्याख्या के अभ्यास से सम्बन्धित नहीं हैं ।

विटगेन्सटाइन के अनुसार खेलों में समानताएं खेलों को खेल कहने का औचित्य ठहराती हैं । प्रासंगिक समानताओं की अनुपस्थिति किसी खेल को क्रिया कहने से इन्कार करने का औचित्य बताती है । कोई व्यक्ति यह सोच सकता है कि विभिन्न प्रकार की नीली वस्तुओं में कोई चीज सामान्य नहीं है । किन्तु नीली

वस्तुओं का विस्तार समानताओं के द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्धित है । क्या यह संप्रत्यय इस विचार से नहीं जोड़ा जा सकता है कि एक वस्तु को नीली कहने का कोई आधार नहीं है । पुनश्च स्वयं पारिवारिक साम्य के रूपक से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को स्वीकार करने का आधार समानताओं की अनुपस्थिति के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु हो सकती है । यद्यपि विशेष परिवार की अधिकांश विशेषताएं एक निश्चित मात्रा में एक विशेष सदस्य (व्यक्ति) में उपस्थित रह सकती हैं । इसके बावजूद यह संभव है कि वह व्यक्ति परिवार का सदस्य न हो ।

प्रश्न यह उठता है कि एक परिवार के लिए अभेद अथवा तादात्म्य की कसौटियाँ क्या हैं ? इसका क्या अर्थ है कि सभी खेल एक परिवार का निर्माण करते हैं न कि अनेक परिवारों का । विटगेन्सटाइन का उद्देश्य पूरा हो सकता था और इन प्रश्नों को टाला जा सकता था,बशर्ते यदि वह यह दावा करता कि खेल की व्याख्या उदाहरण अथवा प्रतिमानों के द्वारा की जाती है । यह स्वतः इस तर्क का अकाट्य हेतु नहीं है कि खेल का कोई एक संप्रत्यय नहीं है ।

विटगेन्सटाइन यह स्वीकार करता है कि पारिवारिक साम्य की कोई निश्चित (Sharp) सीमा नहीं है । क्या इसका अर्थ यह है कि उनका प्रयोग अवश्य ही विवादास्पद है ? क्या गणितशास्त्रियों के बीच में संख्या शब्द के प्रयोग के विषय में विवाद न होना यह असिद्ध करता है कि संख्याएं एक परिवार का निर्माण करती हैं । ये निष्कर्ष अन्तिम नहीं हैं । विटगेन्सटाइन यह तर्क नहीं करता है कि पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय Merkmalपरिभाषाओं की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण हैं । वह उन्हें संदिग्ध नहीं मानता है । उनकी स्पष्ट सीमा का न होना उनके Merkmalपरिभाषाओं के अभाव को सूचित करता है । Merkmal के द्वारा परिभाषित पद विवादास्पद प्रयोगों के विरुद्ध प्रमाण नहीं हैं ।

इस प्रकार विटगेन्सटाइन का पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय परिभाषा के रूढ़िवादी संप्रत्यय के समक्ष एक चुनौती है । वे इन सम्बन्धित संप्रत्ययों की

आलोचना करते हैं कि संप्रत्यय शब्दों की व्याख्या करना, उनके प्रयोगों का औचित्य ठहराना अथवा व्याख्या करना क्या है ?

पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को दार्शनिक विश्लेषण का एक नया उपकरण मानने के सम्बन्ध में कतिपय दार्शनिकों ने कुछ कठिनाइयों का उल्लेख किया है। उनमें से अधिकांश ने विटगेन्स्टाइन के उत्तर को अपर्याप्त माना है। चूँकि पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को निषेधात्मक उद्देश्य के लिए प्रस्तुत कियागया है तथा विटगेन्स्टाइन के द्वारा किये गये इसके सभी प्रयोग एक सामान्य आलोचनात्मक युक्ति के विशेषीकरण हैं। अत: उसके लिए इस संप्रत्यय का प्रयोग कैसे किया जाय, इसका सामान्य विवरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। और यदि इसलिए वह ऐसा विवरण देने में असफल रहा तो उसकी कोई गलती नहीं है। उसके पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाये जाते हैं उसका कारण यह है कि पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को विटगेन्स्टाइन द्वारा मान्य उद्देश्यों से भिन्न प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। फिर भी यह स्पष्ट करना चाहिए कि विटगेन्स्टाइन की दृष्टि में ये प्रश्न क्यों नहीं उठते हैं।

1- पारिवारिक साम्य के सम्प्रत्यय और दूसरे प्रकार के सम्प्रत्ययों के बीच में सीमा रेखा कैसे खींची जाती है ? वह कौन सा लक्षण है जो एक संप्रत्यय को पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय बनाता है ? विटगेन्स्टाइन ने इन प्रश्नों को स्पष्ट नहीं किया है। पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय अर्थ की व्याख्या के आकार से सम्बन्धित हैं। किन्तु व्याख्या के स्वरूप की ये सीमाएं भी अस्पष्ट हैं। विटगेन्स्टाइन की खेल और संख्या की व्याख्याएं प्रतिमान के रूप में सत्ता के प्रकारों को निर्दिष्ट करती हैं किन्तु यदि तत्सम्बन्धी नमूने विशेष अथवा मूर्त्त होते तो क्या कहा जा सकता ? हम खेल की व्याख्या बहुत सी संकेतात्मक (Token) क्रियाओं के द्वारा कर सकते हैं। जैसे— शतरंज का खेल, फुटबाल का खेल इत्यादि। हम

यह जोड़ सकते थे कि इस प्रकार की वस्तुएं खेल कही जा सकती हैं अथवा हम संख्या की व्याख्या कुछ उदाहरणों के द्वारा कर सकते थे । जैसे -- 2, -1 , $\sqrt{2}$, 2 +i और $\sqrt{2}$ + 3i - J - 2 k । क्या ये संख्याएं उसी आकार की व्याख्या करती हैं ? यदि ऐसा है तो व्याख्या का यह आकार संकेतात्मक परिभाषा (Ostensive Definition) और नमूने के द्वारा की जाने वाली व्याख्या के साथ परस्पर व्याप्त (Overlap) हो जायेगा । क्या उदाहरणों अथवा नमूनों की बहुलता (विविधता) को पारिवारिक साम्य के संप्रत्ययों की व्याख्या के द्वारा हमारी व्याख्या के उदाहरणीकृत (Exemplified) आकार रखने के लिए एक अनिवार्य अथवा पर्याप्त शर्त माना जाय ? प्रतिमानों के द्वारा की गयी व्याख्याएं स्वतः एक परिवार का निर्माण करती हैं, ऐसा मानना अपेक्षाकृत अच्छा हो सकता है । कुछ विशेष उद्देश्यों की अनुपस्थिति में उनके परितः कोई सीमा खींचने का कोई विशेष आधार नहीं है । और विटगेन्स्टाइन निश्चित रूप से ऐसा नहीं करता है ।

प्रश्न यह उठता है कि संप्रत्ययों का वर्गीकरण व्याख्याओं के वर्गीकरण से किस प्रकार सम्बन्धित है । इसकी एक संभावना यह हो सकती है कि हम किसी अभिव्यक्ति की, जिसकी व्याख्या प्रतिमानों के द्वारा की गयी व्याख्या का स्वरूप ग्रहण कर सकती है, को हम पारिवारिक साम्य के अन्तर्गत निरूपित करते हैं । यह उस वर्ग को बहुत ही विस्तृत बना देगा । इसके अतिरिक्त विटगेन्स्टाइन के पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय के निषेधात्मक प्रयोग को निरूद्ध कर देता है । उदाहरण के लिए यदि हम वृत्त शब्द की व्याख्या संकेतों की एक श्रृंखला के द्वारा कर सकते हैं तो इससे यह प्रदर्शित नहीं होता है कि विभिन्न वृत्तों में कोई गुण सामान्य नहीं है अर्थात् हम ऐसा नहीं समझते हैं कि वृत्त की Merkmal परिभाषा ठीक है । व्याख्याओं केवर्गीकरण के आधार पर संप्रत्ययों के वर्गीकरण में काफी गुंजाइश है । इसको किस प्रकार उपयोग में लाया जाय, यह वर्गीकरण करने के प्रयोजन पर निर्भर है ।

2- प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई पारिवारिक संप्रत्यय सुसंगत है । यदि इसकी व्याख्या परस्पर व्यापी समानताओं के संदर्भ में मध्यवर्ती कड़ियों के माध्यम से कुछ प्रतिमानों के साथ की जाती है तो यह अनिवार्य रूप से बन्धन रहित होनी चाहिए ।[73] कुछ बातों में प्रत्येक वस्तु प्रत्येक वस्तु से साम्य रखती है और इस प्रकार किन्हीं भी दो वस्तुओं से हम मध्यवर्ती कड़ियों की एक ऐसी श्रृंखला का निर्माण कर सकते हैं जिनमेंप्रत्येक निकटवर्ती जोड़ा बहुत सी समानताओं के द्वारा जुड़ा होता है । इस प्रकार चूँकि कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो तथाकथित रूप सेव्याख्यायित संप्रत्यय (पारिवारिक साम्य) के अन्तर्गत् समाहित हो सकती है । अतः किसी भी पारिवारिक साम्य का सम्प्रत्यय सारहीन है । इस युक्ति के विरोध में भी तर्क दिये जा सकते हैं । किन्तु प्रत्येक तर्क इस मान्यता से शुरू होता है कि प्रतिमानों का एक विन्यास देना पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय की उपयुक्त व्याख्या नहीं हो सकती है । इस प्रकार की व्याख्या आंशिक रूप से ही सत्य हो सकती है । इस संदर्भ में अन्य व्याख्याएं भी संभव हैं । कोई वस्तु पारिवारिक साम्य के सम्प्रत्यय के अन्तर्गत् आती है या नहीं, इस बात को निर्धारित करने के लिए सादृश्य या समानता के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित सूची की मांग की जा सकती है । द्वितीयतः कोई व्यक्ति मध्यवर्ती कड़ियों की श्रृंखला के माध्यम से पारिवारिक साम्य को स्वीकार करने की अपेक्षा प्रतिमान के साथ अपरोक्ष साम्य की माँग कर सकता है । इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि पारिवारिक साम्य के लिए निषेधात्मक प्रतिमानों की आवश्यकता है अर्थात् जो वस्तु साम्य के सम्प्रत्यय के अन्तर्गत् नहीं आती है उसकी व्याख्या उदाहरणों के द्वारा करना ।

पूर्वोक्त आक्षेप का इस प्रकार का औपचारिक प्रत्युत्तर भ्रामक है । इस संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हम खेल शब्द की व्याख्या Merkmal परिभाषा के द्वारा नहीं देते । हम शब्दों के प्रयोग का एक निश्चित अभ्यास करते हैं । इसे प्रत्येक वस्तु पर लागू नहीं किया जा सकता । सामान्यतया हम ऐसी व्याख्याओं को सही मानकर स्वीकार कर लेते हैं, जिनकी गणना खेलों के अनेक उदाहरणों

के रूप में की जाती है । किन्तु यह दर्शन का उपयुक्त कार्य नहीं है कि "यह सब कैसे संभव है", इसके लिए एक व्याख्या की रचना की जाय । वस्तुतः हमें यह दिखाना चाहिए कि दार्शनिक युक्ति के संदर्भ में क्या गलती है जिसके कारण कि यह असंभव है । वह खेल की उदाहरणों के द्वारा व्याख्याओं के आकार से इन व्याख्याओं के द्वारा किये जाने वाले प्रयोग की ओर ध्यान हटाना है । "एक नियम" जो व्यवहार में लागू किया जा सकता है,हमेशा व्यवस्थित होता है ।[74] क्या यह संभव है कि पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय के प्रयोग को प्रमाणित करना संभव है । यदि ऐसा है तो क्या केवल प्रासंगिक आधार युक्त समानताएं और विषमताएं हैं । विटगेन्सटाइन ने इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक रूप में दिया है । इसका कारण भाषा है ।[75]

हम जो पारिवारिक साम्य के सम्प्रत्ययों के प्रयोगों की हमेशा समीक्षा कर सकते हैं वह विटगेन्सटाइन के उदाहरणों के विषय में प्रतिमानों (Intutions) से एक प्राकृतिक सामान्यीकरण प्रतीत होता है । क्या दूसरी तरफ प्रमाणीकरण और समीक्षा को प्रतिमानों के साथ समानता और असमानता के अनुसार सीमित किया जा सकता है ? खेलों और उसकी क्रियाओं के बीच में भेद करना,खेलों और थियेटर में की गयी खेल से सम्बन्धित क्रियाओं,खेलों और युद्ध के आकारों के बीच में भेद करना इत्यादि को क्रियाओं और प्रतिमानमूलक खेलों के बीच में संख्या और परिमाण की समानताओं का योग नहीं कहा जा सकता है । प्रचुर मात्रा में सादृश्य के संप्रत्यय की कल्पना करने से ही खेल के समस्त प्रमाणीकरण और आलोचनाएं समानताओं और असमानताओं से सम्बन्धित हो सकती हैं । यदि पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय विटगेन्सटाइन द्वारा मान्य प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाया जाता है तो यह बिल्कुल अनावश्यक है । इस संदर्भ में दो भूलों का उल्लेख करना आवश्यक है ।

1- ऐसे प्रमाणीकरण, जो सादृश्य के प्रासंगिक रूपों के विन्यास से कुछ समानताओं की मांग करते हैं, उनका खण्डन किया जा सकता है क्योंकि कुछ विशेष प्रकार के युद्धों और खेलों में अद्भुत साम्य होता है (जैसे-

प्रतियोगिता में जीतना अथवा हारना, नियमों के विन्यास इत्यादि) । किन्तु इन युद्धों और खेलों में बहुत सी असमानताएं भी होती हैं और इन असमानताओं का पलड़ा भारी हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि विटगेंस्टाइन की यह मान्यता है कि प्रतिमानों के साथ समानताओं के द्वारा किया गया कोई प्रमाणीकरण अकाट्य नहीं है ।[76]

पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय के सम्बन्ध में यह सरलता से सोचा जा सकता है कि इसमें यह पूर्वमान्यता निहित है कि उदाहरणों के द्वारा कोई व्याख्या तब तक ठीक नहीं होती है जब तक कि यह सादृश्यों के द्वारा बोधगम्य नहीं बनायी जाती । महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रतिमानमूलक उदाहरणों का प्रयोग कैसे किया जाता है न कि व्याख्या का वह आकार, जिनमें कि इन उदाहरणों की गणना की जाती है ।

पारिवारिक साम्य के संप्रत्ययों का क्षेत्र क्या है ? अर्थात् पारिवारिक साम्य के अन्तर्गत कौन से संप्रत्यय आते हैं । कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि एक संप्रत्यय शब्द पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को केवल तभी प्रयोग में लाता है जबकि इसकी Merkmal परिभाषा देना संभव न हो, इस अर्थ में पारिवारिक साम्य का संप्रत्यय अविश्लेष्य है । बहुत से दार्शनिकों के अनुसार विश्लेषणीयता किसी भी प्रत्यय का एक बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है । प्रायः ऐसा सोचा जाता है कि सत्ता के स्वरूप तथा तात्विक ढांचे के बारे में कुछ गम्भीर बातें व्यक्त की जानी चाहिए । विटगेंस्टाइन का व्याकरण की स्वायत्ता का संप्रत्यय संप्रत्यय शब्द (Concept Word) की विश्लेषणीयता को प्रचुर महत्व देने के कारण इस हेतु का परित्याग कर देता है । व्याख्या के नियमों के सापेक्ष रूप में एक दिये हुए आकार के अन्तर्गत अपरिभाष्यता संप्रत्यय शब्द का एक पहलू है । संप्रत्यय शब्दों की Merkmal परिभाषा यदि येन-केन-प्रकारेण दी भी जाय तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह वास्तव में विश्लेष्य है । विश्लेष्णीयता न तो खोजी जाती है और न छिपायी जाती है बल्कि अनुबद्ध की जाती है । एक सम्प्रत्यय शब्द की विश्लेष्णीयता जिसके द्वारा निर्धारित की जाती है वह यह है कि इस

प्रकार की कोई ऐसी परिभाषा उस शब्द की समझ के लिए एक प्रतिमान के रूप में प्रयोग में लायी जाती है अथवा नहीं ।

यह उल्लेखनीय है कि दार्शनिक दृष्टि से यह बात महत्वपूर्ण है कि कुछ प्रकार के संप्रत्यय अविश्लेष्य हैं जो दूसरे संप्रत्ययों के एक निकाय से सम्बन्धित हैं । यह हमारी भाषा के लिए एक Ubersicht के रूप में महत्वपूर्ण है ।इसके द्वारा कुछ ऐसे अविश्लेष्य संप्रत्ययों के वर्गों की विशेषता ज्ञात होती है जो पूर्णतया पारिवारिक साम्य के सम्प्रत्ययों की संरचना करते हैं । विश्लेषणीयता की प्रतीति की व्याख्या करने के लिए कुछ स्थितियों में हम एक पौराणिक कथा का निर्माण करते हैं । विटगेन्सटाइन ने मुख्य रूप से इस प्रकार की दो स्थितियों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है —

1- औपचारिक संप्रत्यय - जैसे - Satz का संप्रत्यय, प्रमाण, भाषा, नाम, वस्तु, संख्या, गुण इत्यादि ।

2- मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय - जैसे - चिन्तन का संप्रत्यय, अर्थ करने का संप्रत्यय, समझ अथवा बोध का संप्रत्यय, इरादा करना, विश्वास करना, इच्छा करना इत्यादि । प्रायः प्रत्येक दशा में वे प्रत्यय जिन्हें विटगेन्सटाइन पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय के रूप में स्वीकार करता है इन्हीं दोनों अर्थात् औपचारिक और मनोवैज्ञानिक वर्गों के अन्तर्गत् आते हैं । ऐसा इसलिए है क्योंकि दार्शनिकगण अपनी दार्शनिक दृष्टि को पौराणिक आख्यानों (पौराणिक कथाओं) से आवृत कर लेते हैं और उसके परिणाम -स्वरूप रूढ़िवाद के गर्त में निमग्न हो जाते हैं । औपचारिक संप्रत्ययों के सम्बन्ध में दार्शनिकों की आसक्ति यह है कि वे उन्हें अनिर्वचनीय (अकथनीय) मान लेते हैं । इसके अनुसार सभी वस्तुएं जो औपचारिक (आकारिक) संप्रत्यय के अन्तर्गत् आती हैं, उनमें एक सार होता है जिनके बारे में हम कुछ कह नहीं सकते हैं । मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों के सम्बन्ध में दार्शनिकों की आसक्ति का कारण मानसिक घटना अथवा व्यवहार की अनुपस्थिति की कमी को पूरा करना है । इस सम्बन्ध में एक गुप्त आध्या-

त्मिक प्रक्रिया को एक पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार किया जाता है ।[77]

इन विवरणों से सिद्ध होता है कि विटगेंस्टाइन द्वारा पारिवारिक साम्य के संप्रत्यय को दर्शन में इतना अधिक महत्व इसलिए दिया गया, क्योंकि यह संप्रत्यय दार्शनिक संशयवाद के इन दोनों ही आकारों का प्रतिरोधी है ।

Notes and References

1. Wittgenstein, L. PI Section 92.
2. Purest Crystal
3. Wittgenstein, L. PI Section 97.
4. Ibid . PI Section 98.
5. Ibid Section 107.
6. Wittgenstein, L. 'Blue and Brown Books', pp. 17-18.
7. Wittgenstein, L. Tractatus Logico Philosophicus (4.531).
8. Wittgenstein, L. PI Section 23.
9. Ibid Section 24.
10. Ibid Section 109.
11. Ibid Section 122.
12. Ibid Section 90.
13. Ibid Section 664.
14. Wittgenstein, L. 'Blue and Brown Books', p. 49.
15. Wittgenstein, L. PI Section 110.
16. Ibid Section 111.
17. Malcolm, N. 'Ludwig Wittgenstein, A Memoir', p. 65.
18. Wittgenstein, L. PI Section 2.
19. Ibid Section 7.

20. Pitcher, G. 'The Philosophy of Wittgenstein', p. 242.

21. Wittgenstein, L. PI Section 19.

22. Ibid Section 223.

23. Ibid Section 23.

24. Ibid Section 116.

25. Ibid Section 38.

26. Ibid Section 132.

27. Ibid Section 68.

28. Cavel, S. 'Wittgenstein's Later Philosophy' P.R. Jan. 62, p.71.

29. Wittgenstein,L. PI Section 31.

30. Ibid Section 199.

31. Ibid Section 202.

32. Pitcher, G. 'The Philosophy of Wittgenstein', pp. 251-52.

33. Pole, D. 'The Later Philosophy of Wittgenstein', p. 83.

34. Wittgenstein, L. PI Section 43.

35. Wisdom, J. 'Ludwig Wittgenstein', Mind Volume 61, No.242, April 1952, p.258.

36. Strawson, P.F. 'Philosophical Investigations,' Mind, Volume 63, 1954, p. 71.

37. Wittgenstein, L. PI Section 1.

38. Ibid Section 353.

39. Ibid Section 49.

40. Ibid Section 199.

41. Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations', Basil Blackwell, 1980, Reprinted in 1984, pp. 69-71.

42. Wittgenstein, L. PI Section 421.

43. Ibid Section 20.

44. Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations', Basil Blackwell 1980, Reprinted 1984, p. 74.

45. Wittgenstein, L. PI Section 18.

46. Ibid Section 66.

47. Ibid Section 16.

48. Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations', Basil Blackwell, 1980, Reprinted 1984, p. 47.

49. Wittgenstein, L. Blue and Brown Books, p. 17.

50. Wittgenstein, L. PI Section 7.

51. Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations', Basil Blackwell 1980, Reprinted 1984, p. 52.

52. Ibid p. 53.

53. Ibid p. 84.

54. Wittgenstein, L. Zettel, p. 350.

55. Sense and sensibilia , p. 124.

56. Barrett, C. (ed.) 'Lectures & Conversation on Esthetics Psychology and religious believes', Blackwell, Oxford 1970, p.2.

57. Wittgenstein, L. Zettel Reference No. 387 & 419.

58. Wittgenstein, L. PI Section 2 & 18.

59. Ibid PI Section 71.

60. Ibid Section 96.

61. Ibid Section 300.

62. Ibid Section 156.

63. Ibid Section 363.

64. Ibid Section 23.

65. Ibid Section 184.

66. Ibid Section 224.

67.	Baker, G.P. & Hacker, P.M.S.	Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell 1980, Reprinted 1984, p. 56.
68.	Wittgenstein, L.	PI Section 65.
69.	Ibid	Section 66.
70.	Ibid	Section 68 & 69.
71.	Waismann, F.	'The Principles of Linguistic Philosophy' (ed.) Harre, R., Mackmilan, New York 1965, p. 180.
72.	T.S. 302, 14.	
73.	Rhees, R.	(ed.) Philosophical Grammar, Translator - Kenny, A.J.P., Blackwell, Oxford 1974, p. 76.
74.	Ibid	P. 182.
75.	Wittgenstein, L.	PI Section 65,
76.	Rhees, R.	(ed.) Philosophical Grammar, Translator-Kenny, A.J.P., Blackwell, Oxford 1974, p.119 & BB p. 145.
77.	Ibid	p. 74 & PI Section 36.

षष्टम अध्याय

व्यक्तिगत भाषा-सिद्धान्त

व्यक्तिगत भाषा और संवेदन भाषा --- यह विचारणीय है कि विटगेन्सटाइन का व्यक्तिगतभाषा से क्या तात्पर्य है और वह इसे किस प्रकार असंभव मानता है। व्यक्तिगत भाषा की संभावना को निम्नलिखित प्रश्नों से नहीं जोड़ना चाहिए --

1- क्या मैं (कोई व्यक्ति) अपने व्यक्तिगत प्रयोग के लिए साधारण अंग्रेजी में कोई डायरी रख सकता हूँ ताकि अपने कष्टों, संवेदनाओं और मानसिक अवस्थाओं को उसमें अंकित कर सकूँ।

2- क्या वास्तव में ऐसी भाषा हो सकती है जिसका प्रयोग केवल एक व्यक्ति कर सकता हो, किन्तु जो किसी अन्वेषक के द्वारा समझी जा सकती हो ? इन दोनों प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक रूप में दिया जा सकता है किन्तु द्वितीय प्रश्न का उत्तर कठिन है। एअर के अनुसार किसी व्यक्ति के लिए एक चिन्ह को अर्थ प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि दूसरे लोग भी इसे समझने में सक्षम हों। रीज (Rhees R.) के अनुसार मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मेरे पास एक व्यक्तिगत भाषा हो सकती है ? क्या मै कोई ऐसी चीज समझ सकता हूँ जिसे ऐसी भाषा में न कहा जा सके, जिसे कोई अन्य व्यक्ति समझ सकता हो ?[1]

एअर और रीज दोनों ही द्वितीय प्रश्न पर विशेष बल देते हैं। एअर का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि ऐसी भाषा संभव है जो इसके वक्ता के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए अबोधगम्य हो। संविदनात्मक रिपोर्ट अनिवार्य रूप से किसी व्यक्ति के लिए अग्राहय नहीं है। रीज ने एअर की मान्यता का निराकरण करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार किसी भाषा का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से नियमों से होता है। व्यक्तिगत भाषा का वक्ता किसी नियम का पालन करता है अथवा

नहीं,इस बात को निर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं हो सकता । यह विवादास्पद है कि रीज ने एअर की समस्या का सन्तोषजनक उत्तर दिया है । ग्रेवर के अनुसार यह विवाद विटगेन्स्टाइन द्वारा व्यक्तिगत भाषा के विषय में उठाये गये प्रश्नों से भिन्न है । व्यक्तिगत भाषा का अर्थ वह भाषा है जो न केवल सामान्य नहीं है,बल्कि वक्ता के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा समझी भी नहीं जा सकती है ।[2] ऐसी मान्यता है कि व्यक्तिगत भाषा के शब्द केवल उसी व्यक्ति के द्वारा समझे जा सकते हैं जो इसका प्रयोग करता हो । ऐसा माना जाता है कि व्यक्तिगत भाषा को संवेदनों के साथ शब्दों को सम्बद्ध करके सीखा जाता है । विटगेंस्टाइन के अनुसार इस प्रकार की व्यक्तिगत भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है । यह एक तार्किक असंभावना है । यदि संवेदन शब्दों को अभिव्यक्त संवेदनों से न सम्बद्ध किया जाय तो उनका प्रयोग किसी भाषा में नहीं किया जा सकता है । हम संवेदन शब्दों को विशेष स्थितियों में,जो कि उन्हें अर्थ प्रदान करती हैं,सीखते हैं । यदि किसी चिन्ह का अर्थ यह माना जाय कि यह विशेष संवेदन को इसकी समस्त अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र रूप में संज्ञा प्रदान करता है तो यह अपने व्यापार का सम्पादन नहीं कर सकता । यहाँ तक कि यह भाषा का शब्द हो ही नहीं सकता । सामान्यतया किसी चिन्ह की परिभाषा विषय अथवा गुण की ओर,जिसका कि वह चिन्ह निर्देश देता है,की ओर संकेत करके दी जाती है । इन सभी स्थितियों में वस्तु अथवा गुण सार्वजनिक रूप से निरीक्षण के योग्य होता है । मैं "लाल" शब्द का अर्थ किसी लाल वस्तु की ओर संकेत करके किसी व्यक्ति को बता सकता हूँ किन्तु इस प्रकार का संकेत किसी संवेदन के सम्बन्ध में नहीं दिया जा सकता । मान लिया प्रश्नगत वक्ता (मैं) किसी संवेदन का अनुभव करता है। वक्ता (मैं) संवेदन पर अपने को केन्द्रित करता है और इसे "स" नाम देता है । यह एक संकेतात्मक परिभाषा (Ostensive definition) के समान है। केवल इस स्थिति में प्रश्नगत वक्ता (मैं) संवेदन का मानसिक रूप से संकेत करता है । और वक्ता (मैं) यह परिभाषा स्वयं अपने लिये देता है न कि किसी अन्य व्यक्ति के लिए।किन्तु विटगेंस्टाइन कहता है कि व्यक्तिगत परिभाषा देने का सम्पूर्ण विचार आधारहीन है । यह अपने-आप में एक आलस्यपूर्ण क्रिया है जो मेरे दाहिने हाथ के द्वारा बाँये हाथ को धन देने जैसा है ।[3] यह सोचना कि

कोई चीज - - - - - - - - - - - - - इस प्रकार है ; का अर्थ यह नहीं है कि वह वस्तु जैसी सोची जाती है,उससे अभिन्न है । मेरा यह संस्कार कि मैं एक नियम का पालन करता हूँ, यह सिद्ध नहीं करता कि मैं वास्तव में नियम का पालन करता हूँ । कोई ऐसी चीज अवश्य होनी चाहिए, जो मेरे संवेदनों से स्वतन्त्र हो, ताकि मैं यह सिद्ध करने के लिए इसका प्रयोग कर सकूँ कि मैं एक नियम का पालन कर रहा हूँ । इस प्रकार संवेदन के तादात्म्य के लिए किसी कसौटी के अभाव के कारण व्यक्तिगत नामकरण असंभव है । वह कहता है,जो कुछ मुझे उचित प्रतीत होने जा रहा है, वह उचित है, और इसका केवल यह अर्थ है कि यहाँ हम उचित के बारे में बात नहीं कर सकते ।[4] इस विवरण से सिद्ध होता है कि व्यक्तिगत भाषा के लिए कोई मानदण्ड नहीं है । विटगेन्सटाइन यह नहीं कहता है कि व्यक्तिगत भाषा के लिए किसी कसौटी की खोज करना (किसी कसौटी को प्राप्त करना) कठिन है, बल्कि विटगेन्सटाइन व्यक्तिगत भाषा के अस्तित्व और संभावना दोनों को नकारता है । अतः ऐसी भाषा के सम्बन्ध में किसी कसौटी के होने का प्रश्न ही नहीं उठता । विटगेन्सटाइन पुनः कहता है कि (व्यक्तिगत भाषा से सम्बन्धित) एक व्यक्तिगत डायरी एक सर्वपूर्ण रिकार्ड है । इसके चिन्ह कोई चिन्ह नहीं हैं । उदाहरण के लिए (कोई संवेदन) "स" एक आलस्यपूर्ण चिन्ह (Idle - Mark) है । इसका न कोई प्रयोग, न कोई व्यापार न किसी चीज से कोई सम्बन्ध है [5] विटगेन्सटाइन ने स्मृति को भी कसौटी के रूप में स्वीकार नहीं किया है । व्यक्तिगत भाषा में यह स्वीकृति कि मेरी स्मृति इस-इस प्रकार बताती है, रिक्त होगी । "मेरी स्मृति" का अर्थ मेरी स्मृति की संवेदना अथवा संस्कार भी नहीं है । स्मृति,संस्कार या तो ठीक होता है अथवा ठीक नहीं होता है किन्तु व्यक्तिगत भाषा में कोई बाह्य नियन्त्रण नहीं होता । यह कहा जा सकता है कि मैं एक स्मृति से दूसरी स्मृति की अपील कर सकता हूँ । किन्तु यह सुबह के अखबार की अनेक प्रतियाँ खरीदने के समान है,ताकि स्वयं को आश्वस्त किया जा सके कि यह जो कुछ कहता है सत्य है[6] स्ट्रॉसन की यह मान्यता तर्कसंगत नहीं है कि विटगेन्सटाइन ने स्मृति का खण्डन किया है । स्ट्रॉसन के अनुसार स्मृति हमें अपने

संवेदनों का निर्देश करने के लिए शब्दों के प्रयोग में सक्षम बनाती है । यदि स्मृति को महत्व न दिया जाय तो शब्दों के प्रयोग के लिए किसी व्यक्ति के पास कोई कसौटी नहीं हो सकती[7], किन्तु विटगेन्सटाइन ने स्मृति का निराकरण नहीं किया है । वह जीवन के दैनिक व्यापार में स्मृति को पर्याप्त महत्व देता है । वास्तव में विटगेन्सटाइन स्मृति की प्रमातीतता का खण्डन करता है न कि स्वयं स्मृति का । स्मृति सत्य या असत्य हो सकती है । स्मृति कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे "प्रमा" कहा जा सके अथवा जिसके विरूद्ध कोई संशय न व्यक्त किया जा सके । स्मृति के औचित्य का परीक्षण करने के लिए कोई चीज स्मृति से स्वतन्त्र रूप में होनी चाहिए । उन सभी स्थितियों में जिनमें स्मृति पर विश्वास किया जाता है, एक कसौटी इस सम्बन्ध में होती है कि हमारी स्मृति ठीक है अथवा नहीं । किन्तु व्यक्तिगत भाषा के सम्बन्ध में इस प्रकार की किसी कसौटी का अस्तित्व नहीं है । व्यक्तिगत भाषा के विषय में ऐसा कोई प्रतिमान नहीं है जिससे स्मृति को सत्य अथवा असत्य कहा जा सके । किसी संवेदन की स्मृति के विषय में किसी कसौटी का अस्तित्व नहीं है ।

संवेदन भाषा के सम्बन्ध में विटगेन्सटाइन द्वारा प्रस्तुत दर्द (Pain) के संवेदन पर विचार करना प्रासंगिक है । विटगेन्सटाइन के अनुसार व्यक्तिगत संवेदन, संवेदन-भाषा-खेल में समाविष्ट नहीं है । यदि दर्द शब्द किसी वस्तु का व्यक्तिगत रूप में निर्देश करता है तो वह वस्तु छिप जाती है । दर्द शब्द का अर्थ दर्द भाषा-खेल से ग्रहण किया जाता है । दर्द भाषा-खेल में दर्द का व्यवहार महत्वपूर्ण है न कि व्यक्तिगत संवेदन । किन्तु इसका यह अर्थ करना भूल होगी कि संवेदन कुछ नहीं है । विटगेन्सटाइन कहता है कि यदि उसने किसी चीज का खण्डन किया है तो यह केवल व्याकरणात्मक कल्पना है (दूसरे शब्दों में केवल व्याकरणात्मक कल्पना का खण्डन किया है)[8] संवेदन शब्द, संवेदनों का नामकरण व्यक्तिगत रूप से नहीं करते हैं । दर्द शब्द का अर्थ संकेतात्मक परिभाषा के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता है बल्कि दर्द की वास्तविक स्थितियों में स्थापित किया जाता है । इसका अर्थ व्यक्तियों और दर्द की स्वाभाविक अभिव्यक्तियों के संदर्भ में निर्धारित होता है ।

संवेदन शब्द संवेदनों की स्वाभाविक अभिव्यक्तियों के साथ सम्बद्ध होते हैं । "मुझे दर्द है " यह मेरे व्यक्तिगत संवेदनों से नहीं,बल्कि मेरे दर्द के व्यवहार से सम्बद्ध है जो सार्वजनिक रूप से दृश्य है । यदि दर्द का अर्थ व्यक्तिगत संवेदन माना जाय तो वह बच्चा जो दर्द की प्रथम अनुभूति करता है,इसके अर्थ को नहीं जान सकता है । अतः ज्ञानमीमांसीय दृष्टिकोण से दर्द का व्यवहार अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु दर्द मेरे दर्द के व्यवहार का वर्णन नहीं करता । जैसे— चिल्लाना,आँहे भरना इत्यादि । जब मैं दर्द का इलाज कराना चाहता हूँ तो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अपने दर्द के व्यवहार का अन्त करना चाहता हूँ । मेरे दर्द का उपचार हो जाने के बाद चीख, चिल्लाहट और आह भरने इत्यादि का अन्त तो दर्द समाप्ति के फलस्वरूप होता है । दूसरे शब्दों में दर्द के उपचार के फलस्वरूप तत्सम्बन्धी व्यवहार का अन्त फोकट का माल है । संवेदनों के लिए व्यवहार के स्थान पर वक्ता शब्दों का प्रयोग करता है । यह संवेदनों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । "मैं कष्ट में हूँ " इस कथन में न तो "मैं" और न ही "कष्ट" कोई चीज अभिव्यक्त करते हैं । यह वाक्य केवल कष्ट के व्यवहार को अभिव्यक्त करता है ।

विटगेन्सटाइन के अनुसार दूसरे व्यक्तियों के दर्द के सम्बन्ध में उनका व्यवहार ही कसौटी है । किन्तु किसी व्यक्ति का वास्तव में "कष्ट में होना" और "कष्ट के व्यवहार" का प्रदर्शन समतुल्य नहीं है । क्योंकि कभी-कभी वास्तव में दर्द के होने पर उसे छिपाया भी जा सकता है और कभी-कभी दर्द के न होने पर भी दर्द के होने का झूठा व्यवहार किया जा सकता है । अतः अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का व्यवहार उसके दर्द में होने की कसौटी तभी हो सकता है,यदि वह युक्ति संगत दर्द की स्थिति में हो । जैसे- दुर्घटनाग्रस्त होने के फलस्वरूप रक्तस्राव तथा चीख इत्यादि । यहाँ पर विटगेन्सटाइन का उद्देश्य इस तथ्य का निषेध करना नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति कष्ट में है तो उसे कष्ट का अनुभव अवश्य होना चाहिए । वह इस बात पर बल देता है कि किसी एक आन्तरिक प्रक्रिया (दर्द का संवेदन) को बाह्य प्रतिमानों की आवश्यकता होती है ।[9] किन्तु ऐसी

परिस्थितियों की सूची नहीं प्रस्तुत की जा सकती, जिसके आधार पर हमें इस बात का प्रागनुभविक ज्ञान हो कि कष्ट और तत्सम्बन्धी व्यवहार की स्थिति स्पष्ट है अथवा नहीं । किन्तु इसका अर्थ न तो निराशावाद है और न ही संशयवाद । वास्तविक जीवन में ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं, जिनमें कष्ट के व्यवहार को प्रदर्शित करने वाला व्यक्ति वस्तुतः कष्ट में होता है । उस पर संशय करने का प्रश्न ही नहीं उठता । यदि घायल अवस्था में किसी व्यक्ति के रक्तस्राव होने, चीखने, चिल्लाने के व्यवहार को देखकर उसकी वास्तविक दर्द की अनुभूति के सम्बन्ध में संशय की बात की जाय तो यह संशय नहीं है बल्कि यह संशय की एक कोरी कल्पना मात्र है । इस प्रकार संशय की कल्पना और वास्तविक संशय में अन्तर समझ लेने पर संशयवाद निरस्त हो जाता है । कोई व्यक्ति वस्तुतः दर्द में है अथवा केवल दर्द होने का बहाना कर रहा है, इसका निर्धारण संदर्भों के द्वारा ही हो सकता है ।

व्यक्तिगत भाषा से सम्बन्धित युक्ति फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स में सेक्सन नं० 243 से शुरू होती है । व्यक्तिगत भाषा से सम्बन्धित युक्तियाँ संवेदन भाषा से सम्बन्धित समस्याओं का निरूपण करती हैं । क्रिपके के अनुसार व्यक्तिगत भाषा युक्ति का वास्तविक स्वरूप उक्त सेक्सन नं० 243 के पूर्ववर्ती सेक्सनों में पाया जाता है । वह फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के सेक्सन नं० 202 में स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष का कथन करता है "इस कारणकिसी नियम का पालन "व्यक्तिगत रूप " से संभव नहीं है अन्यथा किसी व्यक्ति का यह सोचना कि वह नियम का पालन कर रहा है, इस (नियम) के (वास्तव में) पालन करने जैसा होगा ।" व्यक्तिगत भाषा-युक्ति जिस रूप में संवेदनों पर लागू की गयी है वह वस्तुतः पहले विचारित भाषा के बारे में सामान्य मान्यताओं से सम्बन्धित एक विशेष बात है ।

क्रिपके के अनुसार व्यक्तिगत भाषा के सम्बन्ध में विटगेन्सटाइन नियम के संप्रत्यय के सम्बन्ध में एक संशयात्मक विरोधाभास प्रस्तुत करता है । ह्यूम की पदावली में कहें तो यह व्यक्तिगत भाषा की समस्या का एक संशयात्मक समाधान है । विटगेन्सटाइन की तत्सम्बन्धी समस्या से सम्बन्धित मौलिक प्रयास क्रिपके को बहुत महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता ।[10]

विटगेन्सटाइन कहता है -- यह हमारा विरोधाभास था -- " एक नियम के द्वारा कोई भी कार्यविधि निर्धारित नहीं की जा सकती है, क्योंकि प्रत्येक कार्यविधि नियम के संगत रूप में ही सफल होती है " ।[11] इस सेक्शन में निहित विरोधाभास फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेशन्स की एक प्रमुख समस्या है । यह दार्शनिक संशयवाद का एक नया आकार है । उदाहरण के लिए मान लीजिए 68 + 57 का योग कितना है ? किसी व्यक्ति ने इसका परीक्षण नहीं किया है । उक्त व्यक्ति ने शान्ति पूर्वक अपने मन में 68 + 57 के योग की क्रिया सम्पन्न किया है । उसके सार्वजनिक रूप से निरीक्षणीय व्यवहार में केवल सीमित रूप से भूतकाल में बहुत से जोड़ का ऐसा उदाहरण था । वास्तव में यही सीमितता इस बात की गारण्टी देती है कि एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें समस्त पूर्ववर्ती संगणनाओं का अतिक्रमण हुआ है । उक्त व्यक्ति संगणना सम्पन्न करने के बाद यह पाता है कि 68 + 57 = 125 । अपनी क्रियाविधि का परीक्षण करने के बाद वह व्यक्ति पूर्णतया आश्वस्त हो जाता है कि 68 + 57 का सही योग 125 है । यह अंक गणितीय और पर भाषा (Meta linguistic sense) दोनों अर्थों में सही है कि 68 + 57 = 125 तथा (+) , जैसा कि पर भाषा में भूतकाल में इसका प्रयोग करने का उक्त व्यक्ति इरादा रखता है,एक व्यापार को निर्दिष्ट करता है । जबकि इसका प्रयोग 68 और 57 संख्याओं के लिए किया जाता है,जिनका योग 125 होता है । संशयवादी दावा कर सकता है कि संगणना करने वाला व्यक्ति अपने पूर्ववर्ती प्रयोग की गलत व्याख्या कर रहा है । धन (+) शब्द का संगणक ने हमेशा धन अर्थ किया ।

फ्रेगे द्वारा प्रस्तुत किसी व्यक्ति के द्वारा धन शब्द के प्रयोग का विश्लेषण निम्नलिखित चार तत्व रखता है ।

(क) योग-व्यापार, अर्थात् एक वस्तुनिष्ठ गणितीय सत्ता ।

(ख) योग-चिन्ह " + " , जो एक भाषायी इकाई है ।

(ग) इस चिन्ह का तात्पर्य, जो उस व्यापार के समान एक वस्तुनिष्ठ अमूर्त्त इकाई है ।

§घ§ व्यक्ति के मन में चिन्ह से सम्बद्ध विचार । प्रत्यय एक आत्मनिष्ठ मानसिक सत्ता है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत है और भिन्न2 आत्माओं में भिन्न-भिन्न होता है । इसके विपरीत तात्पर्य § Sense § उन सभी व्यक्तियों के लिए समान होता है, जो " +-" का प्रयोग एक मानक के रूप में करते हैं । इस प्रकार का प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में उपर्युक्त प्रत्यय के द्वारा तात्पर्य को ग्रहण करता है । इसके बदले में तात्पर्य योग-व्यापार को निर्धारित करता है, जो धन चिन्ह को सन्दर्भित करता है । क्रिपके के अनुसार तात्पर्य और इसके द्वारा निर्धारित किये जाने वाले निर्देशक के बीच सम्बन्ध से सम्बन्धित कोई विशेष समस्या नहीं है । निर्देशक के स्वरूप को निर्धारित करना, तात्पर्य के स्वरूप में ही निहित है किन्तु संशयात्मक समस्या का निरास नहीं हो पाता है । यह समस्या इस प्रश्न में उठती है कि मेरे मन में किसी मानसिक सत्ता का अस्तित्व किस प्रकार दूसरे की अपेक्षा किसी विशेष तात्पर्य के ग्रहण को संरचित कर सकती है । मेरे मस्तिष्क में निहित प्रत्यय एक सीमित विषय है । क्या इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि यह धन व्यापार की अपेक्षा quus व्यापार को निर्धारित करती है । वस्तुत: ऐसी कल्पना की जा सकती है कि मेरे मन में एक दूसरा विचार हो सकता है, जो प्रथम विचार के लिए एक विशेष व्याख्या देने की क्रिया का निर्माण कर सकता है । किन्तु यह समस्या का हल नहीं है, बल्कि समस्या को पुन: एक नये स्तर पर उठाता है । क्रिपके कहता है कि विटगेन्सटाइन के लिए प्लेटोवादी विचारधारा इस समस्या के लिए सहायक नहीं है कि हमारे सीमित मन कैसे अनन्त स्थितियों के लिए नियम प्रदान कर सकते हैं । प्लेटो के विषय या वस्तुएं अपनी व्याख्या स्वयं कर सकती हैं अथवा उनके लिए व्याख्या की कोई आवश्यकता ही न हो । किन्तु अन्ततोगत्वा कोई ऐसी मानसिक सत्ता अवश्य होनी चाहिए जो संशयात्मक समस्या को उत्पन्न करती है ।[12]

क्रिपके के अनुसार विटगेन्सटाइन ने एक नये आकार का संशयवाद प्रतिपादित किया है, जो अत्यन्त क्रान्तिकारी तथा दर्शन के क्षेत्र में मौलिक संशयात्मक समस्या का सूत्रपात करता है, जिसका उद्भव एक असाधारण मस्तिष्क वाले व्यक्ति § विटगेन्सटाइन§

में ही हो सकता है । समस्या को दूसरों के लिए खुली छोड़ने के बजाय विटगेन्सटाइन स्वयं समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है —— संशयात्मक निर्णय असह्य और अनुचित हैं । उसका समाधान व्यक्तिगत भाषा के विरूद्ध युक्ति प्रस्तुत करता है । उसका समाधान व्यक्तिगत भाषा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है । मुख्य समस्या यह नहीं है कि हम व्यक्तिगत भाषा को कैसे प्रदर्शित कर सकते हैं अथवा भाषा का कुछ दूसरा विशेष आकार किस प्रकार असंभव है । बल्कि समस्या यह है —— हम कैसे यह दिखा सकते हैं कि कोई भाषा (व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक) संभव हो सकती है ।[13]

विटगेन्सटाइन और ह्यूम के संशयवाद एक-दूसरे से तुलनीय हैं, क्योंकि दोनों ही एक संशयात्मक विरोधाभास को विकसित करते हैं, जो भूतकाल से भविष्यत् काल के संदर्भ में कुछ प्रश्नों पर आधारित है । विटगेन्सटाइन की समस्या भूतकालीन अभिप्राय (Intention) अथवा अर्थ और वर्तमान अभ्यास के सम्बन्ध से सम्बन्धित है । उदाहरण के लिए 68 +- 57 = 125 के विषय में मेरा वर्तमान अभिकलन और " +-" के सम्बन्ध में मेरे भूतकालीन अर्थ के बीच सम्बन्ध को लिया जा सकता है । ह्यूम की समस्या कारणता से सम्बन्धित है जिसमें एक अतीत कालीन घटना अनागत के लिए अनिवार्य मानी जाती है । ह्यूम की समस्या भूतकालीन घटना और भविष्यकालीन घटना के बीच सम्बन्धों को लेकर है । आगमनात्मक अनुमान भूतकाल से भविष्यत् काल की ओर परिवर्तित होता है किन्तु विटगेन्सटाइन और ह्यूम का सादृश्य कुछ कारणों से अस्पष्ट प्रतीत होता है । वस्तुतः ह्यूम और विटगेन्सटाइन की समस्यायें एक-दूसरे से भिन्न और स्वतन्त्र हैं । विटगेन्सटाइन ह्यूम के प्रति कोई विशेष सहानुभूति नहीं रखता है । कार्ल ब्रिटन (Karl Britton) के अनुसार विटगेन्सटाइन कहता था कि वह ह्यूम को नहीं पढ़ सकता । क्योंकि उसे पढ़ना विटगेन्सटाइन ने कष्टप्रद पाया [14]। इसके अतिरिक्त ह्यूम का दर्शन कुछ ऐसे विचारों का स्रोत है जो मानसिक स्थितियों के स्वरूप से सम्बन्धित है, जिसकी विटगेन्सटाइन ने कटु आलोचना किया है । इसके साथ ही साथ दर्शन जगत् में ह्यूम अपने संशयवाद के लिए विख्यात है । किन्तु विटगेन्सटाइन के दर्शन पर किसी

भी प्रकार का संशयवादी लेबल नहीं लगा है । विटगेन्सटाइन अन्ततोगत्वा साधारण भाषा दार्शनिक के रूप में प्रकट होता है जो हमारे साधारण संप्रत्ययों की सुरक्षा के लिए चिन्तित है । वह परम्परागत दार्शनिक संशयों का उच्छेद करना चाहता था । उसने साधारण संप्रत्ययों के संरक्षण के लिए यह उद्घोष किया कि दर्शनशास्त्र केवल वही कहता है, जो प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता है ।

किन्तु क्रिपके के अनुसार विटगेन्सटाइन और ह्यूम को एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत और भिन्न बताना अतिशयोक्ति है । विटगेन्सटाइन द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत भाषा के विरूद्ध युक्ति का ढाँचा ह्यूम के द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत भाषा के सदृश है । ह्यूम के समान वह अपनी संशयात्मक युक्ति को स्वीकार करता है और विरोधाभास पर विजय प्राप्त करने के लिए एक संशयात्मक समाधान प्रस्तुत करता है । उसका समाधान एक संशयात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है जो साधारण स्वीकारात्मक वाक्यों,जैसे — जोड़ योग का अर्थ धन के द्वारा करता है । व्यक्तिगत भाषा की असंभावना उसके अपने विरोधाभास के संशयात्मक समाधान की एक उपप्रमेय (Corollary) जैसा प्रकट होता है । ह्यूम ने भी इसी प्रकार व्यक्तिगत कारणता को असंभव बताया ।[15] क्रिपके की दृष्टि में विटगेन्सटाइन समस्या का सीधा और स्पष्ट समाधान प्रस्तुत नहीं करता है । वह संशयवादियों की समस्या की उपेक्षा करता है ।

जाको हिनटिक्का के अनुसार यदि हम आन्तरिक अनुभव की अपनी भाषा को व्यक्तिगत (Private) परिभाषाओं और व्यक्तिगत प्रतिमानों पर आधारित करें तो विटगेन्सटाइन की दृष्टि में स्पष्ट रूप से हम ज्ञान मीमांसीय समस्याओं से सम्बन्धित हो जाएंगे । इस संदर्भ में हिनटिक्का ने विटगेन्सटाइन के फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स से उदाहरण उद्धृत किया है — " तब बहुत अच्छी तरह से यह हो सकता था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सन्दूक में भिन्न चीजें रखता । कोई यह कल्पना कर सकता था कि इस प्रकार वस्तु शाश्वत रूप से परिवर्तित हो रही है"।[16] एक व्यक्ति की व्यक्तिगत अनुभूतियां दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती हैं । विटगेन्सटाइन

के अनुसार एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना की जा सकती है, जिसकी स्मृति में दर्द शब्द का क्या अर्थ होता है, सुरक्षित नहीं रह सकती । ताकि वह उस नाम से विभिन्न वस्तुओं को लगातार पुकारता है, तथापि उस शब्द का प्रयोग इस तरह करता है, जिसमें कष्ट के सामान्य हाव-भाव और पूर्वमान्यताएं उपयुक्त बैठती हैं । संक्षेप में, इसका प्रयोग उसी तरह करता है, जैसे कि हम सब लोग करते हैं । पुनः किसी व्यक्ति के स्मृति ज्ञान का प्रमाणीकरण करने की ज्ञानमीमांसीय समस्या का उल्लेख विटगेन्सटाइन फिलॉसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के सेक्सन 265 में करता है । हिनटिक्का के अनुसार, फिर भी विटगेन्सटाइन की समस्या अर्थ विज्ञान से सम्बन्धित है, न कि ज्ञानमीमांसा से । इस सन्दर्भ में हिनटिक्का का कहना है कि, यह संभावना कि व्यक्तिगत वस्तु परिवर्तित हो सकती है ; विटगेन्सटाइन के द्वारा ऐसा इरादा रखना एक अर्थ-विज्ञान सम्बन्धी वैचारिक प्रयोग जैसा है न कि वास्तविक ज्ञानमीमांसीय कठिनाई । इस मान्यता को विटगेन्सटाइन स्वीकार भी करता है । विटगेन्सटाइन कहता है --- इस तरीके से व्यक्तिगत वस्तु के प्रत्यय से हमेशा छुटकारा प्राप्त करिये और ऐसा मानो कि यह शाश्वत रूप से परिवर्तित होती है किन्तु तुम उस परिवर्तन को समझते नहीं हो, क्योंकि तुम्हारी स्मृति तुम्हें निरन्तर धोखा देती है ।[17] अर्थात् विटगेन्सटाइन का मुख्य मन्तव्य यह नहीं है कि मैं यह याद नहीं रख सकता हूँ कि मेरा व्यक्तिगत अनुभव किस तरह का था । किन्तु याद करने का यह कार्य भाषा-खेल में संचालित नहीं हो सकता, जो मेरे व्यक्तिगत अनुभव को इसके नाम से जोड़ सके । वह ज्ञान मीमांसीय समस्या, जिसे विटगेन्सटाइन उठाता है; केवल जीवन के अर्थ विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों को नाटकीय रूप देनेकेलियेएक प्रतिपादय साधन है ।[18] यदि विटगेन्सटाइन की समस्या को संशयवादी संदेहों के ऐसे पदों में स्थापित किया जाता है , जो मानसिक अभेदीकरण से सम्बन्धित हैं तो विटगेन्सटाइन के द्वारा मान्य सार्वजनिक प्रतिमान का जो परिचय प्राप्त होता है, वह यह नहीं है कि संशयवादियों के संशय दूर हो जाते हैं बल्कि संशयवादियों के संशय निरर्थक सिद्ध हो जाते हैं ।[19] इस प्रकार विटगेन्सटाइन के वैचारिक प्रयोग त्रुटिपूर्ण संवेदनों की भ्रामकता पर बल देने के लिए आकलित नहीं किये जाते, तथा न तो उनके वर्णन और प्रत्यक्षीकरण में

कोई कठिनाई ही होती है । हिनटिक्का ने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विटगेन्सटाइन की कृतियों में उपलब्ध व्यक्तिगत अनुभव की ज्ञानमीमांसीय आलोचनाएं बहुत ही कम हैं और जो हैं भी, वे प्रतिपाद्य साधन स्वरूप मात्र हैं । महत्वपूर्ण ज्ञानमीमांसीय संप्रत्यय जैसे – ज्ञान, भ्रम, सत्य, विश्वास, निश्चयता, सत्यापन इत्यादि उसके प्रारम्भिक भाषा-खेलों में लागू नहीं होते हैं । इससे सिद्ध होता है कि विटगेन्सटाइन द्वारा प्रस्तुत व्यक्तिगत अनुभवों के ज्ञान की निश्चयता के विषय में संदेह का पूर्णतया शाब्दिक अर्थ ग्रहण करना स्वयं विटगेन्सटाइन को अभिप्रेत नहीं था । स्वयं उसने यह माना है कि व्यक्तिगत अनुभवों के सम्बन्ध में इस प्रकार संशय अर्थहीन हैं । इस प्रकार के संशय केवल यह सिद्ध करते हैं कि भाषा-सम्बन्धी नियम पालन के लिए एक सार्वजनिक ढांचा (Public framework) होना चाहिए । इस सम्बन्ध में क्रिपके की भी मान्यता है कि भाषा-सम्बन्धी नियम पालन के लिए सार्वजनिक सहमति होनी चाहिए, किन्तु इस मान्यता के विपरीत बेकर और हेकर का मत है कि भाषा सम्बन्धी नियम पालन हेतु सार्वजनिक सहमति का उतना महत्व नहीं है, जितना कि नियमों के अभ्यास का ।

विटगेन्सटाइन के अनुसार संवेदनों की जिस भाषा का हम प्रयोग करते हैं वह सार्वजनिक भाषा-खेल पर आधारित होती है । क्या सार्वजनिक ढांचे की आवश्यकता से यह आपादित होता है कि स्वतः ये अनुभव व्यक्तिगत नहीं हैं । इस मान्यता का समर्थन अनेक दार्शनिकों ने किया । उदाहरण के लिए —जी०ई० एम० एन्सकोम्ब लिखती हैं —– " यदि एक शब्द किसी व्यक्तिगत वस्तु का संकेत करता है तो इसकी व्यक्तिगत संकेतात्मक परिभाषा अवश्य होनी चाहिए ।[20] चूँकि व्यक्तिगत संकेतात्मक परिभाषाएं असंभव हैं अतः इस मान्यतानुसार कोई व्यक्तिगत वस्तु नहीं हो सकती । विटगेन्सटाइन के अनुसार वस्तुतः हम भाषा में यह नहीं कह सकते हैं कि संवेदनाएं व्यक्तिगत हैं किन्तु यह विटगेन्सटाइन की समस्या नहीं है । यह अर्थ विज्ञान सम्बन्धी (Semantics) अकथनीयता का एक परिणाम है । प्रश्न यह उठता है कि क्या कुछ दार्शनिकों का यह कहना सही है कि विटगेन्सटाइन के अनुसार कोई भी व्यक्तिगत अनुभव नहीं है ? नहीं ; इस

मान्यता का प्रतिवाद फिलाँसाफिकल इन्वेस्टीगेसन्स के सेक्सन 272 से विदित होता है । हिनटिक्का ने इस सेक्सन को उद्धृत किया है । —— " व्यक्तिगत अनुभव के बारे में महत्वपूर्ण बात वास्तव में यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना निजी उदाहरण रखता है किन्तु कोई व्यक्ति नहीं जानता है कि दूसरे लोग भी इसे अथवा इसके अतिरिक्त कोई दूसरी चीज रखते हैं, - - - - - - - - - - कि मनुष्यों का एक वर्ग" लाल" का एक संवेदन रखता, दूसरा वर्ग दूसरा संवेदन ।[21] इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि विटगेन्सटाइन व्यक्तिगत अनुभूति को वस्तुतः एक वास्तविक घटना और व्यक्तिगत मानता है । इस सन्दर्भ में हिनटिक्का की मान्यता यह है कि विटगेन्सटाइन का भाषा-सम्बन्धी सामान्य दर्शन यह नहीं है कि व्यक्तिगत वस्तुएं नहीं हैं अथवा यह कि हम इस प्रकार की वस्तुओं के विषय में कुछ बोल नहीं सकते हैं । विटगेन्सटाइन की मान्यताएं यह सिद्ध करती हैं कि हम व्यक्तिगत अनुभवों को संज्ञा प्रदान करने के लिए भाषा का प्रयोग कर सकते हैं । उनका वर्णन इत्यादि केवल सार्वजनिक ढांचे के द्वारा ही कर सकते हैं । किन्तु इस ढांचे के सार्वजनिक स्वरूप से यह सिद्ध नहीं होता है कि अनुभूतियां स्वतः पूर्ण रूप से वैयक्तिक नहीं हैं । वास्तव में विटगेन्सटाइन के अनुसार इसे भाषा में नहीं कहा जा सकता । अतः इन विवरणों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि विटगेन्सटाइन पूर्णतया वैयक्तिक अनु-भूतियों को नहीं मानता है । सम्पूर्ण समस्या का केन्द्र बिन्दु यह है कि ऐसी नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों के विषय में हम कैसे बात करें । संवेदनाएं — जैसे- कष्ट, दर्द इत्यादि वैयक्तिक संकेतात्मक परिभाषाओं (Ostensive Definitions) को स्वीकार नहीं करते हैं किन्तु ढांचे के सार्वजनिक स्वरूप से यह सिद्ध नहीं होता कि अनुभूतियां स्वतः सार्वजनिक हैं अथवा वे सार्वजनिक भाषा-खेल में किसी भूमिका का निर्वाह नहीं करती हैं ।[22]

अर्थ और समझ का स्वरूप —— अर्थ का संप्रत्यय बहुत जटिल और बहुआयामी है । यह विभिन्न सन्दर्भों में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है तथा दूसरे अन्य संप्रत्ययों से भी जुड़ा है । इसका सम्बन्ध महत्व (Significance) के संप्रत्यय से है । जैसे — जब हम नैतिक अर्थ अथवा जीवन के अर्थ के विषय में बात करते हैं

और जब हम बादलों का अर्थ वर्षा से लगाते हैं । यह अभिप्राय के प्रत्यय से भी जुड़ा है, किन्तु इस अध्याय में हमारा सम्बन्ध भाषा-विषयक अर्थ के संप्रत्यय से है । शब्द का अर्थ उसके निर्देश से, उसके द्वारा व्यक्त प्रत्यय से, इसके प्रयोग के लिए प्रस्तुत आधारभूमियों से, इसके प्रयोग के प्रमाणीकरण और आलोचना से, इसकी परिभाषाओं अथवा व्याख्याओं से और इसके प्रयोग से जो कुछ समझा अथवा सम्प्रेषित किया जाता है से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है । इसी प्रकार एक वाक्य का अर्थ सत्यता और असत्यता के सम्प्रत्यय से, युक्ति और प्रमाण से, निश्चयता और प्राधिकता से, अनिवार्यता और संभावना से, विश्वास और दूसरे तर्कवाक्यात्मक दृष्टिकोणों से, स्पीच एक्ट्स और स्वीकृति ﴾ Assertion ﴿ से, व्याख्या, संप्रेषण, समझ इत्यादि से सम्बन्धित है । अर्थ की दार्शनिक गवेषणा का लक्ष्य अव्यवस्था और जटिलता में एक व्यवस्था को व्यक्त करने के लिए किया जाता है अर्थात् अर्थ के संप्रत्यय के विभिन्न प्रयोगों का सर्वेक्षण और संगठन करने के लिए, किया जाता है । अर्थ के विश्लेषण का उद्देश्य यह भी है कि इसके द्वारा अर्थ और दूसरे संप्रत्ययों जैसे - सत्य, निर्देश, प्रमाण, व्याख्या, संप्रेषण इत्यादि के महत्वपूर्ण आन्तरिक सम्बन्धों की जटिलता का हल दिया जाय । प्रारम्भ से ही अर्थ से सम्बन्धित दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ प्रारम्भिक संप्रत्ययों से सम्बन्धित रहा है । ये अर्थ-सिद्धान्त के अन्वेषण के लिए प्रस्थान-बिन्दु का काम करते हैं । आगस्टाइन का भाषा का चित्र ऐसा है, जिसका तादात्म्य विटगेन्सटाइन मूल चित्र से करता है तथा इसके अन्तर्गत अर्थ के महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धान्तों का विवेचन करता है । उसके चिन्तन की आधारशिला यह है कि शब्द नाम हैं । अर्थ शब्दों का वस्तुओं से सम्बन्ध व्यक्त करता है । आगस्टाइन का मूल चित्र अर्थ के समस्त प्रतिमान स्वरूप आधुनिक सिद्धान्तों की सूचना देता है । यद्यपि उन सिद्धान्तों में कोई चीज सामान्य रूप में प्रतीत नहीं होती है जैसे - कारणता के सिद्धान्त, बिम्बवाद, वक्ता के अभिप्रायों के द्वारा अर्थ की गणना करना और सत्यापन सिद्धान्त इत्यादि ।

फ्रेगे की उपलब्धि यह थी कि उसने आगस्टाइन के मूल चित्र से सुसंगत रूप में अर्थ के पूर्ण विश्लेषण की संरचना की संभावनाओं को विकसित किया । प्रथमतः

उसने अर्थ को निर्देश से भिन्न किया । उसने वस्तुओं और शब्दों के सह सम्बन्धों को निरूपित किया और इसके द्वारा तद्विषयक महत्वपूर्ण समस्याओं का हल प्रदान किया । द्वितीयतः वाक्यों के आकारों का सावधानी के साथ विश्लेषण करके उसने इस विचार को अधिक सुसंगत बनाया कि वाक्य का अर्थ उसके शब्दों के अर्थों से बना है । वाक्य स्वयं शब्दों से बना है । फ्रेगे के योगदान ने अर्थ-विषयक गवेषणा को बहुत ही अधिक प्रभावित किया ।[23]

विटगेन्सटाइन के द्वारा आगस्टाइन के भाषा-विषयक सिद्धान्त की पूर्ण आलोचना, अर्थ के दार्शनिक विवेचन के लिए परम्परागत मान्यताओं का परित्याग कर देती है । आगस्टाइन के मूल-चित्र के सिद्धान्त का निदर्शन अपने मौलिक रूप में अर्थ के संप्रत्यय को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है । फिलॉसाफिकल इनवेस्टीगेसन्स में युक्तियों का प्रहार इसी का परिचायक है । विशेष रूप से विटगेन्सटाइन अर्थ के परम्परागत दृष्टिकोण के परिणामों की आलोचना करता है । प्रथमतः अर्थ और उससे सम्बन्धित संप्रत्ययों के बीच आन्तरिक सम्बन्धों, जो प्रायः सरलता से दूर हैं, शब्दों और वाक्यों दोनों की अनेक प्रकार की व्याख्याएं हैं । एक सही व्याख्या इसको व्यक्त तो करती है किन्तु इसके समझ की गारण्टी नहीं देती और न ही शब्द अथवा वाक्य के सही प्रयोग करने के लिए पर्याप्त शर्तों का ही निर्माण करती है । इसी प्रकार वाक्य का सत्यापन कैसे किया जाय, इसका वर्णन करना, बहुत सी स्थितियों में इसके व्याकरण के लिए एक योगदान है ।[24] यद्यपि दूसरी स्थितियों में ऐसी कोई चीज नहीं है जो एक कथन को सत्यापित करे अथवा उसके लिए कोई आधारभूमि प्रस्तुत करे ।[25] इस प्रकार के आन्तर सम्बन्धों का उचित संप्रत्यय यह प्रदर्शित करता है कि वे जटिल हैं, एक स्थिति से दूसरी स्थिति में वे भिन्न-भिन्न होते हैं और परिस्थिति सापेक्ष हैं ।

द्वितीयतः अर्थ विज्ञान की विशेषताओं और अर्थ विज्ञान तथा वाक्य आकार के मध्य का अलगाव दोषपूर्ण है । यहाँ तक कि प्रत्यक्षगत परिभाषा (Ostensive Definition) शब्दों को अर्थों से सम्बन्धित करने वाली नहीं सोची जानी चाहिए ।

कोई व्याख्या किसी चीज का विवेचन केवल भाषा के अन्तर्गत ही करती है । यह अर्थगत तत्व को वाक्य आकार और अर्थक्रियता से भिन्न करने का बौद्धिक आधार है । विशेषतया स्वीकारात्मक (Assertions) वाक्यों को सत्यता मूल्य प्रदान करना, वाक्यों के प्रयोग के लिए अनेक पद्धतियों के मध्य केवल एक रास्ता मात्र है और दूसरे समान रूप से समझ को अथवा प्रयोग किये गये वाक्यों की समझ का अभाव अभिव्यक्त करते हैं । इसी प्रकार हाव-भाव, उदाहरण, संदर्भगत लक्षण, अर्थ की व्याख्या में एक महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं अथवा भाषा के प्रयोग में उनका महत्वपूर्ण व्यापार होता है । अतः अर्थ की विशेषता में वे महत्वपूर्ण तत्व हैं । अर्थ विज्ञान से सम्बन्धित यह प्रत्यय अर्थ संप्रत्यय के दार्शनिक स्पष्टीकरण के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है । यदि इन आलोचनात्मक युक्तियों को अकाट्य माना जाय तो हमें अर्थ के सम्बन्ध में की गयी परम्परागत व्याख्याओं से पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए । अब प्रश्न यह उठता है कि अर्थ के विषय में जो नवीन चिन्तन विकसित हुआ है,उस विषय में विटगेन्सटाइन ने कौन सा विध्यात्मक मार्गदर्शन प्रस्तुत किया । अर्थ की उचित गवेषणा के लिए मूल कुंजी क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर इस बात में निहित है कि समझ और व्याख्या के संप्रत्यय क्या हैं ? विटगेन्सटाइन अर्थ और समझ के परम्परागत दृष्टिकोण का प्रतिवाद करता है । आगस्टाइन का भाषा-विषयक चित्र समझ की गणना,व्याख्या और यह विचार कि अर्थ शब्दों का वस्तुओं के साथ सम्बन्ध, से सम्बन्धित है, को अपने अनुकूल बना लेता है । इस प्रक्रिया के विपरीत इसकी खोज करना आवश्यक है कि किसी कथन को समझना किसे कहते हैं ? इसकी व्याख्या क्या है ? और सम्प्रेषण में क्या निहित होता है ? अर्थ का संप्रत्यय इन मान्यताओं के अनुसार निरूपित किया जाना चाहिए । समझ के उपर्युक्त मानदण्डों का स्पष्टीकरण आगस्टाइन के भाषा के चित्र-सिद्धान्त के द्वारा दार्शनिक समस्याओं के किये गये समाधान को विगलित कर देता है । इसके परिणामस्वरूप अर्थ के संप्रत्यय की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । इस सम्बन्ध में विटगेन्सटाइन का दार्शनिक परम्पराओं से विच्छेद कितना क्रान्तिकारी है इसका अनुमान अर्थ के परम्परागत सिद्धान्तों में अव्यक्त रूप में निहित समझ के

संप्रत्यय और विटगेन्सटाइन की समझ की अपनी निजी कसौटियों की गणना के पारस्परिक विरोध से व्यक्त होता है ।[26] अर्थ के विभिन्न सिद्धान्तों का गम्भीर अनुशीलन फ्रेगे, रसेल और ट्रैक्टेटस में हुआ है । इसका सम्बन्ध प्लेटो से भी दिखाया गया है ।

प्लेटो का सर्वोत्तम डाइलाग उन वाद-विवादों से सम्बन्धित प्रश्नों में निहित है जो न्याय इत्यादि की परिभाषा से सम्बन्धित हैं । ये डाइलाग सुकरात की प्रश्नोत्तर पद्धति की प्रक्रिया के द्वारा प्रवर्तित होते हैं और समस्याओं के अनुमानित समाधानों के विरूद्ध आक्षेप प्रस्तुत करते हैं । प्लेटो में अर्थ, व्याख्या और समझ के संप्रत्यय अस्पष्ट होते हुए भी प्रभावशाली हैं । सुकरात से सम्बन्धित डाइलागों में प्लेटो ने समझ की निषेधात्मक विशेषताएं प्रदान की हैं । जो समभाषी लोग सद्गुण, न्याय, दया इत्यादि की सन्तोषजनक सामान्य परिभाषा देने में असमर्थ हैं वे इन पदों को नहीं समझ पाते हैं अथवा सद्गुण, न्याय और दया क्या है, इसे नहीं जानते हैं । सुकरात का मूल सन्देश यह था कि इन महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित लोगों के अज्ञान को दूर किया जाय । उसकी पद्धति यह थी कि किसी भी शब्द को परिभाषित करने की असमर्थता इस बात का प्रमाण है कि हम इसे समझने में विफल हैं । विटगेन्सटाइन ने इस युक्ति को प्लेटो की पद्धति कहा है[27] और वह इसे दोषपूर्ण कहकर इसकी आलोचना करता है ।[28] प्लेटो समझ के प्रतिमान की गलत व्याख्या करता है । उसका यह कहना ठीक नहीं है कि जो व्यक्ति किसी पद को परिभाषित नहीं कर सकता है, वह यह नहीं जानता है कि इसके प्रयोग में वह क्या कह रहा है । यह कहना दोषपूर्ण है कि किसी शब्द को समझने के लिए परिभाषा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमान हैं । ये दोष प्लेटो के समझ के संप्रत्यय के मिथ्या वर्णन या विकृत रूप को व्यक्त करते हैं । सुकरात का परिभाषा से सम्बन्धित शोध स्पष्टतया विवादास्पद अभिव्यक्तियों के प्रयोगों को लागू करने के लिए ठीक प्रतिमान की स्थापना करने की आकांक्षा से प्रेरित है । प्लेटो के आकार इस भूमिका को पूर्ण करते हैं । उदाहरण के लिए न्याय का आकार क्या न्यायोचित है, को निर्धारित करने का मानदण्ड है । इसकी ओर देखकर अथवा

इसका प्रयोग करके हम साधिकार यह निर्धारित कर सकते हैं कि विशेष-विशेष कर्म न्यायोचित हैं । यद्यपि आकार अतीन्द्रिय अमूर्त्त सत्ताएं हैं किन्तु वे शब्दों का प्रयोग करने के लिये व्यापार रत प्रतिमानों,जैसे— नमूनों के सदृश हैं । यह तथ्य कि सुकरात के प्रश्नों का उत्तर आकारों के द्वारा दिया जाता है,स्वतः प्लेटो के समझ और व्याख्या के संप्रत्यय के महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रकाशित करता है । "लाल" को समझना, लालिमा के आकार से परिचय में निहित है । यह लालिमा के व्याख्या देने की योग्यता को व्यक्त करता है । लालिमा क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर "लाल" पद के ठीक-ठीक प्रयोग के लिए वस्तुनिष्ठ मानदण्ड से सम्बन्धित है । इसे इस बात का निर्धारण करना चाहिए कि कोई प्रयोग ठीक है अथवा नहीं । इसका निर्णायक व्यापार आदर्शमूलक है । इसे उक्त पद का किसी विषय के लिए प्रयोग करने के लिए अनिवार्य और पर्याप्त शर्तों को प्रदर्शित करना चाहिए ।

प्लेटो की पद्धति में निहित त्रुटियों की विशेषताओं के लिए वैकल्पिक पद्धति का सुझाव दिया गया है । प्लेटो को इस अन्तर्दृष्टि के लिए गौरव प्रदान किया जाना चाहिए कि किसी भी शब्द को समझने की प्रागपेक्षा इसकी व्याख्या करने की योग्यता है । किन्तु उसका दोष यह है कि उसने इसको तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया । किसी शब्द की व्याख्या करने के संप्रत्यय को बहुत सीमित या परिधिबद्ध कर दिया गया । प्लेटो द्वारा समझ को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करना व्याख्या की गलत अवधारणा का परिणाम है । प्लेटो की भूल यह मान्यता थी कि प्रत्येक वाक्य जो तथाकथित व्यापारों को सम्पादित करता है, को एक विशेष आकार रखना चाहिए । वस्तुतः प्लेटो के समझ और व्याख्या की गलत अवधारणा का मूल इस भ्रम में निहित है जो प्रत्ययों के आदर्शमूलक अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है कि — प्रत्येक नियम का एक निश्चित आकार(स्वरूप) अवश्य होना चाहिए ।[29] विटगेंस्टाइन के अनुसार प्लेटो की पद्धति प्रभावशाली होते हुए भी गलत समझी गयी । विटगेंस्टाइन इसके समझ, व्याख्या और नियमों की आदर्श मूलकता की गलत अवधारणा की आलोचना करता है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि तात्पर्य ﴾Sense ﴿ के संप्रत्यय के द्वारा फ्रेगे अर्थ को समझ से जोड़ता है । वस्तुतः उसके द्वारा की गयी तात्पर्य की व्याख्या और तात्पर्य का निर्देश ﴾Reference ﴿ से भेद ; समझ और दूसरी संज्ञा-नात्मक स्थितियों से सम्बन्धित समझे जाते हैं । उसने पाँच प्रकार की जटिल समस्याओं की ओर सुझाव दिया है । —

1- एक वाचक व्यक्तिवाचक ﴾ Singular refering Expression ﴿ नाम को संकेत करने वाली अभिव्यक्ति, जो किसी चीज का संकेत नहीं देती है, को समझना कैसे संभव है ?

2- सत्यता मूल्य से रहित वाक्य को समझना कैसे संभव है ?

3- ऐसे दो व्यक्तिवाचक नामों को, जिनमें से प्रत्येक एक ही वस्तु का संकेत करता है, बिना यह जाने हुए कि दोनों एक ही वस्तु के संकेत है, को समझना कैसे संभव है ?

4- ऐसे दो वाक्यों को, जिनमें से एक-दूसरे से निगमित होता है, यह बिना जाने हुए कि दोनों का सत्यता मूल्य समान हैं, को समझना कैसे संभव है ?

5- ऐसे दो वाक्यों को, जो वास्तव में सत्य हैं, यह बिना जाने हुए कि दोनों का सत्यता मूल्य समान है, को समझना कैसे संभव है ?

इनमें से प्रथम दो प्रश्नों का उत्तर इस संभावना पर आधारित है कि कोई अभिव्यक्ति निर्देश ﴾Reference ﴿ के बिना तात्पर्ययुक्त कैसे हो सकती है ? अन्तिम तीन प्रश्नों के उत्तर इस संभावना को व्यक्त करते हैं कि हम तात्पर्य ﴾Sense﴿ से निर्देश ﴾Reference ﴿ की ओर तथ्यों से होकर पहुँचते हैं । ये संभावनाएं व्यक्त करती हैं कि फ्रेगे का "तात्पर्य ﴾ Sense ﴿ अर्थ और समझ के बीच सम्बन्ध से सम्बन्धित है । फ्रेगे का अर्थ विषयक चिन्तन अफलातूनी पद्धति के प्रभाव को शिथिल कर देता है । क्योंकि सामान्य व्यक्ति और एक सुयोग्य गणितज्ञ की संख्या को सन्तोषजनक रूप से परिभाषित करने की अयोग्यता अथवा संख्या के संप्रत्यय को समझने की अक्षमता, संप्रत्ययों के समझ के अभाव के समतुल्य है, जो कि समस्त अंकगणित

के ढाँचे की आधारशिला हैं । पर्याप्त परिभाषाएं अंकगणितीय कथनों के प्रमाणीकरण हेतु आवश्यक हैं, यहाँ तक कि अंकगणित के विज्ञान की विषय वस्तु को पृथक् करने के लिए भी । दूसरे किसी शब्द का तात्पर्य (Sense) अफलातूनी आकार से साम्य रखता है । यह एक अमूर्त सत्ता (Entity) है, जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है ।[30] शब्द का अर्थ उस वस्तु (सत्ता) से सम्बन्धित करने के द्वारा दिया जाता है । इसका अर्थ इसका तात्पर्य (Sense) है अर्थात् वह सत्ता है । यह सत्ता इस बात को निर्धारित करती है कि शब्द का प्रयोग किस वस्तु के लिए ठीक-ठीक ढंग से किया जा सकता है तो यह एक परिभाषा में अभिव्यक्त किया जायेगा, जो इसके प्रयोग के लिए पूर्ण आधार प्रदान करता है । अर्थात् इसके ठीक-ठीक प्रयोग के लिए अनिवार्य और पर्याप्त शर्तों से सम्बन्धित है । अतः केवल इस प्रकार की परिभाषा किसी शब्द के तात्पर्य के पर्याप्त लक्षण का निर्माण करती है । किसी अभिव्यक्ति को समझना,इसके तात्पर्य को समझने से सम्बन्धित है और आपसी समझ उसी अतीन्द्रिय सत्ता के संयुक्त ग्रहण से सम्बद्ध है । शब्दों के तात्पर्य,उनके अनावृत तत्वमीमांसीय व्यापारों के आकार हैं अर्थात् जो उनके तत्वमीमांसीय व्यापारों को सुव्यक्त (प्रकाशित कर दें । किसी अभिव्यक्ति का तात्पर्य अमूर्त सत्ता है और समझ शब्दों का वस्तुओं से सम्बन्धम में निहित है, यह तथ्य फ्रेगे की अर्थ-विषयक मान्यता को अभिव्यक्त करता है जो आगस्टाइन के भाषा-विषयक सिद्धान्त का एक जटिल (Sophisticated) रूप है ।

फ्रेगे का तात्पर्य (Sense) सम्बन्धी विवरण समझ और व्याख्या तथा अभिव्यक्तियों के प्रयोग के प्रमाणीकरण के स्वरूप के संप्रत्ययों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है । किसी भी अभिव्यक्ति को परिभाषित करने की अक्षमता,उस अभिव्यक्ति को समझने की विफलता के लिए एक मानदण्ड के रूप में नहीं स्वीकार की जा सकती है । किसी अभिव्यक्ति के प्रयोग का प्रमाणीकरण,इसके प्रयोग की पर्याप्त दशाओं के लिए एक सामान्य नियम के रूप में आवश्यक नहीं है ।

फ्रेगे की समझ, व्याख्या और प्रमाणीकरण के प्रयोग के सम्बन्ध में गलत अवधारणाओं की भ्रामकता परस्पर सापेक्ष है अर्थात् प्रत्येक की गलत अवधारणा एक-

दूसरे को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने में सहायक है । फ्रेगे का अर्थ और समझ के संप्रत्यय का विश्लेषण किसी पद को समझने की Merkmal परिभाषा में स्वतः निहित नहीं है । फ्रेगे की समझ, व्याख्या और प्रयोग के प्रमाणीकरण के विषय में भ्रामक अवधारणाओं से प्रभावित होकर यह कहा जा सकता है कि फ्रेगे अपने तात्पर्य विश्लेषण में अर्थ को समझ से सम्बन्धित करने में सफल नहीं हुआ है । वस्तुतः समझ के संप्रत्यय की विकृत व्याख्यायें यह सिद्ध करती हैं कि उसने किसी भी अभिव्यक्त कथन की समझ क्या है । की उपेक्षा किया है । अपने अर्थ की गवेषणा में वह तात्पर्य (Sense) पर तो ध्यान देता है, किन्तु अर्थ को स्वयं उसके ऊपर छोड़ देता है अर्थात् वह तात्पर्य पर विशेष बल देता है किन्तु समझ कीउ उपेक्षा करता है या समझ को खुला छोड़ देता है । दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों की व्याख्याओं के समापन और निष्पादन के बीच अल्पकालिक अन्तराल (Short Shrift) होता है ।[31] वे पर्याप्त व्याख्या के लिए आवश्यक पूर्णता के पर्याप्त प्रतिमान को पूरा नहीं करते हैं ।[32] इसके परिणामस्वरूप फ्रेगे शब्दों के प्रयोग के प्रमाणीकरण में उनकी भूमिका की उपेक्षा करता है । वह शब्दों के प्रयोग के लिए अन्तिम आधार भूमियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है । यहाँ तक कि समझ के संप्रत्यय का स्पष्टीकरण भी शायद ही प्रस्तुत किया जाता है । उसके सम्बन्ध में यह सामान्य धारणा है कि तात्पर्य (Sense) रेफरेन्स को निर्धारित करता है । जैसा कि यह दावा किया जाता है कि किसी शब्द को समझना उसके रेफरेन्स को निर्धारित करने में निहित होता है । किन्तु फ्रेगे स्वयं इस सम्बन्ध में कोई टिप्पड़ी नहीं करता है । यधपि वहइस सिद्धान्त को- " वाक्य का तात्पर्य इसके घटकों के तात्पर्य से बनता है " को इस मान्यता से कि —— किसी वाक्य को समझना इसके घटक अवयवों और इसके ढाँचे को समझना है, से सम्बद्ध कर देता है ।

उसका अन्तिम उद्देश्य इस दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करना है कि समस्त अंकगणितीय सत्य विश्लेषात्मक होते हैं उसकी पद्धति संख्या शब्दों की वास्तविक व्याख्याओं अथवा अनुमान के नियमों का परीक्षण करना नहीं है प्रत्युत अंकगणित की

एक भाषा की पुर्नसंरचना करना है जो अपेक्षाकृत सुदृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठापित हो । फ्रेगे द्वारा प्रस्तुत अंकगणित में शब्दों और वाक्यों के तात्पर्य का विवरण सामान्य व्याख्याओं और अनुमान के नियमों को अपने संप्रत्यय लिपि (Concept script) के प्रतीकवाद में अभिव्यक्त आकलन के द्वारा स्थानान्तरित कर देता है ।[33] उदाहरण के लिए फ्रेगे के तात्पर्यबोध को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है । दो अभिव्यक्तियाँ यदि उनका रेफरेन्स एक ही हो तो उनका तात्पर्य भी समान होता है । संख्यायें वस्तुएं हैं, यह वाक्य " 473 " का तार्किक आकार इस वाक्य " स्मिथ जोन्स की अपेक्षा अधिक लम्बा है " के समान है । यह अपरोक्षतया स्पष्ट है कि $4 = 2^2$ का तात्पर्य $4 = 3 + 1$ के तात्पर्य से भिन्न है और इसी प्रकार 2^2 का तात्पर्य $2 + 2$ और 4 के तात्पर्य से भिन्न है । यह सिद्ध करता है कि अपरिभाष्य अभिव्यक्तियाँ अपनी अभिप्रेत व्याख्याओं से असम्बद्ध हैं । इस प्रकार फ्रेगे द्वारा प्रस्तुत तात्पर्य का विवरण यह स्पष्ट करता है कि वह अपरिभाष्यों का विवेचन करने में असफल हैं । प्रसंगवाद (Contextualism) के प्रति उसकी प्रतिबद्धता, उसकी परिभाषा-विषयक परिधिबद्धताएं, तादात्म्यक कथनों की महत्ता इत्यादि की विवेचना में भी वह पूर्णतया सफल नहीं है ।

रसेल के अनुसार किसी अपरिभाष्य अभिव्यक्ति को समझना, जिन वस्तुओं की ओर ये अभिव्यक्तियाँ संकेत करती हैं, के परिचय से सम्बन्धित है । परिभाष्य अभिव्यक्ति का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि कि इसके अर्थ की संरचना, दूसरी अभिव्यक्तियों के अर्थों से किस प्रकार की जाती है । किसी वाक्य का पूर्ण विश्लेषण परमाणविक वाक्यों में किया जाता है । प्रत्येक परमाणविक तर्कवाक्य: अपरिभाष्य नामों से संरचित होता है । अर्थात् प्रत्येक विश्लेषित वाक्य केवल नामों का संघात होता है । रसेल का यह सिद्धान्त उसके निश्चित वर्णन के सिद्धान्त और जटिल निर्णयों के सिद्धान्त को प्रेरित करता है । उसने दो पदों के सम्बन्ध के आकार को तार्किक विषय के रूप में निरूपित किया, जिसका ज्ञान परमाणविक वाक्यों को समझने में सहायक है । जब तक वह विटगेन्सटाइन से प्रभावित नहीं था, रसेल Logical Operators को तार्किक विषयों के नाम के रूप में समझता था ।[34]

रसेल भी आगस्टाइन के भाषा के चित्र-सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में निहित इस मन्तव्य के प्रति आसक्त है कि किसी अभिव्यक्ति की पूर्ण समझ उसके द्वारा नामित ≬ Named ≬ वस्तु से परिचय में निहित है बशर्ते वह अभिव्यक्ति अपरिभाष्य हो अथवा इसका विश्लेषण अपरिभाष्यों में किया जा सकता हो । अतः रसेल भी समझ की भ्रामक कसौटी के कारण किसी भी अभिव्यक्ति के स्वरूप को समझने में विफल रहा । वह किसी एक अभिव्यक्ति की समझ और इसके प्रयोग के ज्ञान के बीच में निहित सम्बन्ध को रहस्यात्मक अथवा दुर्बोध रूप में ही छोड़ देता है । वह समझ को एक मानसिक क्रिया समझता है जिसके स्वरूप को अन्तर्दर्शन ≬Introspection ≬ से जाना जाता है । यह उसके अपरिभाष्यों के विवेचन में स्पष्ट होता है । इस अर्थ में समझ परिचय अर्थात् किसी वस्तु के प्रति अव्यवहित बोध से सम्बन्धित है । इस जटिल मानसिक क्रिया को परिचय के घटक कार्यों में विभाजित किया जाता है । तर्कवाक्य की समझ की क्रिया का ठीक विश्लेषण बहुत ही जटिल है और समझे गये तर्कवाक्य के आकार पर निर्भर है । इसकी जटिलता यह संकेत करती है कि इसे एक व्याख्यामूलक प्राक्कल्पना के रूप में व्यवहृत किया जाना चाहिए अर्थात् जिसका आगमनात्मक प्रमाणीकरण ही हो सकता हो । रसेल का अर्थ विश्लेषण वैज्ञानिक सिद्धान्त के व्यापार से युक्त है । किसी अपरिभाष्य का अर्थ उसके द्वारा नामित ≬ Named ≬ वस्तु है और किसी जटिल अभिव्यक्ति का अर्थ इसके सरल घटकों के अर्थों से बनता है । रसेल का उद्देश्य अर्थ-सिद्धान्त के लिए सुव्यवस्थित आगमनात्मक समर्थन प्रदान करना है,जो व्याख्यामूलक प्राक्कल्पनाओं के युग्म में निहित है । उनके द्वारा भाषा के वाक्य को समझने की संभावना की व्याख्या की जाती है । वे तर्कशास्त्र के विज्ञान की संरचना के लिए पर्याप्त समझी जाती हैं । यही तार्किक विश्लेषण की पद्धति और तार्किक परमाणुवाद को नाम के एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित करने का प्रमाण है । अर्थ-सिद्धान्त के लिए आगमनात्मक प्रमाणीकरण का यह संप्रत्यय तद्विषयक फ्रेगे के प्लेटोवादी परम्परा के तीक्ष्ण विरोध में है । वस्तुतः रसेलका अर्थ-सिद्धान्त भी समझ और व्याख्या के संप्रत्ययों की तोड़-मरोड़ करने के कारण आलोचना का विषय है । चूँकि रसेल का विश्लेषण अर्थ की व्याख्या

नहीं करता है, बल्कि भाषा के अभिनव विज्ञान में व्याख्यापरक प्राक्कल्पनाओं से सम्बन्धित है, अतः वह अर्थ को समझ से सम्बन्धित नहीं करता है ।

विटगेन्सटाइन ने भी ट्रैक्टेटस लाजिको फिलासाफिका में आगस्टाइन के भाषा-चित्र की इस मान्यता को ग्रहण किया है कि --- नाम का अर्थ उसके द्वारा निर्दिष्ट वस्तु है और वाक्य का अर्थ इसकी घटक अभिव्यक्तियों के व्यापारों में निहित है ; किन्तु विटगेन्सटाइन इसके अतिरिक्त यह भी मानता है कि वाक्य नाम नहीं है । फ्रेगे से विटगेन्सटाइन ने तर्कशास्त्र में मनोविज्ञानवाद का विरोध ग्रहण किया । परवर्ती विटगेन्सटाइन का अर्थ-संप्रत्यय ट्रैक्टेटस के मनोविज्ञानवाद विरोधी दृष्टिकोण को दूर करता है । इसे विटगेन्सटाइन की मौलिक दुर्बलता समझा गया है । जब विटगेन्सटाइन ने ट्रैक्टेटस में समझ के संप्रत्यय की आलोचना किया तो उसका उद्देश्य तार्किक परमाणुवाद की व्यक्त अन्तर्वस्तु नहीं थी, बल्कि उसके सिद्धान्त का पुनर्निरीक्षण करना था, जो समझ के विवरण को समाविष्ट कर सके । ट्रैक्टेटस की ऐसी मान्यता नहीं है कि किसी नाम को समझना, उस नाम के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु से परिचय में निहित है । वह यह भी नहीं मानता कि प्रत्यक्ष मूलक परिभाषा (Ostensive Definition) नामों की व्याख्या करने का मूलभूत आकार है । न ही किसी भी वाक्य को समझने का अर्थ निश्चित नियमों के अनुसार किसी आकलन को सम्पन्न करना है । ये सब केवल व्याख्या और समझ के विवरण हैं जो विटगेन्सटाइन के तार्किक परमाणुवाद के अनुकूल हैं ।

व्याख्या और समझ से अर्थ के सम्बन्ध पर गम्भीर अनुशीलन करने के कारण विटगेन्सटाइन आगस्टाइन के भाषा के चित्र-सिद्धान्त की आलोचना करता है । वह समझ और व्याख्या से सम्बन्धित चार प्रकार के प्रत्ययों (विचारों) का प्रतिपादन करता है -----

(1) समझ के प्रतिमान (Criteria of Understanding) -----

अभिव्यक्तियों (शब्दों और वाक्यों) को समझने के अनेक प्रकार के प्रतिमान हैं । अर्थ के दार्शनिक विवरण की सामान्य त्रुटियां शब्द और वाक्य जैसी अभिव्यक्तियों की समझ के प्रतिमानों को विकृत रूप में प्रस्तुत

करना है । अर्थात् तोड़-मरोड़ कर उन्हें अनुक्रम बन्धनों (Entailments) में उत्थापित करना और साथ ही साथ दूसरों की उपेक्षा करना । वस्तुतः समझ के प्रतिमान विविध, तुल्य, पराजेय होते हैं । आगस्टाइन ने विभिन्न तरीकों से समझ के प्रतिमानों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है ---

(क) किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या करना,जो इसकी व्याख्या करने के अभ्यास से मेल खाती हो, इसे समझने का एक प्रतिमान है । यदि यह तर्क किया जाय कि प्रत्यक्ष मूलक परिभाषाएं (Ostensive Definitions) अथवा व्याख्याएं, जो उदाहरणों के द्वारा दी जाती हैं, वे व्याख्याएं नहीं हैं तो इस नियम का उल्लंघन हो जाता है । क्योंकि कोई अभिव्यक्ति ठीक-ठीक ढंग से प्रयुक्त होगी, इसके लिए यह केवल आगमनात्मक समर्थन ही प्रदान करता है ।

(ख) किसी अभिव्यक्ति का प्रयोग, इसके प्रयोग करने के अभ्यास के साथ सुसंगत रूप में प्रस्तुत करना, इसे समझने की एक कसौटी है, किन्तु यदि कोई व्यक्ति यह तर्क देता है कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तथाकथित अभिव्यक्ति के प्रयोग करने के लिए किसी व्याख्या सहित असफल हो अथवा सफल, तो व्याकरण का यह सत्य भी खण्डित हो जाता है । इसका निराकरण इससे भी हो जाता है, जबकि किसी ठीक प्रयोग को इस प्रकार व्यवहृत किया जाता है, मानों यह केवल समझने का एक लक्षण है ।

(ग) किसी वाक्य को उचित ढंग से उत्पन्न करना, इसे समझने की एक कसौटी है । साथ ही साथ इसकी व्याख्या करना कि किन परिस्थितियों में इसे कहना उचित है और यह किस प्रकार इसके प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए उपयुक्त है । इस सिद्धान्त का निराकरण आगस्टाइन के इस विवादास्पद मत, कि सभी वाक्य वर्णन हैं, के द्वारा भी हो जाता है । साथ ही साथ किसी शब्द का अर्थ,वाक्य की सत्यता शर्तें,जिनमें कि यह घटित होता है , के प्रति योगदान के द्वारा शिथिल हो जाता है ।

§घ§ किसी अभिव्यक्ति को समझने के लिए दो प्रतिमानों के बीच के सम्बन्ध आपातिक हैं । किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या के अभ्यास को इसके ठीक-ठीक प्रयोग के अभ्यास से,जो सम्बन्धित करते हैं, वे व्यवहार के प्रारूप हैं जो उन लोगों के लिए सहज है जो वह भाषा बोलते हैं । यह फ्रेगे के इस विचार के द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है कि किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या करना,उस अभिव्यक्ति को समझ को तभी स्थापित कर सकता है जबकि दी हुई व्याख्या परिभाषित अभिव्यक्ति के प्रयोग के लिए पर्याप्त शर्तों का कथन करती है । आपातिक नियमितताएं भी किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या के अभ्यासों को विभिन्न व्याख्याओं से जोड़ती हैं अथवा समान रूप से किसी अभिव्यक्त वाक्य अथवा शब्द के प्रयोग के विविध तरीके,इसके प्रयोग के अभ्यास को अपने में अन्तर्निहित करते हैं ।[35]

§2§ औचित्य § Correctness § के प्रतिमान -- हम उचित और अनुचित अभिव्यक्तियों की व्याख्याओं तथा अभिव्यक्तियों के उचित और अनुचित प्रयोगों के बीच में भेद करते हैं । अर्थ के दार्शनिक विवरणों में एक सामान्य भूल यह है कि व्याख्या और प्रयोग के औचित्य के प्रतिमानों को विकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है । साथ ही साथ इन प्रतिमानों के बीच के सम्बन्ध को भी तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है । आगस्टाइन में ये विकृत रूप स्पष्ट हैं ---

§क§ उचित और अनुचित व्याख्याओं के मध्य वस्तुनिष्ठ विभेदीकरण की संभावना, व्याख्या के औचित्य के सामान्य, अपरिवर्तनशील प्रतिमान § मानदण्ड § के अस्तित्व की प्रागपेक्षा नहीं रखता, प्रत्युत इसका अस्तित्व तथाकथित रूप से व्याख्यायित प्रत्येक अभिव्यक्ति के सापेक्ष है ।[36] इसके निरूपण की अक्षमता यह सिद्ध करती है कि स्तरीय व्याख्याएं § Standard Explanations § वास्तविक व्याख्याएं नहीं हैं ।

दार्शनिक गण प्रायः औचित्य के अप्रामाणिक मानदण्ड को प्रतिपादित करते हैं । एक सामान्य विचार यह है कि कोई व्याख्या तभी उचित है, जब यह पूर्ण हो अर्थात् यदि यह बताती है कि प्रत्येक संभावित परिस्थिति में व्याख्यायित अभिव्यक्ति का प्रयोग कैसे किया जाय ।[37] प्रायः दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित अर्थ की व्याख्याएं शब्दों के अर्थों की व्याख्या के सामान्य अभ्यासों से पूर्णतया रहित होती हैं तथा वे व्याख्यापरक प्राक्कल्पनाओं के रूप में व्यवहृत की जाती हैं । इस प्रकार की व्याख्याओं का औचित्य हमारे व्यवहार में किसी आदर्शपरक भूमिका से स्वतन्त्र रूप में माना जाता है । इन विवरणों से सिद्ध होता है कि केवल अनिवार्य और पर्याप्त शर्तों से युक्त परिभाषाएं ही उचित व्याख्याओं के लिए सक्षम होती हैं ।

§ख§ अभिव्यक्तियों के उचित और अनुचित प्रयोगों के बीच वस्तुनिष्ठ भेद करने की संभावना, प्रत्येक अभिव्यक्ति के सापेक्ष रूप में औचित्य के सामान्य अपरिवर्तनीय मानदण्डों के अस्तित्व की प्रागपेक्षा रखती है । वस्तुतः यह केवल अभिव्यक्तियों के प्रयोग के निश्चित अभ्यास के अस्तित्व की प्रागपेक्षा रखती है § अर्थात् निर्णयों में सहमति §[38] । अर्थ के स्वरूप की दार्शनिक गवेषणा का उद्देश्य प्रत्येक अभिव्यक्ति के प्रयोग के लिए बौद्धिक संरचना § Construction of Rational § है । विचार के ये मानदण्ड यह प्रतिपादित करते हैं कि केवल ऐसा नियम, जो किसी पद के प्रयोग करने के लिए अनिवार्य और पर्याप्त शर्तों को बतलाता है, के द्वारा ही इस प्रयोग के उचित और अनुचित प्रयोगों के बीच में वस्तुनिष्ठ भेद करना संभव होता है ।

§ग§ किसी अभिव्यक्ति की उचित व्याख्या, व्याख्यायित अर्थ के प्रयोग के लिए औचित्य का मानदण्ड है । इस अभिव्यक्ति के प्रयोग के लिए यह एक नियम है । इस भ्रामक अवधारणा के कारण कि केवल

निश्चित आकार के नियम औचित्य के मानदण्ड की तरह कार्य करते हैं । दार्शनिक व्याख्या के आदर्शमूलक या सैद्धान्तिक महत्व से इस बात का अनुमान करते हैं ——— प्रत्येक उचित व्याख्या आकारिक परिभाषा के आकार से युक्त होना चाहिए तथा अन्य दूसरी बहुत सी व्याख्याएं जैसे – प्रत्यक्षमूलक परिभाषाएं ‖ Ostensive Definitions ‖, उदाहरणों के द्वारा व्याख्याएं ; उचित व्याख्याएं नहीं हैं । इस प्रकार यह नियम के संप्रत्यय को विकृत रूप में प्रस्तुत करता है । साथ ही साथ नियमों और उनके प्रयोगों के बीच सम्बन्ध का अति सरलीकरण कर देता है । वस्तुतः कोई आकार एक नियम को इसके प्रयोग के साथ कभी भी सम्बन्धित नहीं करता है बल्कि इस प्रकार के नियमों का प्रयोग करने का अभ्यास तथा किसी विशेष नियम के अनुगमन के प्रतिमान एक नियम और उसके प्रयोग को सम्बन्धित करते हैं ।

‖3‖ निकाय ‖ System ‖ ——— निकाय और ढाँचे के संप्रत्यय भाषा पर लागू होते हैं । वास्तव में भाषा को संप्रेषण के निकाय के रूप में समझा जाता है । दूसरे शब्दों में भाषा हमारे विचारों की वाहिका होती है । किन्तु भाषा-खेल में प्रयुक्त वाक्य अति जटिल होने के साथ विभिन्न प्रकार के स्वरूप अथवा ढाँचे रखते हैं । इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विचार बिन्दु उल्लेखनीय हैं । ——

‖क‖ यह प्रासंगिक सिद्धान्त कि किसी वाक्य का अर्थ इसके अंगों के अर्थों से बनता है,जो इसके ढाँचे से मेल खाता है, वह आगस्टाइन के भाषा-विषयक चित्र का एक आवश्यक भाग है । यह वाक्य के समझ के प्रतिमानों की गलत व्याख्या करता है । इसको बचाना वाक्य के ढाँचे के संप्रत्ययों के परिष्कार तथा शब्दों और वाक्यांशों अथवा मुहाविरों की व्याख्या की ओर ले जाता है । इसके परिणाम स्वरूप उपवाक्यीय अभिव्यक्तियों के प्रतिमानों तथा वाक्य ढाँचे के समझ के लिए प्रस्तुत

प्रतिमानों का कृत्रिम अथवा विकृत रूप प्राप्त होता है ।

§ख§ निकाय का संप्रत्यय अर्थ की भिन्नता को स्थापित करने के लिए मानदण्ड स्वरूप दार्शनिक युक्ति का समर्थन करता है । यदि अर्थ में भिन्न दो वाक्य केवल एक घटक में भिन्न हैं तो इस घटक के लिए दोनों वाक्य अर्थ में अवश्य भिन्न होने चाहिए । यदि दोनों वाक्य हमेशा अर्थ में भिन्न होते हैं तो वे हमेशा भिन्न होते हैं । अतः वे जटिल अभिव्यक्तियाँ, जिनमें ये घटित होते हैं, वे भी उसी प्रकार भिन्न होती हैं । विशेष रूप से यदि कोई ऐसा प्रसंग है जिसमें एक अभिव्यक्ति अच्छी तरह घटित हो सकती है किन्तु दूसरी नहीं, तो वे वर्णनागत भेद रखती हैं । इस भ्रामकता को निकाय पर बल न देकर तथा एक विशेष संदर्भ के सापेक्ष रूप में अर्थ, व्याख्या और समझ के भेद और अभेद के बहस के द्वारा दूर किया जा सकता है ।[39]

§ग§ यह सिद्धान्त —— समस्त अनुमान तार्किक अनुमान हैं,अर्थ के दार्शनिक विवरणों में तार्किक आकार के प्रतिपादन और विभेदीकरण को सूचित करता है । दार्शनिक विश्लेषण तर्कणा के समस्त समुचित आकार-प्रकारों के सैद्धान्तिक एकीकरण को संपादित करता है । न तो फ्रेगे के बहुआयामी परिमाणीकृत वाक्यों की व्याख्या और न ही रसेल द्वारा प्रस्तुत "दि" §The § शब्द की व्याख्या ही इन अभिव्यक्तियों की उचित व्याख्या थी । ये व्याख्याएं व्याख्या की गयी अभिव्यक्तियों के समझने के लिए किसी प्रतिमान को प्रस्तुत नहीं करती हैं ।

§घ§ यह विचार कि भाषा सुव्यवस्थित है के प्रति आसक्ति अभिव्यक्ति के आकारों पर आवश्यकता से अधिक बल देने पर अभिव्यक्त होता है । इससे इस भ्रामक दृष्टिकोण को समर्थन मिलता है कि व्याकरणात्मक आकार का तादात्म्य हमारे द्वारा प्रस्तुत अभिव्यक्तियों के प्रयोगों में तादात्म्य का सूचक है । वस्तुतः अभिव्यक्तियों के उनके विभिन्न व्याकरणात्मक आकारों की अपेक्षा बहुत से प्रयोग हैं । साथ ही साथ आकार और

प्रयोग के बीच में संवाद शायद ही अच्छा होता है ।

(4) आदर्शात्मकता अथवा सैद्धान्तिकता - (Normativity) ——
अभिव्यक्तियों के अर्थों की व्याख्याएं सैद्धान्तिक भूमिका रखती हैं । वे व्याख्यायित अभिव्यक्तियों के उचित प्रयोग के लिए नियम हैं । इस परिप्रेक्ष्य में विटगेन्सटाइन ने निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया है । जो समकालीन अर्थ-सिद्धान्त के लिए हानिकारक हैं ——

(क) किसी अभिव्यक्ति का विश्लेषण जो उचित प्रयोग के मानदण्ड से दूर है, का स्वरूप एक व्याख्यापरक प्राक्कल्पना का है, जिसका परीक्षण इस अभिव्यक्ति के उचित प्रयोग के मान्य ढांचे के विरुद्ध किया जाता है ।

(ख) यदि किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या की उचित सैद्धान्तिक भूमिका नहीं होती है तो इसे प्रस्तुत करना व्याख्यायित अभिव्यक्ति की समझ के प्रतिमान की प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकती । न ही स्वतः व्याख्या ही इसकी अभिव्यक्ति के व्याकरण का भाग है । अर्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत विश्लेषण अपेक्षाकृत अच्छी व्याख्याओं के रूप में नहीं हो सकते हैं । अतः वे हम लोगों के द्वारा सामान्यतया प्रयुक्त अभिव्यक्तियों की अपेक्षाकृत अच्छी समझ नहीं प्रस्तुत कर सकते हैं ।

(ग) हम केवल नियमों से संगत रूप में कार्य ही नहीं करते, प्रत्युत् उनका पालन भी करते हैं । विशिष्ट नियमों के अनुगमन के लिए प्रतिमान भी होते हैं । कोई व्यक्ति किस नियम का पालन कर रहा है इसको निश्चयता के साथ स्थापित करना संभव है, भले ही यह अनुमान पराजेय हो । केवल किसी नियम के अनुगमन करने और उससे सुसंगत होने के मध्य भेद की उपेक्षा करना, साथ ही साथ व्याख्याओं की सैद्धान्तिकता पर ध्यान न देना, निरीक्षणात्मक इन्द्रिय प्रदत्तों के द्वारा व्याख्यापरक प्राक्कल्पना के निर्धारणाधीन होता है ।

(घ) व्याख्यापरक प्राक्कल्पनाएं उन निरीक्षणों के साथ, जिनकी वे व्याख्या करती हैं, निगमनात्मक रूप से जुड़ती हैं । इसके परिणामस्वरूप यदि किसी अभिव्यक्ति के अर्थ का विश्लेषण इसके प्रयोग की व्याख्या करना है तो इसे विश्लेष्य के उचित प्रयोग के लिए सामान्य शर्तों को अवश्य बताना चाहिए । अतः किसी विश्लेषण के प्रतिपादन और कुछ परिस्थितियाँ, जिनमें कि विश्लेष्य उचित रूप से प्रयुक्त होता है, के वर्णन के मध्य एक आन्तरिक सम्बन्ध होना चाहिए । यह किसी अभिव्यक्ति की व्याख्या और प्रयोग के बीच अन्तर्निहित सम्बन्ध को गलत रूप में प्रस्तुत करता है । उचित व्याख्या और व्याख्येय के उचित प्रयोग के लिए परिस्थितियों के बीच में इस प्रकार के आन्तरिक सम्बन्ध की कोई आवश्यकता नहीं है ।[40] विटगैंस्टाइन के अर्थ और समझ के सम्बन्ध में प्रस्तुत विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि उसकी पद्धति में प्रमुख अंग समझ के प्रतिमान का संप्रत्यय है । यही संप्रत्यय उसे आगस्टाइन के भाषा के चित्र के सम्बन्ध में प्रस्तुत उसकी आलोचनाओं को अभिप्रेरित करता है । इससे उसके द्वारा प्रस्तुत प्रत्ययमूलक परिभाषाओं, व्याख्याओं, पारिवारिक साम्य ; तात्पर्य निर्धारण और समझ के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विवादों की जानकारी मिलती है । यहाँ तक कि विटगैंस्टाइन के विचार में अर्न्तनिहित द्वन्द्व भी इससे निर्धारित होता है । विशेषतया विटगैंस्टाइन शब्द का अर्थ भाषा में इसके प्रयोग पर निरूपित करता है ।[41] शब्द का अर्थ व्यवहार में इसके प्रयोग पर निर्भर है ।[42] साथ ही साथ भाषा-खेल में शब्द की भूमिका तथा व्याकरण में इसके स्थान के द्वारा भी शब्दार्थ बोध होता है । वह पुनः कहता है कि शब्द का अर्थ इसके अर्थ की व्याख्याओं में, जिसकी व्याख्या की जाती है, वही है ।[43] शब्द का अर्थ इसका प्रयोजन है ।[44] वाक्य का अर्थ इसका प्रयोग है ।[45] अर्थ के सम्बन्ध में विटगैंस्टाइन द्वारा प्रस्तुत अनेक प्रकार की व्याख्याओं और प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि उसका अर्थ संप्रत्यय द्वयर्थक है क्योंकि उसकी विभिन्न कृतियों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त हुआ है । किन्तु उसके द्वारा मान्य अर्थ संप्रत्यय से यह प्रतिपन्न होता है कि वाक्य का अर्थ उन परिस्थितियों, प्रसंगों अथवा संदर्भों में उसके प्रयोग पर निर्भर है । भाषा-खेल से निरपेक्ष रूप में अर्थ और समझ की

व्याख्या करना कोरी कल्पना है ।

भाषा-खेल और निश्चयता — देकार्त के समय से ही ज्ञानमीमांसा की एक महत्वपूर्ण समस्या रही है कि — क्या कोई आपतिक तर्कवाक्य निश्चित रूप से जाना जा सकता है जो पूर्णतया सत्य हो । मूर ने ऐसे आपातिक वाक्यों को जानने का दावा किया है । मूर के अनुसार अधिकांश तर्कवाक्य जो कामनसेन्स (Common sense) पर आधारित है ; का ज्ञान उनकी सत्यता के लिए किसी न किसी प्रमाण पर आधारित है ।[46] किन्तु इन तर्कवाक्यों का आधार स्वरूप प्रमाण क्या है ? हम नहीं कह सकते हैं । हम लोग ऐसी विचित्र स्थिति में हैं कि हम बहुत सी चीजें जानते हैं किन्तु फिर भी हम यह नहीं जानते हैं कि हम उन चीजों को कैसे जानते हैं ? दूसरे शब्दों में हम यह नहीं जानते हैं कि प्रमाण क्या है या क्या था ?[47]

विटगेन्सटाइन ने अपनी कृति " आन सरटेन्टी " के प्रारम्भ में ही मूर की समस्या पर विचार किया है । उसके अनुसार मूर द्वारा संशयवाद का खण्डन महत्वपूर्ण नहीं है । विटगेन्सटाइन ने मूर की दार्शनिक स्थिति का खण्डन करने का प्रयास किया । उसके अनुसार मूर का यह दावा कि वह बहुत से कामनसेन्स प्रोपोजीशन्स को जानता है, निरर्थक है क्योंकि इस प्रकार के कामनसेन्स पर आधारित तर्कवाक्य सही रूप में लोगों द्वारा जाने जाते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता । मूर की यह भूल है कि उसने इन आपातिक तर्कवाक्यों कोजानने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता पर बल दिया । यह भी एक गलती है कि इन कामनसेन्स पर आधारित तर्कवाक्यों को बाहय जगत् केलिए प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाय । यह आश्वासन कि कोई व्यक्ति कुछ जानता है, चाहे कितना ही सबल हो, स्वयं अपने द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता । विटगेन्सटाइन के अनुसार " वह जानता है कि वहाँ एक हाथ है " किन्तु इस कथन से " मैं जानता हूँ ।
यह सिद्ध नहीं होता कि वह इसे जानता है । इस प्रकार वह जानता है, यह प्रश्न अस्पष्ट रह जाता है ।[48] अतः मूर संशयवाद का निराकरण करने में असफल हैं । इस संदर्भ में विटगेन्सटाइन का कहना है कि यदि वह भाषा-खेल से परिचित है तो

यह स्वीकार करेगा कि मैं जानता हूँ । पुनश्च यदि वह भाषा-खेल से परिचित है तो वह यह अनुशीलन करने में समर्थ होगा कि कोई व्यक्ति इस प्रकार की कोई चीज कैसे जान सकता है?[49] यह प्रश्न हमेशा ही पूँछा जा सकता है कि एक व्यक्ति किसी वस्तु के विषय में जानता है अथवा नहीं । ऑन सरटेन्टी के सेक्सन 13-14 में विटगेंस्टाइन इसी मान्यता का प्रतिपादन करता है । इसी संदर्भ में वह मूर के मन्तव्य का खण्डन भी करता है ।[50] तुम कैसे जानते हो ? इस प्रश्न का अर्थ यह नहीं है कि तुम्हें ज्ञात तर्कवाक्य के सत्य के लिए केवल एक प्रमाण देना है, बल्कि जब हम उत्तर के बारे में संशय को दूर कर देते हैं तो हम इस प्रकार के प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं । किसी प्रश्न के सन्दर्भ में आकलन का निरीक्षण करना ऐसे अनेक कथनों के सत्य का निरीक्षण करना है जो संयुक्त रूप से एक-दूसरे को प्रतिपन्न करते हैं । इन बाद वाले तर्कवाक्यों को हम कैसे जानते हैं ? इस प्रकार का प्रश्न उठाना पुनः प्रमाण की माँग करता है और इस प्रकार हम उनके सत्यापन के लिए समुचित आधार की अपेक्षा रखते हैं । किन्तु प्रमाणों की श्रृंखला का कोई अन्त अवश्य होना चाहिए, अर्थात् हमें एक ऐसे मूल बिन्दु पर पदार्पण करना चाहिए, जिसके सम्बन्ध में अन्य प्रमाणों की आवश्यकता न हो । अपने भाषा-खेल में विटगेंस्टाइन निश्चयता के लिए इस बिन्दु पर विशेष बल देता है ।[51] यही कारण है कि विटगेंस्टाइन की दृष्टि में यह सोचना मूर की यह भूल है कि कामनसेन्स सत्यों का ज्ञान किसी प्रमाण पर आधारित है । विटगेंस्टाइन का मूल मन्तव्य यह है कि ये कामनसेन्स सत्य प्रमाणों की श्रृंखला में मूल बिन्दु हैं । विटगेंस्टाइन के भाषा-खेल में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इन मूल आधारों का पर्याप्त महत्त्व है । मेरे दो हाथ हैं, मैं कमरे में बैठा हूँ, मैं इस समय शर्ट पहने हूँ इत्यादि आपातिक तर्कवाक्यों को हम उनकी ओर देख करके नहीं सीखते हैं । यदि कभी अपने दोनों हाथों को उठा करके हम देखें और एक ही हाथ दिखायी पड़े तो हमें अपनी इन्द्रियों पर संशय करना चाहिए न कि इस पर कि मेरे दो हाथ हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि मेरे दो हाथ हैं । यह इन्द्रियों के प्रभाव पर आधारित नहीं है । यह सत्य है कि मेरे दो हाथ हैं । यह एक विशेष प्रकार का तर्कवाक्य है जो दूसरे तर्कवाक्यों से भिन्न है । मूर द्वारा

बताये गये कामनसेन्स तत्य संशय के परे हैं और हमारे आनुभाविक ज्ञान के निकाय में उनकी एक तार्किक भूमिका है । विटगेन्सटाइन ने अपने भाषा-खेल में कामनसेन्स तत्यों की इसी विशिष्ट भूमिका की गवेषणा की है न कि इस प्रश्न की कि, क्या वास्तव में हम उन्हें जानते हैं ।

विटगेन्सटाइन के भाषा-खेल की प्रत्येक दशा में जहाँ ज्ञान का कोई दावा अथवा संशय अथवा भाषायी संप्रेषण (जैसे -- सूचना देना, प्रश्न पूँछना, आदेश देना) स्थापित किया जा रहा हो तर्कवाक्यों का एक समूह इसकी प्राक्पेक्षा के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है । ये तर्कवाक्य एक प्रकार के निकाय का निर्माण करते हैं । यदि ऐसा न हो तो ज्ञान और संशय, निर्णय और सम्‌, भ्रम और तत्य का अस्तित्व नहीं हो सकता । समस्त निरीक्षण, परीक्षण, सत्यापन-असत्यापन, किसी प्राक्कल्पना का सत्यापन और असत्यापन एक निकाय के अन्तर्गत ही घटित होता है । यह निकाय स्वैच्छिक और हमारी समस्त युक्तियों के लिए संशयात्मक नहीं होता । यह युक्तियों से सम्बन्धित होता है । यह निकाय उतना अधिक प्रस्थान का बिन्दु नहीं है जैसा कि वह तत्व जिनमें कि युक्तियों का अपना जीवन होता है ।[52] मूर द्वारा निर्दिष्ट कामनसेन्स वस्तुओं को पूर्वज्ञान कहा जा सकता है । वैसे विटगेन्सटाइन ने स्वयं इस पद का प्रयोग नहीं किया है । यहाँ पर इसे निश्चयता कहना अपेक्षाकृत उत्तम होगा । अर्थात् यह हमारे निर्णय के अभ्यास में एक निश्चयता है अपेक्षाकृत हमारे निर्णयों की अनतर्वस्तु की हमारी विचारणा में । इस प्रकार उदाहरण के लिए तर्कवाक्य -- बहुत दिनों से पृथ्वी का अस्तित्व रहा है, हमारे ऐतिहासिक ज्ञान में पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । किन्तु यह तर्कवाक्य स्वतः ऐतिहासिक ज्ञान का भाग नहीं है । यह तर्कवाक्य कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे भूतकाल की गवेषणा के आधार पर जाना गया हो । यद्यपि भौगोलिक अन्वेषण के अन्तर्गत् हम यह जान सकते हैं कि पृथ्वी 300 बिलियन वर्षों से अस्तित्व में रही है अथवा यह 500 बिलियन वर्षों से अधिक अस्तित्व में रही है । ये सभी वैज्ञानिक ज्ञान के संभावित अंग हैं । इन वैज्ञानिक तर्कवाक्यों के पक्ष या विपक्ष में हम चाहे जो युक्ति दें किन्तु इन सब की पृष्ठभूमि में यह

पूर्वमान्यता अन्तर्निहित है कि पृथ्वी भूतकाल में बहुत वर्षों से अस्तित्व में रही है ।[53] अतः विटगेन्सटाइन का कहना है कि बाह्य जगत् के अस्तित्व की समस्या इसे उठाने के पहले ही हल हो जाती है । इस प्रश्न को उठाने के लिए हमें इस प्रकार की चीजें अवश्य जाननी चाहिए कि बाह्य जगत् है क्या ? किन्तु बाह्य जगत के संप्रत्यय को प्राप्त करने के पहले हमें ऐसे अनेक तथ्यों की जानकारी होनी चाहिए, जो भौतिक वस्तुओं के अस्तित्व से मेल खाते हों । किन्तु बाह्य जगत् का अस्तित्व तो एक ऐसा तार्किक निधान (Logical recepticle) है जिसके अन्तर्गत् मन पर आधारित समस्त गवेषणाएं निर्भर हैं ।[54]

मूर के कामनसेन्स तर्कवाक्य प्रयोगमूलक तर्कवाक्यों के आकार रखते हैं । किन्तु वे तार्किक नियमों जैसा व्यापार सम्पन्न करते हैं । उनका सत्य हमारी भाषा-खेल के आधारों में जुड़ जाता है, ठीक गणितीय तर्कवाक्यों के सत्य जैसा ।[55] किन्तु यह तथ्य कि हम ऐसी परिस्थितियों की कल्पना कर सकते हैं जो हमारे भाषा-खेल के अन्तर्गत् अपने प्रयोग में एक नियम से भिन्न रूप में परिवर्तित हो सकती हैं ---यह सिद्ध करता है कि विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक के बीच में तार्किक अनिवार्यता और आपातिक सत्य अथवा असत्य के मध्य कोई कठोर सीमा रेखा नहीं है । विट-गेन्सटाइन कहता है ज्ञान और निश्चयता भिन्न कोटियों से सम्बन्ध रखते हैं । अनुमान करना और निश्चित होना के समान वे दो मानसिक स्थितियां नहीं हैं । हमारे लिए अब रूचि का विषय निश्चित होना नहीं, बल्कि ज्ञान है । हम इसमें रूचि रखते हैं कि कुछ अनुभवमूलक तर्कवाक्यों के बारे में कोई संशय नहीं है यदि निर्णय करना संभव है । - - - - - - - - - ।[56] क्या वह नियम और अनुभवमूलक तर्कवाक्य एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं ।[57] किन्तु क्या कोई यह नहीं कह सकता है कि तर्कशास्त्र के तर्कवाक्यों और अनुभवमूलक तर्कवाक्यों के बीच कोई तीक्ष्ण सीमा रेखा नहीं है । तीक्ष्णता का अभाव नियम और आनुभाविक तर्कवाक्य के बीच में सीमा का अभाव है ।[58] मैं कहना चाहता हूँ । आनुभाविक तर्कवाक्यों के आकार के तर्कवाक्य और न केवल तर्कशास्त्र के तर्कवाक्य, सभी विचारों (भाषा) के साथ परिचालित आधारशिला का निर्माण करते हैं । यह निरीक्षण " मैं जानता हूँ ।"

-------- " मैं जानता हूँ । " -------- के आधार का नहीं है और वह तार्किक रुचि का विषय नहीं है ।[59]

मूर द्वारा बाह्य जगत् के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दिये गये प्रमाण आपातिक आधारवाक्यों से आपातिक निष्कर्ष की सिद्धि नहीं है । वह केवल ऐसा कहने का प्रयास करता है कि बाह्य जगत् के संप्रत्यय के अन्तर्गत हम बहुत से तथ्यों को पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार करते हैं । इनके बारे में हम कोई प्रश्न नहीं करते अर्थात् इन्हें मानकर चलते हैं । अतः यह कोई आपातिक तर्कवाक्य नहीं है कि बाह्य जगत् का अस्तित्व है । वस्तुतः यह मनुष्य के प्राकृतिक इतिहास का एक आपातिक तथ्य है कि हमारे पास बाह्य जगत् का एक संप्रत्यय है ।[60] प्रत्येक वस्तु के बाहर हम जानते हैं अथवा कल्पना करते हैं या सोचते हैं । इसकी पृष्ठभूमि में कुछ आधारस्वरूप स्वीकृत सत्य है ; जिनके अभाव में जानना, कल्पना करना अथवा सोचना संभव नहीं है । मूर के कामनसेन्स तर्कवाक्य -- वस्तुतः कुछ चीजें जानी जा सकती हैं ; के लिए प्रमाण अथवा आधार स्वरूप समझे जा सकते हैं । जैसे -- वे सभी वस्तुऐं सामान्यतया जिन्हें हम कहते हैं कि हम उन्हें कुछ प्रमाणों के आधार पर जानते हैं तथा उनके बारे में हम कोई प्रश्न नहीं उठाते । मूर का कामनसेन्स बहुत कुछ विटगेन्स्टाइन द्वारा ट्रैक्टेटस में निर्दिष्ट जगत् की सीमा जैसा है । आन सरटेन्टी में विटगेन्स्टाइन द्वारा मूर की आलोचना ट्रैक्टेटस की भाषा में कहें तो इसलिए है क्योंकि मूर ने अकथनीय के विषय में कथन का प्रयास किया है ।[61]

तर्कवाक्यों का वह निकाय, जो जगत् के चित्र का निर्माण करता है, कोई निश्चित सीमा नहीं रखता । पुनश्च इसकी संरचना बहुत ही विषम है । यह एक विपुलकाय उपनिकायों की संचित राशि है जिनमें से प्रत्येक की सीमाएं अस्थिर और मिश्रित अन्तर्वस्तु वाली हैं । ये समस्त उपनिकायभाषा-खेल से सम्बन्धित हैं । यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक भाषा-खेल एक आधारशिला से युक्त होता है, जो भाषा-खेल खेलने वालों के प्रारम्भिक ज्ञान का अंग है । वह कहता है कि जानने का

संप्रत्यय भाषा-खेल के संप्रत्यय से मिश्रित है ।[62] भाषा-खेलों के बीच में कोई कठोर व्यवस्था नहीं है, न तो तार्किक दृष्टि से और न ही उद्भवमूलक विकास की दृष्टि से । किन्तु उनमें इन दोनों ही रूपों में कोई न कोई व्यवस्था अवश्य है । व्यक्ति के विकास तथा भाषा-समुदाय के इतिहास में खेल भिन्न-भिन्न अवस्था के हैं, कुछ सीखे नहीं जा सकते हैं जब तक कि दूसरों पर प्रवीणता न प्राप्त कर ली जाती । जगत् की तस्वीर के अंग जो प्रारम्भ से ही भाषा-खेलों में निहित हैं वे केवल प्रारम्भिक ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं । यदि इसे ज्ञान नाम से सम्बोधित किया जाय तो इसकी संप्रत्ययात्मक विशेषता उन चीजों से बहुत भिन्न है जिसके लिए साधारण भाषा-खेलों में हम लोग इस नाम का प्रयोग करते हैं । विटगेन्सटाइन पूँछता है — क्या एक बच्चा विश्वास करता है कि दूध का अस्तित्व है अथवा क्या बच्चा जानता है कि दूध का अस्तित्व है ? क्या बिल्ली जानती है कि चूहे का अस्तित्व है ?[63] और वह पुनः कहता है —— क्या हम कहते हैं कि भौतिक वस्तुएँ हैं । यह ज्ञान बहुत पहले अथवा बहुत बाद में प्राप्त होता है ।[64] इनमें से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर हाँ अथवा नहीं में दिया जा सकता है । इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम उनको कैसे समझते हैं ? जगत् का चित्र अपने व्यावहारिक स्वरूप में जीवन का आकार कहा जा सकता है । "मेरा जीवन" दिखाता है कि मैं जानता हूँ अथवा निश्चित हूँ कि वहाँ एक कुर्सी है अथवा एक दरवाजा है इत्यादि ।[65] विटगेन्सटाइन पुनः कहता है-अब मैं इस निश्चयता को किसी निरर्थक अथवा हठी रूप में नहीं, बल्कि जीवन के एक आकार के रूप में समझना पसन्द करूँगा ।[66]" अतः जगत् का चित्र न तो सत्य है न असत्य है । सत्य से सम्बन्धित विवाद केवल जगत् के ढाँचे के अन्तर्गत् ही संभव है । पूर्वमान्यता यह है कि इस सम्बन्ध में विवाद करने वाले लोग एक ही संस्कृति, उसी जीवन के आकार में भाग लेते हैं तथा वही भाषा-खेल खेलते हैं उदाहरण के लिए जिन शब्दों का वे प्रयोग करते हैं । उन्हें उनका अर्थ भी एक जैसा ही करना चाहिए । किन्तु अर्थ की समानता अथवा भेद या अन्तर केवल तभी संभव है जब तथ्यों के बारे में एक निश्चित परिमाण में कोई समझौता हो गया हो ।[67]

कुछ ऐसी दशायें हैं जिनमें यह पूर्वमान्यता टूट जाती है अथवा पूरी नहीं हो पाती है । उदाहरण के लिए एक परिस्थिति यह हो सकती है कि जब कोई व्यक्ति इस बात से इन्कार करता है अथवा संशय करता है कि यह जगत् की तस्वीर का अंग है । प्रायः यह कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति मानसिक रूप से अव्यवस्थित है ।[68] यदि कोई व्यक्ति यह संशय करता है कि उसके पैदा होने के पहले जगत् का अस्तित्व था और वह उस प्रत्येक वस्तु के प्रति, जिसे वह करता है अथवा कहता है, के प्रति संशय व्यक्त करता है, के सम्बन्ध में हमें क्या कहना चाहिए । शायद हमें कहना चाहिए कि उसका उन्माद अथवा पागलपन इसलिए है क्योंकि हम उसे इतिहास नहीं पढ़ा सके हैं ।[69] वह जीवन के समस्त आकारों में भाग लेने में सक्षम नहीं है । किन्तु ऐसी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है जिनके अन्तर्गत हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि यह वास्तव में मानसिक दोष नहीं है बल्कि ऐसा संस्कृति में अन्तर के कारण है । कोई राजा ऐसा विश्वास क्यों नहीं करता है कि जगत् उसके साथ ही शुरू हुआ ? यदि मूर और यह राजा मिलते और आपस में बहस करते तो क्या मूर वास्तव में अपने विश्वास को (बाह्य जगत् का अस्तित्व) सही ढंग से सिद्ध कर सकता था ।[70] संभवतः मूर राजा को अपने विचारों में परिवर्तित कर लेता । उसे जगत् को एक भिन्न तरीके से देखने के लिए तैयार कर लेता । यह एक प्रकार के प्रभावित करने के माध्यम से ही संभव हो सकता ।[71] और राजा की गलती के प्रति आश्वस्त करना संभव नहीं होगा ।[72] ऐसी स्थिति में हमें उसके विचारों को ठीक नहीं करना चाहिए, बल्कि उसके द्वारा मान्य जगत् विषयक तस्वीर या चित्र का प्रतिरोध करना चाहिए । हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बहुत से ऐसे हेतु हैं जिनके कारण इतिहास में जगत् की तस्वीर बदलती रहती है । विटगेन्सटाइन ऐसे कुछ हेतुओं पर प्रकाश डालता है । जैसे — सरलता और संतुलन (Simplicity & Symmetry) ऐसे हेतुओं का दूसरा प्रकार ज्ञान के प्रयोगों में हमारी रूचि को झुका रहा है । इस प्रकार विटगेन्सटाइन की जगत् की तस्वीर के संप्रत्यय की गवेषणा, ज्ञान के समाज शास्त्र में लागू होती है । इस सम्बन्ध में टी०एस० कून (T. S. Kuhn) की मान्यता है कि सामान्य

विज्ञान की संरचना प्रतिमानों के ढांचे के अन्तर्गत होती है । मान्य प्रतिमान वैज्ञानिक गवेषणा के लिए प्रश्नों के ढाचे की स्थापना करते हैं और संभावित उत्तरों को स्थापित करते हैं । विज्ञान की क्रान्तियां संस्थापित प्रतिमानों को हटाकर नये प्रतिमानों की मान्यता से सम्बन्धित होती है ।[74] कून द्वारा प्रस्तुत यह निदर्शन विटगैंस्टाइन द्वारा प्रस्तुत जगत् के चित्रों के संप्रत्यय पर भी लागू होता है । किन्तु विटगैंस्टाइन के संदर्भ में इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है । इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक विज्ञान और मानव विज्ञान के बीच के अन्तर को स्पष्ट करना चाहिए ।

Notes and References

1. Proceedings of Aristotelian Society, Supplementary, Volume 28, 1954 pp.62-70.

2. Malcolm, N. 'Wittgenstein's Philosophical Investigations', 1954 PR Volume 63, pp 530-531.

3. Wittgenstein, L. PI Section 268.

4. Ibid Section 258.

5. Ibid Section (260-61).

6. Ibid Section 265.

7. Strawson, P.F. Critical Notice, PI, Mind, Volume 63, 1954, p. 85.

8. Wittgenstein, L. PI Section (305-308).

9. Ibid Section 580.

10. Kripke, Saul A. 'Wittgenstein on Rules and Private Language' Oxford, Basil Blackwell, 1982, reprinted 1985, pp. 3-4.

11. Wittgenstein, L. PI Section 201.

12. Kripke, Saul A. 'Wittgenstein on Rules and Private Language' Oxford, Basil Blackwell 1982, reprinted 1985, p.54.

13. Ibid p. 62.

14. Britton, Karl 'Portrait of A Philosopher, quoted by Pitcher, G.; The Philosophy of Wittgenstein p. 325.

15. Kripke, Saul A. 'Wittgenstein on Rules and Private language' Oxford Basil Blackwell, 1982, reprinted 1985, p. 68.

16. Wittgenstein, L. PI Section 293.

17. Ibid PI (II, XI) p. 207.

18. Hintikka, M.B. and Hintikka, J. 'Investigating Wittgenstein', Basil Blackwell, 1986, p. 259.

19. Ibid p. 260.

20. Anscombe, G.E.M. 'On Private Ostensive Definitions in language and ontology, Proceedings of the sixth International Wittgenstein Symposium, Vienna, 1982, pp. 212-17.

21. Wittgenstein, L. PI Section 272.

22. Hintikka, M.B. and Hintikka, J. 'Investigating Wittgenstein', Basil Blackwell, 1986, pp. 265-67.

23. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding; Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell, 1980, reprinted 1984, p. 348.

24. Wittgenstein, L. PI Section 353.

25. Ibid Section 377.

26. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. 'Wittgenstein Meaning and Understanding Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell, 1980, reprinted 1984, p. 350.

27. Wittgenstein, L. 'On Certainty'(Section 8, 75).

28. Proto Philosophical Investigations, Section 67.

29. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding Essays on the Pilosophical Investigations, Basil Blackwell 1980, reprinted 1984, p. 352.

30. Nachgelassene Schriften (eds.) Hermes, H., Kambartel, F., Kaulbach, F., Felixmeiner, Verlag, Hamburg, 1969, p. 149, quoted by Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. p. 354.

31. The foundations of Arithmatics, Translated by Austin, J.L. Blackwell, Oxford, 1959, page (i-f).

32. Peter Geach and Black, M. (eds) Function and concept, Oxford 1960, p.33.

33. Backer, G.P. and Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding: Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell 1980, reprinted 1984, p. 356.

34. Theory of Knowledge, p.186.

35. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding: Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell 1984, Uses of sentences, pp.72-74.

36. Wittgenstein, L. PI Section 242.

37. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell 1984, Explanations, p.38.

38. Wittgenstein, L. PI Section 242.

39. Wittgenstein, L. BB, P.115.

40. Baker, G.P. and Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell 1984, p.366.

41. Rhees, R. (Ed.) Philosophical Grammar P.60 and PI Section 43.

42. Wittgenstein, L. BB, P. 69.

43. Rhees, R. (ed.) Philosophical Grammar, Translator - Kenny, A.J.P., Blackwell Oxford, 1974, p.59.

44. Philosophical Remarks, p. 59.

45. PI Section 421.

46. Moore, G.E. Philosophical Papers, Alen & Un win, London 1959,in a defence of common sense, p. 44.

47. Ibid p.44.

48. Wittgenstein, L. 'On Certainty' Section (13-14) (eds.) Anscombe, G.E.M. and Von Wright, G.H., Trans. by Paul, D. and Anscombe,G.E.M. Blackwell, 1969.

49. Ibid Section 18.

50. Von Wright, G.H. 'Wittgenstein', p.169.

51. Wittgenstein, L. 'Philosophical Investigations', Part - 1', Section 326, 485, 'On Certainty' Section 471.

52. Wittgenstein, L. 'On Certainty' Section 105.

53. Ibid Section 138.

54. Von Wright, G.H. 'Wittgenstein' pp. 172-173.

55. Malcolm, N. 'A memoir', p. 88.

56. Wittgenstein, L. 'On Certainty' Section 308.

57. Ibid Section 309.

58. Ibid Section 319.

59. Ibid Section 401.

60. Von Wright, G.H. 'Wittgenstein', p. 174.

61. Ibid P. 176.

62. Wittgenstein, L. 'On Certainty' Section 519, 560.

63. Ibid Section 478.

64. Ibid Section 479.

65. Ibid Section 7.

66. Ibid Section 358.

67. Ibid Section 114, 126, 624.

68. Ibid Section (71-73)

69. Ibid Section 206.

70. Ibid Section 92.

71. Ibid Section 262.

72. Ibid Section (608-612)

73. Ibid Section 92.

74. Kuhn, T.S. The structure of scientific revolutions, University of Chicago, Chicago Press, 1962.

उपसंहार

भाषा से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार करने के लिए आवश्यक है कि इससे एक निश्चित दूरी रखी जाय तथा इसके महत्वपूर्ण पक्षों की उपेक्षा न की जाय। हम सभी भाषा का प्रयोग सरलतापूर्वक करते हैं तथा सभी उसी रूप में भाषा सीखते हैं जैसे चलना या दौड़ना। किन्तु भाषा की जटिलता एवं विविधता विस्मयकारी है। यद्यपि सभी दार्शनिकों ने किसी न किसी रूप में भाषा पर विचार किया है किन्तु इसे केन्द्रीय स्थान इसी शताब्दी में मिला है। दर्शन के अतिरिक्त व्याकरण एवं भाषा विज्ञान में भी भाषा पर विचार किया जाता है, किन्तु भाषा का दार्शनिक विचार इन दोनों से भिन्न है। दर्शन में मूलतः दार्शनिक समस्याओं के सन्दर्भ में ही भाषा का विश्लेषण किया जाता है। समकालीन दर्शन इस प्रयास के लिए लुडविग विटगेंस्टाइन का सदैव ऋणी रहेगा।

भाषा में विटगेंस्टाइन की रूचि गणित एवं तर्कशास्त्र के कारण हुयी। दोनों के लिए प्रतिज्ञप्तियों के सामान्य स्वरूप का विश्लेषण आवश्यक है और प्रतिज्ञप्तियों का स्वरूप समझने के लिए भाषा की सार्थकता का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। अतः ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन की मुख्य समस्या है भाषा की सार्थकता। इस सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न है ; सार्थकता की अनिवार्य शर्तें क्या हैं ? भाषा की सार्थक इकाई क्या है ? सार्थक एवं निरर्थक प्रतिज्ञप्तियों का अन्तर क्या है ? असत्य प्रतिज्ञप्तियों की समझ कैसे सम्भव है ? तथा तात्विक रूप से सार्थकता की आवश्यकतायें क्या हैं ? ट्रैक्टेटस की तत्वमीमांसा का कोई पृथक् और स्वतंत्र स्थान नहीं है, बल्कि यह तत्व मीमांसा सार्थकता की प्रागपेक्षा के रूप में मान ली गयी है। जगत् तथ्यों की समग्रता है क्योंकि भाषा प्रतिज्ञप्तियों की समग्रता है और तथ्य (वास्तविक या संभावित) प्रतिज्ञप्ति का अर्थ है। प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति एक वास्तविक या संभावित तथ्य को व्यक्त करती है। यही तथ्य इसका अर्थ है। यदि शब्दों के किसी संयोजन के अनुरूप तथ्य नहीं है तो यह प्रतिज्ञप्ति निरर्थक है। अतः तथ्य या वस्तुस्थिति प्रतिज्ञप्ति की सार्थकता के लिए अनिवार्य है। यदि तथ्य वास्तविक है तो प्रतिज्ञप्ति सत्य है, अन्यथा असत्य।

अतः सत्य प्रतिज्ञप्तियों के लिए वास्तविक तथ्यों का होना आवश्यक है । इसी प्रकार तथ्य वस्तुओं का संयोजन है क्योंकि सरल प्रतिज्ञप्ति नामों का संयोजन है, एवं नाम का अर्थ सरल वस्तु है । प्रतिज्ञप्तियों के लिये नाम आवश्यक हैं, अतः तथ्यों के लिये वस्तुयें अनिवार्य हैं । इससे स्पष्ट हो जाता है कि ट्रैक्टेटस का मुख्य विषय भाषा की व्याख्या है ।

ट्रैक्टेटस में भाषा का विश्लेषण एक निश्चित तार्किक अवधारणा के आधार पर किया गया है । यह अवधारणा फ्रेगे और रसेल की तार्किक अवधारणाओं का परिणाम है तथा दोनों से प्रभावित है । किन्तु विटगेन्स्टाइन ने इन दोनों के तार्किक निष्कर्षों में परिवर्तन भी किया है । विटगेंस्टाइन की सभी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य विचार की रचना एवं सीमा को समझना है और इसकी विधि भाषा की रचना एवं सीमाओं को स्पष्ट करना है । कांट के समान वह मानता है कि प्रायः हम विचार की सीमाओं का अतिक्रमण करके निरर्थकता में फंस जाते हैं । इससे बचने के लिये सार्थकता एवं निरर्थकता में अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है । उसकी यह भी मान्यता है कि भाषा की सीमायें भाषा की अपनी ही आन्तरिक रचना द्वारा निर्धारित हैं । ट्रैक्टेटस में उसका मत है कि भाषा की प्रकृति प्रतिज्ञप्तियों के स्वरूप द्वारा निर्धारित है । अतः प्रतिज्ञप्तियों का सामान्य स्वरूप समझना आवश्यक है । ट्रैक्टेटस में वह मानता है कि सभी भाषाओं का एक सामान्य तार्किक स्वरूप है भले ही ऊपर से उनमें अन्तर क्यों न हो । इस स्वरूप को तार्किक विश्लेषण के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है । इसके लिये उसने एक आदर्श या प्रतीकात्मक भाषा की अवधारणा की, किन्तु यह प्रतीकात्मक भाषा का स्थान नहीं लेती । अनेक व्याख्याकारों एवं आलोचकों का मत है कि सरल तर्कवाक्यों का सम्बन्ध केवल प्रतीकात्मक भाषा से है किन्तु यह मत उचित नहीं है । प्रतीकात्मक भाषा केवल एक साधन है जिससे सभी भाषाओं का तार्किक स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता है । दोनों ही अवस्थाओं में विटगेंस्टाइन का उद्देश्य साधारण भाषा की तार्किक रचना को समझना है । ट्रैक्टेटस में वह कहता है कि साधारण भाषा तार्किक रूप से पूर्णतः उपयुक्त है, किन्तु साधारण

व्याकरण उसके तार्किक स्वरूप को स्पष्ट करने के स्थान पर छिपा देता है । इस रचना को स्पष्ट करने के लिये प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है । यदि साधारण भाषा का विश्लेषण किया जाय तो सरल प्रतिज्ञप्तियाँ अवश्य प्राप्त होंगी । अतः ट्रैक्टेटस में वह मानता है कि भाषा का सार-रूप विश्लेषण के द्वारा ज्ञात हो सकता है । इन्वेस्टीगेशंस में भी वह सारस्रूप का विरोध नहीं करता, किन्तु यहाँ सारस्रूप की अवधारणा परिवर्तित हो जाती है । ट्रैक्टेटस में साररूप को समझने की विधि प्रतिज्ञप्तियों का सरल प्रतिज्ञप्तियों में विश्लेषण है, किन्तु इन्वेस्टीगेशंस में प्रतिज्ञप्तियों के वास्तविक सन्दर्भों पर ध्यान देना है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि अपने दार्शनिक चिन्तन की सभी अवस्थाओं में विटगेंस्टाइन का उद्देश्य साधारण भाषा का ही अन्वेषण करना था ।

ट्रैक्टेटस में वर्णनात्मक भाषा पर ही विचार किया गया है । संभवतः इसका कारण यह था कि उस समय विटगेंस्टाइन प्रतिज्ञप्तियों पर ही विचार कर रहा थाक्योंकि गणित और तर्कशास्त्र में प्रतिज्ञप्तियाँ ही महत्वपूर्ण हैं । प्रतिज्ञप्तियों के सन्दर्भ में ही अर्थ का निरूपण किया गया है । विटगेंस्टाइन के अनुसार भाषा सरल प्रतिज्ञप्तियों से निर्मित है । प्रतिज्ञप्ति या तो सरल है या मिश्र । मिश्र प्रतिज्ञप्तियाँ सरल प्रतिज्ञप्तियों से ही बनी हैं । इनका विश्लेषण सरल प्रतिज्ञप्तियों में किया जा सकता है ।

सरल प्रतिज्ञप्तियाँ हैं क्या ? उनकी विशेषतायें क्या हैं ? सरल प्रतिज्ञप्ति ही सार्थकता की इकाई है । सरल प्रतिज्ञप्तियों की समग्रता ही भाषा है । ब्रिटिश अनुभववाद में अर्थ की इकाई पदों को माना गया था, किन्तु विटगेंस्टाइन ने पदों को नहीं प्रतिज्ञप्तियों को अर्थ की इकाई माना । सरल प्रतिज्ञप्तियाँ वे प्रतिज्ञप्तियाँ हैं जिनका विश्लेषण और अधिक सरल प्रतिज्ञप्तियों में नहीं हो सकता । इसका अर्थ यह नहीं है कि सरल प्रतिज्ञप्तियाँ पूर्णतः सरल एवं अविश्लेष्य हैं । सरल प्रतिज्ञप्ति नामों का सहसंयोजन है । नाम अपरिभाषेय, अविश्लेष्य पद है । साधारण भाषा में जिन पदों को नाम माना जाता है विटगेंस्टाइन के अनुसार उन्हें नाम नहीं कहा जा सकता । केवल वही पद नाम है

जिसका अर्थ सरल वस्तु है । नाम सरल वस्तुओं के प्रतीक हैं । किन्तु नाम का स्वतंत्र रूप में अर्थ संभव नहीं है । केवल प्रतिज्ञप्तियों के सन्दर्भ में ही नाम का अर्थ संभव है । इससे स्पष्ट है कि सरल प्रतिज्ञप्ति नामों का क्रमबद्ध संयोजन है, केवल नामों का संकलन या समूह नहींइस कारणसरल प्रतिज्ञप्ति भी तथ्य है । केवल तथ्य ही सार्थक हो सकता है ।

विटगैन्स्टाइन के अनुसार सरल प्रतिज्ञप्ति का अर्थ वस्तु-स्थिति है । यह कहने के बजाय कि अमुक प्रतिज्ञप्ति का अमुक अर्थ है हम कह सकते हैं कि इस प्रतिज्ञप्ति का अर्थ अमुक वस्तु-स्थिति है । प्रत्येक सरल प्रतिज्ञप्ति एक वस्तुस्थिति का प्रक्षेपण है और यही इसका अर्थ है । जिस प्रतिज्ञप्ति के अनुरूप कोई वस्तु स्थिति नहीं है वह निरर्थक है । इसीलिए तत्वमीमांसा निरर्थक है । यदि वस्तुस्थिति वास्तविक है तो प्रतिज्ञप्ति सत्य है,अन्यथा असत्य । इस प्रकार विटगैन्स्टाइन संवादिता सिद्धान्त का समर्थक है । फ्रेगे ने निर्देश और अर्थ में अन्तर किया था । उसके अनुसार नाम तथा प्रतिज्ञप्ति दोनों में निर्देश और अर्थ दोनों होता है किन्तु विटगैन्स्टाइन का मत है कि केवल नाम में निर्देश और केवल प्रतिज्ञप्ति में अर्थ होता है । नाम में अर्थ और प्रतिज्ञप्ति में निर्देश नहीं होता । विटगैन्स्टाइन का यह सिद्धान्त अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुआ है ।

ट्रैक्टेटस में सरल प्रतिज्ञप्तियों को परस्पर स्वतंत्र माना गया है । सरल प्रतिज्ञप्ति का लक्षण ही है वह प्रतिज्ञप्ति जिसका अन्य प्रतिज्ञप्तियों से विरोध न हो । • सामान्यत: विरोध दो प्रकार का होता है : व्याघात और वैपरीत्य । विटगैन्स्टाइन ने ट्रैक्टेटस में माना था कि दो सरल तर्कवाक्यों में व्याघात और वैपरीत्य दोनों नहीं हो सकते । किन्तु स्पष्ट है कि इस मत को स्वीकार करना संभव नहीं है,और बाद में विटगैन्स्टाइन ने स्वयं इसमें संशोधन किया ।

ट्रैक्टेटस में सबसे अधिक महत्व चित्र सिद्धान्त का है । सरल प्रतिज्ञप्ति किस प्रकार सार्थक होती है । किस प्रकार हम इनका अर्थ समझने में सफल होते हैं । क्यों असत्य कथनों का अर्थ भी समझलिया जाता है । या किस प्रकार कथनों के

सत्यता-मूल्य का ज्ञान न होने पर भी इनके अर्थ का ज्ञान संभव होता है ? विटगेंस्टाइन का मत है कि कथन या प्रतिज्ञप्ति तथ्य का चित्र है । जिस प्रकार चित्र से चित्रित स्थिति का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार प्रतिज्ञप्ति से अर्थ का ज्ञान होता है क्योंकि प्रतिज्ञप्ति भी एक प्रकार का चित्र है । विटगेंस्टाइन ने साधारण अर्थ- फोटोग्राफ, पेंटिंग - में चित्र शब्द का प्रयोग नहीं किया है । अतः अनेक आलोचकों ने, जिन्होंने माना है कि वाक्य या प्रतिज्ञप्ति तथा तथ्य में समानता नहीं है, चित्र सिद्धान्त को समझने में भूल की है । विटगेंस्टाइन के लिये बाह्य समानता का नहीं बल्कि आन्तरिक या तार्किक समानता का महत्व होता है । तार्किक समानता साधारण चित्रों के लिये भी आवश्यक है । इसीलिये वह मानता है कि यद्यपि प्रत्येक चित्र दैशिक नहीं होता, किन्तु प्रत्येक चित्र तार्किक चित्र भी है । विटगेंस्टाइन के अनुसार तार्किक चित्र के लिये तार्किक आकार की समरूपता अनिवार्य है । प्रतिज्ञप्ति के लिये आवश्यक है कि उसमें नामों की संख्या वही हो जो तथ्य में वस्तुओं की संख्या है, नामों का वही सम्बन्ध-क्रम हो जो तथ्य में वस्तुओं का क्रम है,और नाम तथा वस्तु में एक निश्चित अर्थात्मक सम्बन्ध हो । इन तीन शर्तों के पूरा होने पर ही प्रतिज्ञप्ति तथ्य का चित्र होती है । इसी अर्थ में ग्रामोफोन रिकार्ड किसी गति का चित्र होता है,और इसी अर्थ में विचार सत्ता का चित्र होता है. यद्यपि इनमें से किसी में फोटोग्राफ के समान ऊपरी साम्य नहीं होता । जैसा मैरिल और जाको हीनटिका [1] ने दिखाया है वस्तु का आकार ही तथ्यों के तार्किक आकार का निर्धारण करता है । वस्तु में सभी संभावित तथ्यों के सम्बन्ध की संभावना निहित रहती है । नाम वस्तु का प्रतिनिधि है, अतः नाम का आकार भी वस्तु से ही निर्धारित होता है ।

इस सन्दर्भ में एक प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है : सरल प्रतिज्ञप्तियाँ हैं क्या ? क्या इन्हें निरीक्षण वाक्य माना जा सकता है ? आरंभ में अनेक व्याख्याकारों ने इन्हें निरीक्षण वाक्यों के रूप में ही समझा था । रसेल के तार्किक अणुवाद से इस व्याख्या में सहायता मिली थी क्योंकि रसेल के अनुसार

इन्द्रिय प्रदत्त सरल वस्तु था और इन्हीं का संयोजन तथ्य। तार्किक भाववाद के प्रभाव ने इस व्याख्या को बल दिया और विटगेंस्टाइन के सिद्धान्त तार्किक भाववाद के आधार पर समझे गये । किन्तु आंसकोम्ब, पियर, ग्रिफिन, कोपी आदि ने इस व्याख्या का खण्डन किया । इनके अनुसार वस्तु सरल और विशेष है । विशेषों का क्रमबद्ध संघात ही तथ्य है । यही कारण है कि विटगेंस्टाइन ने ट्रैक्टेटस में वस्तु, तथ्य, नाम और सरल प्रतिज्ञप्ति का कोई उदाहरण नहीं दिया है । तथ्यों और सरल प्रतिज्ञप्तियों की स्वतंत्रता भी इसी मत का समर्थन करती है । सरल प्रतिज्ञप्तियाँ निरीक्षण कथन नहीं हैं और अणुतथ्य अनुभव की स्थिति नहीं है । किन्तु डेविड कीट तथा मेरिल और जाको हीनटिका ने फिर से वस्तुओं को अनुभवात्मक प्रदत्त सिद्ध करने का प्रयास किया है । इसके लिये हीनटिका ने ट्रैक्टेटस के पूववर्ती एवं परवर्ती रचनाओं की सहायता ली है । किन्तु इन रचनाओं में वस्तु का स्वरूप स्पष्ट नहीं है और ट्रैक्टेटस से इस व्याख्या का समर्थन नहीं होता । सरल प्रतिज्ञप्तियों की विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि सरल कथन निरीक्षण कथन नहीं है ।

ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन सम्पूर्ण भाषा को सत्यता-फलनात्मक मानता है । जिन कथनों को रसेल ने सत्यताफलन नहीं माना था वे भी ट्रैक्टेटस में सत्यता फलनात्मक मान लिये गये हैं । रसेल ने सामान्य कथनों की व्याख्या के लिये सामान्य तथ्यों को स्वीकार कर लिया था, किन्तु विटगेंस्टाइन इन्हें भी सत्यता फलन मानता है । केवल इन कथनों की भाषिक अभिव्यक्ति साधारण सत्यता फलनों से भिन्न होती है । वास्तव में सर्वव्यापी कथन सरल कथनों के संयोजन हैं और अंशव्यापी कथन सरल कथनों के वियोजन हैं । निषेधात्मक कथन तदनुरूप भावात्मक कथन का सत्यता फलन है । और अभिप्रायात्मक कथनों का तार्किक आकार उनके व्याकरणात्मक आकारों से भिन्न होता है । स्पष्ट है कि सम्पूर्ण भाषा का सत्यताफलनात्मक स्वरूप भी सरल कथनों की निरीक्षणात्मकता के अनुकूल नहीं हैं ।

ट्रैक्टेटस में कथनों का विभाजन तीन प्रकारों में किया गया है- सार्थक, अर्थहीन और निरर्थक । तथ्यात्मक कथन सार्थक कथन हैं । जिन कथनों के द्वारा वास्तविक या संभावित वस्तुस्थितियों का चित्रण होता है वे सार्थक हैं । प्राकृतिक विज्ञानों के कथन इसी प्रकार के कथन हैं । तर्कशास्त्र एवं गणित के कथन इस अर्थ में सार्थक नहीं हैं क्योंकि इनका उद्देश्य किसी वस्तुस्थिति का चित्रण नहीं है । विटगैंस्टाइन इन्हें क्रमशः पुनरूक्ति और समीकरण मानता है । ये वास्तव में कथन नहीं हैं । इनके द्वारा किसी तथ्य की अभिव्यक्ति नहीं होती । ये कथन सभी परिस्थितियों में सत्य हैं । दूसरे शब्दों में इन कथनों का सत्यतामूल्य सभी विकल्पों के लिये सत्य होता है । रसेल के अनुसार ऐसे कथनों का पुनरूक्ति स्वरूप निगमनात्मक विधि से सिद्ध होता है, किन्तु विटगैंस्टाइन के अनुसार सत्यता सारिणी द्वारा ऐसे कथनों के तार्किक स्वरूप को व्यक्त किया जा सकता है । इसके लिये निगमनात्मक तन्त्र या निगमनात्मक विधि की आवश्यकता नहीं है । जो कथन न तो तथ्यों के चित्र हैं, न पुनरूक्ति या व्याघात, वे निरर्थक हैं । तत्वमीमांसा के कथन इसी प्रकार के कथन हैं ।

सार्थकता के विश्लेषण में ट्रैक्टेटस के अन्तर्गत एक और महत्वपूर्ण सिद्धान्त का निरूपण किया गया है । विटगैंस्टाइन ने कथन (Saying) और अभिव्यक्ति (Showing) में अन्तर किया है । केवल तथ्यों का कथन सम्भव है । किन्तु वस्तु, तथ्य, नाम, प्रतिज्ञप्ति, आकार आदि का कथन संभव नहीं है । सार्थक प्रतिज्ञप्तियों एवं पुनरूक्तियों द्वारा इन्हें व्यक्त किया जा सकता है । जिसका कथन नहीं हो सकता उसे दिखाया या व्यक्त किया जा सकता है । इसीलिये ट्रैक्टेटस के वाक्यों को विटगैंस्टाइन निरर्थक मानता है ।

इस सन्दर्भ में एक और महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्राप्त होता है । रसेल ने भाषाओं की श्रेणीबद्धता को स्वीकार किया था जिसके अनुसार एक भाषा की रचना को उससे भिन्न दूसरी भाषा में स्पष्ट किया जा सकता है । किन्तु विटगैंस्टाइन इस सुझाव का समर्थन नहीं करता । उसका उद्देश्य किसी भाषा की रचना का स्पष्टीकरण नहीं है बल्कि भाषा मात्र की रचना का स्पष्टीकरण है । सार्थकता की शर्तें सभी भाषाओं की शर्तें हैं चाहे वह साधारण भाषा हो या

कृत्रिम भाषा । इसीलिये ट्रैक्टेटस में कृत्रिम या आदर्श भाषा का उद्देश्य साधारण भाषा का प्रतिस्थापन नहीं है जैसा कि रसेल ने माना था । विटगेंस्टाइन के अनुसार आदर्श भाषा के वाक्य साधारण भाषा के विश्लेषण से प्राप्त वाक्य हैं । उनका उद्देश्य साधारण भाषा के तार्किक आकार को स्पष्ट करना है । कुछ आलोचकों का मत है कि केवल कृत्रिम भाषा में ही सरल वाक्य संभव हैं, केवल कृत्रिम भाषा के वाक्य ही तथ्य के चित्र हो सकते हैं । साधारण भाषा के वाक्य नहीं । किन्तु यह व्याख्या सत्य नहीं हैं । साधारण भाषा के वाक्यों का विश्लेषण सरल प्रतिज्ञप्तियों में समाप्त होता है । चूँकि विश्लेषण से प्राप्त प्रतिज्ञप्तियाँ चित्र हैं अतः साधारण भाषा के वाक्य भी चित्र हैं । केवल उनका चित्रात्मक स्वरूप स्पष्ट नहीं रहता । इससे सिद्ध होता है कि विटगेंस्टाइन भाषा मात्र की सार्थकता का प्रश्न उठाता है, किसी विशेष भाषा की सार्थकता का नहीं । औरभाषा का तार्किक आकार केवल भाषा द्वारा व्यक्त हो सकता है । उसका कथन नहीं किया जा सकता । अतः मेरिल और जाको हीनटिका[2] का विचार सत्य है कि विटगेंस्टाइन अर्थविज्ञान (Semantics) को अकथनीय मानता है । और यह अवधारणा ट्रैक्टेटस से लेकर परवर्ती रचनाओं में भी निहित है ।

किन्तु स्वयं विटगेंस्टाइन ने बाद में इन अवधारणाओं का खण्डन किया । संक्रमणकालीन रचनाओं में ही ट्रैक्टेटस की अवधारणाओं का निषेध दिखाई पड़ता है, किन्तु इन रचनाओं में विटगेंस्टाइन का कोई एक निश्चित मत नहीं मिलता । ब्ल्यू एण्ड ब्राउन बुक्स में भाषा-खेल के संप्रत्यय का प्रयोग भाषा के सरल प्रयोगों के रूप में किया गया है । फिलासाफिकल ग्रामर और फिलासाफिकल रेमार्क्स में भाषा की विविधता नियम, प्रयोग , उद्देश्य, समझ, सत्यापन आदि के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया गया है । ज़ेटिल[3] में ये विचार अधिक व्यवस्थित हैं । किन्तु इनकी निश्चित व्याख्या फिलासाफिकल इन्वेस्टीगेशन्स में मिलती है । हमारा विश्लेषण मुख्यतः इसी पुस्तक पर आधारित है ।

सर्वप्रथम अर्थ से सम्बन्धित अवधारणाओं का उल्लेख आवश्यक है । ट्रैक्टेटस में निरूपित सिद्धान्तों का सशक्त खण्डन किया गया है । नाम या किसी पद

का अर्थ वस्तु नहीं है । वस्तु केवल नाम का धारक है । "अ" का अर्थ अ व्यक्ति नहीं हो सकता क्योंकि व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् भी "अ" का सार्थक प्रयोग होता है । इसी प्रकार "ईंट" का अर्थ ईंट नहीं है अन्यथा जो कथन ईंट के विषय में किये जा सकते हैं उनका प्रयोग ईंट के अर्थ के विषय में भी होना चाहिये । उदाहरण के लिये हम कहते हैं कि ईंट का टुकड़ा लाओ, पर यह नहीं कहा जा सकता कि "ईंट" के अर्थ का टुकड़ा लाओ । विटगेंस्टाइन नाम और सरल वस्तु पर विचार नहीं करता बल्कि सामान्य मान्यताओं का खण्डन करता है जिनके अनुसार "पेड़" का अर्थ पेड़, "मेज" का अर्थ मेज या "फीडो" का अर्थ फीडो है । राइल ने इसी सिद्धान्त को "फीडो -- फीडो" सिद्धान्त माना है और इसका खण्डन किया है । इसी क्रम में विटगेंस्टाइन ने अर्थ की मानसिक अवधारणाओं का भी खण्डन किया है । ट्रैक्टेटस के अनुसार शब्द और निर्दिष्ट वस्तु का सम्बन्ध मानसिक विचार पर निर्भर है । पद अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखता । प्रतिज्ञप्ति या वाक्य में प्रयोग किये जाने पर ही यह सार्थक होता है । किन्तु केवल वाक्य में प्रयोग किया जाना पर्याप्त नहीं है । हम "अ" को अ से सम्बन्धित करते हैं । तभी "अ" का अर्थ अ होता है । किन्तु अब उसकी मान्यता में परिवर्तन हो जाता है । "अ" का अ से सम्बन्ध प्रयोग, सन्दर्भ एवं रूढ़ियों से निर्धारित होता है मानसिक प्रयासों से नहीं । इसे स्पष्ट करने के लिये विटगेंस्टाइन विचार और भाषा के सम्बन्ध का विश्लेषण करता है । विचार औरभाषा एक दूसरे से पृथक् नहीं है । इसीलिए वह कहता है कि हम बिना शब्दों का प्रयोग किये विचार नहीं कर सकते । क्या हम सोच सकते हैं कि पानी बरस रहा है किन्तु इन शब्दों का ध्यान हमारे मन में न आये ? विटगेंस्टाइन के अनुसार यह संभव नहीं है । इसी प्रकार यह संभव नहीं है कि हम कहें "यह गर्म है " और हमारा तात्पर्य हो कि यह ठंडा है । इसीलिए विटगेंस्टाइन मानसिक अवस्थाओं के लिये भी मानता है कि आन्तरिक अवस्थाओं के लिये बाह्य मानदण्डों की आवश्यकता रहती है ।

चित्र सिद्धान्त का भी परवर्ती रचनाओं में खण्डन हो जाता है । चित्र के सम्बन्ध में दो प्रकार की प्रतिक्रियायें व्यक्त की गयी हैं । प्रथम के अनुसार बाद में

चित्र सिद्धान्त का पूर्णतः निषेध हो गया है, दूसरी के अनुसार केवल चित्र की अवधारणा में अन्तर आ गया है । पर इतना निर्विवाद है कि अर्थ की व्याख्या में चित्र का उपयोग उस रूप में नहीं किया गया है जैसा ट्रैक्टेटस में किया गया था । इस परिवर्तन की व्याख्या भी दो प्रकार से की जाती है । पिचर, ग्रिफिन[4] आदि का मत है कि सरल वस्तुओं के खण्डन के साथ अणु प्रतिज्ञप्तियों का खण्डन हो जाता है और अणु प्रतिज्ञप्तियों के साथ चित्र सिद्धान्त भी समाप्त हो जाता है । किन्तु बोगेन[5] का मत है कि सरल वस्तु की अवधारणा चित्र सिद्धान्त के लिये की गयी थी । हमारा मत है कि ट्रैक्टेटस में चित्र-सिद्धान्त तथा अणु तथ्य एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं । वास्तविक स्थिति जो भी हो पर विटगेंस्टाइन ने सरल वस्तु तथा सरल कथन दोनों का खण्डन किया है । फिलासाफिकल इन्वेस्टीगेशंस में वह सिद्ध करता है कि कोई वस्तु अपने आप में न सरल है न संश्लिष्ट । एक ही वस्तु विभिन्न सन्दर्भों में उद्देश्य के अनुसार सरल या संश्लिष्ट मानी जाती है । उदाहरण के लिये अनेक मेजों के समूह में गणना की दृष्टि से प्रत्येक मेज एक सरल वस्तु है, किन्तु दूसरे सन्दर्भ में मेज की रचना का स्पष्टीकरण करने के लिये उसे संश्लिष्ट माना जायगा तथा उसका विभाजन उसके पायों तथा पटरों में किया जायगा । चित्र सिद्धान्त पर विचार करते समय हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि वस्तु की अवधारणा न तो इन्द्रिय प्रदत्तों के रूप में संभव है, न विशेषों के रूप में । वास्तव में यह अवधारणा ही अनुपयुक्त थी और इसके अनुरूप वास्तविकता में कोई वस्तुसंभव नहीं है । सरल वस्तुओं के अभाव में, उनके संघात के रूप में, अणु तथ्य भी नहीं हो सकते । अतः चित्र सिद्धान्त का तात्त्विक आधार समाप्त हो जाता है ।

केवल सरल वस्तु से सम्बन्धित समस्या ही एक मात्र समस्या नहीं है । सरल वाक्यों का सिद्धान्त भी भाषा के सम्बन्ध में प्रागनुभविक अवधारणाओं का परिणाम है । नाम या सरल प्रतिज्ञप्तियों की सत्ता भाषा के वास्तविक विश्लेषण का परिणाम नहीं है । ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन का मत था कि अर्थ तभी संभव है जब वह निश्चित और स्पष्ट हो । किन्तु निश्चित और स्पष्ट अर्थ तभी संभव है जब वाक्य का प्रत्येक घटक एक निश्चित अर्थ वाला हो । इसके लिये नाम और

सरल वस्तु का होना आवश्यक है । नामों का संयोजन ही सरल वाक्य है । सरल वाक्यों में ही निश्चित और स्पष्ट अर्थ हो सकता है । अतः ट्रैक्टेटस में विटगैंस्टाइन कहता है कि सरल वाक्यों का होना आवश्यक है विश्लेषण की प्रक्रिया कितनी ही जटिल क्यों न हो । किन्तु परवर्ती रचनाओं में वह स्पष्ट करता है कि अर्थ की निश्चितता का कोई निरपेक्ष और सार्वभौम मानदण्ड नहीं है । यदि श्रोता वाक्य का अर्थ समझ लेता है तो वाक्य पूर्णतः निश्चित माना जायगा । उसके अनुसार "निश्चित" और "अनिश्चित" का अर्थ विभिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न है । उदाहरण के लिये हाथ-घड़ी अपने उद्देश्यों के लिये निश्चित समय बताती है किन्तु उससे प्रकाश की गति की माप संभव नहीं है । इस आधार पर यह कहना उपयुक्त नहीं है कि हाथ-घड़ी निश्चित समय नहीं बताती । हाथ-घड़ी का उद्देश्य प्रकाश की गति का माप नहीं है । इसी प्रकार यदि वाक्य का प्रयोग अपने उद्देश्य में सफल है तो उसके सरल वाक्यों में विश्लेषण की आवश्यकता नहीं रहती । स्पष्टता और निश्चित अर्थ की अवधारणा में अन्तर आ जाने के कारण सरल प्रतिज्ञप्तियों की आवश्यकता नहीं रह जाती । सरल प्रतिज्ञप्तियाँ उस रूप में संभव भी नहीं हैं जिसमें ट्रैक्टेटस में इनकी अवधारणा की गयी थी । अतः चित्र सिद्धान्त अपने मूल रूप में अर्थ की व्याख्या नहीं कर सकता । जैसा आंस्कोम्ब[6] ने स्पष्ट किया है चित्र सिद्धान्त और सत्यताफलन का सिद्धान्त एक ही भाषा सिद्धान्त के दो पक्ष हैं । चित्र सिद्धान्त के खण्डन से सत्यता फलन का सिद्धान्त भी समाप्त हो जाता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रतिज्ञप्तिमूलक तर्कशास्त्र में सत्यताफलन अवैध हो जाता है । इसका तात्पर्य केवल इतना है कि सम्पूर्ण साधारण भाषा को सत्यताफलनात्मक नहीं माना जा सकता ।

सरल प्रतिज्ञप्तियों की अनुपयुक्तता से यह मान्यता भी ध्वस्त हो जाती है कि भाषा का कार्य केवल तथ्यों का वर्णन करना है । बहुत पहले बर्कले ने इस त्रुटि की ओर संकेत किया था । विटगैंस्टाइन ने परवर्ती सभी रचनाओं में भाषा के कार्यों की विविधता पर विस्तार से विचार किया है । शब्दों और वाक्यों के अनेकों कार्य हैं और उनकी कोई निश्चित सीमा नहीं है । स्वयं वर्णन का विविध

सन्दर्भों में एक निश्चित रूप नहीं है । स्थिति का वर्णन करना, दृश्य का वर्णन करना, चेहरे के भावों का वर्णन करना, अनुभूति या संवेग का वर्णन करना एक निश्चित आदर्श के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते । वास्तव में ट्रैक्टेटस में विटगेंस्टाइन ने प्रागनुभविक रूप से भाषा की अन्तर्निहित अवस्थाओं का विवेचन किया था और उसका आधार गणित और तर्कशास्त्र की प्रतिज्ञप्तियाँ थीं । जैसा वह बाद में कहता है एक पूर्वकल्पित चित्र ने बुद्धि को भ्रमित कर दिया था । भाषा को समझने के लिये उसके वास्तविक सन्दर्भों पर ध्यान देना आवश्यक है ।

चित्र सिद्धान्त के पश्चात् विटगेंस्टाइन के दर्शन में अर्थ की अवधारणा में परिवर्तन एवं विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है । आरम्भ में उसने माना था कि प्रक्षेपण के नियमों के अनुसार वाक्यों का प्रयोग ही कथन है । ट्रैक्टेटस में प्रक्षेपण का अर्थ था तार्किक रूप से स्वतंत्र प्रतिज्ञप्तियों और उनकी सत्यता और असत्यता की शर्तों की रचना करना । किन्तु 1929 में "Remarks on Logical form " में उसने माना कि सरल प्रतिज्ञप्तियों के लिये एक दूसरे से स्वतंत्र होना आवश्यक नहीं है । किन्तु यहाँ भी उसकी मान्यता है कि वाक्यों की रचना प्रक्षेपण के रूप में होती है और वाक्य का प्रक्षेपणात्मक प्रयोग भाषा के सिन्टैक्टिक और सिमैंटिक नियमों से पूर्णतः निर्धारित रहता है । 1930 में उसने प्रक्षेपण के नियमों को व्याकरणात्मक के नियम का नाम दिया और अब उसका मत था कि कथन का अर्थ भाषा में उसके स्थान से निर्धारित होता है । स्थान का निर्धारण व्याकरणात्मक नियमों से होता है । फि०इ० {81} में वह कहता है कि उसने सोचा था कि कथन का प्रयोग और उसकी समझ आकलन के समान निश्चित नियमों के अनुसार होता है ।[7] यह कथन ट्रैक्टेटस तथा संक्रमणकालीन रचनाओं के लिये सत्य है । आकलन के अनुसार निश्चित नियमों को विटगेंस्टाइन ने इसलिये स्वीकार किया था जिससे अर्थ की कारणात्मक व्याख्या का खण्डन किया जा सके । उसके अनुसार रसेल ने कारणात्मक सिद्धान्त माना था । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी कथन का अर्थ उसका कारणात्मक प्रभाव है और अर्थ की समझ उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया है । विटगेंस्टाइन के अनुसार यद्यपि कथन का कारणात्मक प्रभाव हो सकता है, किन्तु कारणात्मक प्रभाव अर्थ का निर्धारण

नहीं कर सकता । उसके अनुसार अर्थ का निर्धारण नियमों द्वारा होता है और अर्थ की समझ नियमों का सफल प्रयोग है । फि. इ. {498} में वह एक निरर्थक वाक्य का उदाहरण देकर बताता है कि इसका श्रोता पर प्रभाव पड़ता है और यह प्रभाव वक्ता का अभिप्राय भी है[8] किन्तु इन बातों के आधार पर वाक्य सार्थक नहीं हो जाता । नियम के आधार पर विटगेंस्टाइन केवल कारणात्मक सिद्धान्त का ही नहीं बल्कि मानसिक सिद्धान्तों का भी विरोध करता है । एक सिद्धान्त के अनुसार किसी शब्द का प्रयोग जिस वस्तु के लिये किया जाता है उसकी मानसिक प्रतिमा ही शब्द को सार्थक बनाती है । विटगेंस्टाइन के अनुसार यदि "किंग्स कालेज" का प्रयोग करते समय हमारे मन में किंग्स कालेजकी प्रतिमा आती है तो इसके समान अनेकों भवन हो सकते हैं । इससे अर्थ का निर्धारण नहीं होता ।[9] प्रतिमा का वही स्थान है जो किसी वस्तु या रेखा चित्र या पेंटिंग का । प्रतिमा के लिये भी इसके प्रयोग के नियमों को जानना आवश्यक है, किन्तु नियमों को जान लेने पर प्रतिमा की आवश्यकता नहीं रह जाती । विटगेंस्टाइन उन सिद्धान्तों का भी खण्डन करता है जिनके अनुसार अर्थ या समझ एक मानसिक क्रिया है । इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मानसिक क्रियाओं का खण्डन करता है । वह केवल इस मान्यता का खण्डन करता है कि किसी शब्द या वाक्य का प्रयोग करते समय इसके साथ साथ एक चेतन मानसिक क्रिया घटित होती रहती है और यही क्रिया इसे सार्थक बनाती है । उसका मत था कि प्रक्षेपण के नियम ही अर्थ का निर्धारण करते हैं न कि प्रतिमा या मानसिक क्रिया । किन्तु फि. इ. में विटगेंस्टाइन ने इस मत को त्याग दिया । अब उस की मान्यता है कि शब्दों और वाक्यों के प्रयोग के लिए नियम आवश्यक हैं किन्तु ये नियम आकलन के नियमों के समान निश्चित नहीं होते । फि. इ. में विटगेंस्टाइन कहता है कि हम एक पूर्व निर्धारित चित्र के अनुसार मान लेते हैं कि निश्चित नियमों का होना आवश्यक है । ब्ल्यू एण्ड ब्राउन बुक्स में भी वह कहता है कि जो व्यक्ति दार्शनिक उलझन में पड़ा है उसे शब्द के प्रयोग में नियम दिखाई पड़ता है ।[10] खेल का उदाहरण देते हुये वह कहता है कि खेल सदैव निश्चित नियमों से नियंत्रित नहीं होता । किसी विशेष उद्देश्य के लिये निश्चित नियमों की अवधारणा की जा सकती है किन्तु साधारण भाषा सदैव नियमबद्ध नहीं होती । मुख्य

कारण यह है कि " नियम का पालन " स्वयं स्पष्ट नहीं है और नियम का पालन भी अभ्यास की अपेक्षा रखता है । यह संभव है कि हम नियम को न समझें या गलत समझें । अतः नियम अपने आप में किसी महत्व का नहीं है । नियमों का महत्व इस तथ्य पर निर्भर है कि इनका प्रयोग किया जाता है और नियम का प्रयोग भी गलत या सही हो सकता है । नियम प्रयोग और अभ्यास पर निर्भर है । इसीलिए विटगैंन्स्टाइन " नियम के अनुकूल होने " में और " नियम के अनुसार" होने में अन्तर करता है ।[11] कोई भी कार्य नियमानुकूल है यदि उसमें नियम में निहित एक क्रम दिखाई पड़ता है, किन्तु जब मनुष्य नियम के द्वारा अपनी क्रियाओं का निर्धारण करते हैं तो इन क्रियाओं को नियमानुसार क्रिया कहा जाता है । किसी भाषाई क्रिया के नियमानुसार होने का अर्थ है कि वक्ता नियम का प्रयोग उन सभी स्थितियों में कर सकते हैं जो इसके अन्तर्गत आती हैं, वे यह बता सकते हैं कौन सी स्थितियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं कौन नहीं, और जानते हैं कि नियम के सही प्रयोग का क्या अर्थ है । आकलन सिद्धान्त की कठिनाई यह है कि कोई नियम अपने आप में नहीं बता सकता कि इसका सही प्रयोग क्या है और गलत प्रयोग क्या है । दूसरे शब्दों में स्वयं नियम वैध और अवैध प्रयोगों में अन्तर नहीं कर सकता।[12] नियम मार्ग-संकेत के समान है और मार्ग-संकेत अपने आप में यह नहीं बता सकता कि इसका अर्थ क्या है । इससे स्पष्ट है कि अर्थ का निर्धारण नियम से नहीं , प्रयोग से होता है । नियम की मान्यता भी प्रयोग पर निर्भर है । विटगैंन्स्टाइन के अनुसार भाषा की समझ उसके प्रयोग पर निर्भर है । हमें यह नहीं पूँछना चाहिये कि शब्द का अर्थ क्या है, बल्कि यह पूँछना चाहिए कि उसका प्रयोग कैसे होता है । प्रयोग की व्याख्या ही अर्थ की व्याख्या है । "अधिकतर स्थितियों, पर सभी के लिए नहीं ; जिनमें " अर्थ " का प्रयोग किया जाता है, शब्द का अर्थ उसका भाषा में प्रयोग है ।"[13]

विभिन्न अवस्थाओं में विटगैंन्स्टाइन ने अर्थ के सम्बन्ध में विभिन्न नारों का प्रयोग किया था : वाक्य तथ्य का चित्र है, वाक्य का अर्थ सत्यापन की विधि

है, और वाक्य का अर्थ उसका प्रयोग है । प्रयोग का स्पष्टीकरण करने के लिये कभी वह शब्दों और वाक्यों की तुलना उपकरणों से करता है, कभी व्याख्या का प्रश्न उठाता है । किन्तु सब से अधिक महत्व भाषा-खेल का है । ब्ल्यू एण्ड ब्राउन बुक्स[14] में वह भाषा-खेल की अवधारणा शब्दों के आदिम या सरल प्रयोगों के रूप में करता है । ट्रैक्टेटस में भी प्रयोग का प्रयोग किया गया है, किन्तु वहाँ प्रयोग का अर्थ था वाक्यों का चित्र के रूप में प्रयोग और शब्दों का वाक्य के अवयव के रूप में प्रयोग तथा चित्र और तथ्य के अवयवों का सम्बन्ध । किन्तु अब विटगेंस्टाइन मानता है कि भाषा और सत्ता का सम्बन्ध इस विधि से निर्धारित नहीं होता । अतः वह प्रयोग की अवधारणा वास्तविक सन्दर्भों में प्रयोग के रूप में करता है । भाषा का स्वरूप समझने के लिये जटिल प्रयोगों की अपेक्षा सरल स्थितियों पर ध्यान देना चाहिये । ये स्थितियाँ वास्तविक या काल्पनिक हो सकती हैं । इनकी सहायता से शब्दों और वाक्यों का अर्थ सरलता से स्पष्ट हो जाता है । किन्तु बाद में विटगेंस्टाइन भाषा-खेल का प्रयोग भाषा की सभी स्थितियों के लिये करता है । खेल से भाषा की तुलना का आधार दोनों की महत्वपूर्ण समानतायें हैं । दोनों में नियमों का प्रयोग होता है, किन्तु दोनों में ही , सभी स्थितियों में ; पूर्ण नियमबद्धता आवश्यक नहीं है । दोनों के लिये उद्देश्यों का सदैव बाह्य होना आवश्यक नहीं है ।[15] दोनों में केवल पारिवारिक साम्य का होना आवश्यक है, किसी एक विशेषता का सामान्य होना नहीं । दोनों का सम्बन्ध जीवन की क्रियाओं या जीवन-विधाओं से है । इसीलिये वह कहता है कि शब्दों और क्रियाओं का सम्मिलित रूप भाषा-खेल है[16]। किन्तु विशेष उद्देश्यों के लिये शुद्ध भाषा-खेलों की रचना भी संभव है ; जिनका क्रियाओं से सम्बन्ध न हो । दार्शनिक निरर्थकता की उत्पत्ति उन स्थितियों में नहीं होती जिनमें भाषा का प्रयोग भाषा-खेलों से बाहर किया जाता है बल्कि उन स्थितियों में होती है जिनमें किसी शब्द का प्रयोग उन भाषा-खेलों में किया जाता है जिनमें वे उपयुक्त नहीं हैं । किन्तु विटगेंस्टाइन यह स्पष्ट नहीं करता कि किस प्रकार विभिन्न भाषा-खेलों में अन्तर किया जाय । राइल[17] के कोटि दोष के समान भाषा खेल की सीमाओं में स्पष्ट अन्तर नहीं किया गया है । विटगेंस्टाइन केवल सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करता है और उदाहरणों द्वारा भाषा-खेलों का स्पष्टीकरण

करता है । बोगेन[18] के अनुसार न तो सम्पूर्ण भाषा एक भाषा-खेल है, न इसे अनेक भाषा-खेलों का समूह कहा जा सकता है । हमारे विचार से दोनों बातें सत्य हैं, किन्तु संभवतः विटगेंस्टाइन का उद्देश्य इन रूपों में भाषा-खेल का प्रयोग करना नहीं था । उसका तात्पर्य था कि अर्थ का स्पष्टीकरण करने के लिये सन्दर्भों, उद्देश्यों तथा क्रियाओं का महत्व है । इन्हीं का सम्मिलित रूप भाषा-खेल है । मुख्य बात है भाषा के किसी प्रयोग का जीवन-विधा के सन्दर्भ में अध्ययन । इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण आवश्यक है । विटगेंस्टाइन ने वाक्-कार्यों का सिद्धान्त नहीं दिया है जैसा कि हम आस्टिन, ग्राइस और सर्ल की रचनाओं में पाते हैं । किन्तु सामान्य अवधारणा उसी प्रकार की है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा के लिये जीवन-विधा, उद्देश्य, और नियमों का विशेष महत्व है । इसे स्पष्ट करने के लिये विटगेंस्टाइन व्यक्तिगत भाषा की समस्या उठाता है । इस समस्या को उठाने का उद्देश्य बुद्धिवादी एवं अनुभव वादी दर्शनों में समान रूप से मान्य इस अवधारणा का खण्डन करना है कि वैयक्तिक अनुभवों की भाषा में शब्द और अनुभव का सम्बन्ध केवल ज्ञाता द्वारा अपने अनुभव के आधार पर स्थापित होता है और उसके लिये सन्दर्भ, व्यवहार और नियम की आवश्यकता नहीं रहती । विटगेंस्टाइन स्पष्ट करता है कि इस रूप में व्यक्तिगत भाषा संभव नहीं हैं । इन दार्शनिकों के अनुसार मानसिक अनुभवों के सन्दर्भ में शब्द और अनुभव का सम्बन्ध व्यक्तिगत प्रक्रिया द्वारा, निर्देशात्मक परिभाषा के आधार पर, स्थापित किया जाता है । किन्तु विटगेंस्टाइन मानता है कि इस प्रक्रिया से शब्द का अर्थ निर्धारित नहीं होता । नाम देने के लिये भी एक विशेष पृष्ठभूमि आवश्यक है और इस पृष्ठभूमि का सम्बन्ध भाषा के जटिल प्रयोगों की अपेक्षा रखता है । व्यक्तिगत परिभाषा में सही-गलत, उपयुक्त-अनुपयुक्त में अन्तर नहीं किया जा सकता । जो हमें सही लगता है वही सही है । अतः वह मानता है कि आन्तरिक प्रक्रिया के लिये बाह्य मानदण्ड आवश्यक हैं । ये मानदण्ड या लक्षण केवल चिन्ह (सिम्पटम) नहीं हैं । उदाहरण के लिये "दर्द" शब्द का मानदण्ड उपयुक्त सन्दर्भ में दर्द का व्यवहार है । व्यवहार तार्किक रूप से दर्द का उपयुक्त

लक्षण है । इसी आधार पर हम दर्द शब्द का अर्थ सीखते हैं तथा इसका प्रयोग दूसरों के लिये करते हैं । अतः दार्शनिक संशयवाद निरर्थक है ।

इस सन्दर्भ में क्रिपके[19] की व्याख्या विशेष महत्वपूर्ण है । उसके अनुसार व्यक्तिगत भाषा की समस्या नियमों के स्पष्टीकरण से ही आरंभ हो जाती है, सेक्शन 243 से नहीं 202 से ही । व्यक्तिगत भाषा का खण्डन नियमों के व्यक्तिगत प्रयोग के खण्डन से ही हो जाता है । क्रिपके का मत है कि विटगेंस्टाइन की समस्या संशयवादी समस्या है और उसका समाधान संशयवादी समाधान है । क्रिपके के अनुसार संशयवाद का विटगेंस्टाइन द्वारा प्रस्तुत रूप सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूप है और इसे उसका सबसे बड़ा योगदान माना जा सकता है । इसका उद्देश्य केवल व्यक्तिगत भाषा नहीं बल्कि सभी भाषायें हैं । और इस सन्दर्भ में क्रिपके ने विटगेंस्टाइन की तुलना क्वाइन तथा नेल्सन गुड मैन से किया है । अनुवाद की अनिश्चितता और गू-विरोधाभास विटगेंस्टाइन की समस्या के समान हैं ।

क्रिपके के अनुसार विटगेंस्टाइन सिद्ध करता है कि मन में या बाहर ऐसा कोई तथ्य नहीं है जिसके द्वारा निश्चित किया जा सके कि किसी नियम का एक और केवल एक अर्थ है । हम पहले ही देख चुके हैं कि स्वयं नियम अपनी व्याख्या नहीं करता, नियम से स्पष्ट नहीं होता कि उसका प्रयोग किस अर्थ में होगा । नियम का अर्थ प्रयोग से स्पष्ट होता है । क्रिपके [20] के अनुसार विटगेंस्टाइन का समाधान ह्यूम के समान संशयवादी समाधान है । वह संशय का खण्डन नहीं करता, बल्कि संशय को स्वीकार करते हुये समाधान देता है । क्रिपके की मान्यता है कि विटगेंस्टाइन प्रथा तथा व्यक्तियों की सहमति के आधार पर नियम का निर्धारण संभव मानता है जैसे ह्यूम प्रथा तथा आदत के आधार पर कारणता और आगमन की व्याख्या करता है । एक नियम का औचित्य दूसरे नियम से हो सकता है, किन्तु कहीं न कहीं नियमों का अन्त आवश्यक है । इस स्थिति में नियम का औचित्य नियम या अन्य तथ्य से निगमनात्मक रूप से नहीं हो सकता, अभ्यास और प्रथा के द्वारा ही औचित्य की व्याख्या हो सकती है[21]। किन्तु क्रिपके ने

प्रथा तथा सहमति पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है तथा नियमों के लिये इनकी प्रासंगिकता की पूर्णतः उपयुक्त व्याख्या नहीं किया है । बेकर एवं हैकर[22] के अनुसार सहमति की अपेक्षा अभ्यास का अधिक महत्व है । नियम का पालन और सहमति समानार्थक नहीं हैं । यह संभव है कि कोई व्यक्ति नियम का पालन कर रहा हो किन्तु कोई उससे सहमत न हो । विटगैंस्टाइन का तात्पर्य यह है कि हमारे व्यवहार और विचार में कहीं न कहीं सहमति अवश्य होनी चाहिये तभी हम नियमों के प्रयोग की बात कर सकते हैं । यदि हमारा सीखना, हमारी आदतें और प्रथायें, हमारी प्रतिक्रियायें समान न होतीं तो हम किसी नियमबद्धता की अवधारणा नहीं कर सकते । जिन व्यक्तियों की जीवन विधा हम से भिन्न है उनके लिये हमारे नियमों का अर्थ भी भिन्न होगा । जीवन विधा ही भाषा की सार्थकता का अन्तिम आधार है । नियम का महत्व इसी सन्दर्भ में संभव है ।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विटगैंस्टाइन ने प्रयोग के सम्बन्ध में कोई सुव्यवस्थित सिद्धान्त नहीं दिया है । वह कुछ प्रचलित सिद्धान्तों का खण्डन करता है । अतः उसका विवेचन अधिसिद्धान्त (मेटाथ्योरी) के समान है । यह निष्कर्ष उसकी इस धारणा के अनुकूल है कि भाषा के तार्किक आकारों का विवेचन संभव नहीं है । भाषा की मूल मान्यतायें तथा प्रागपेक्षायें अकथनीय हैं तथा इनकी पृष्ठभूमि में ही भाषायी विवेचन संभव है । आन सर्टेनिटी (618) में वह स्पष्ट रूप से कहता है[23] कि भाषा-खेल दिखाता है कि उसका आधार क्या है, उसे कहता नहीं । इस प्रकार जीवन-विधा तथा उससे सम्बन्धित स्थितियाँ एवं विश्वास भाषा की सार्थकता का आधार हैं । इनका सैद्धान्तिक विवेचन संभव नहीं है क्योंकि यही सभी सैद्धान्तिक विवेचनों की पृष्ठभूमि है ।

Notes and References

1. Hintikka, M.B. & Hintikka, Jaakko , Investigating Wittgenstein,Basil Blackwell,1986.

2. Ibid

3. Wittgenstein ,L. Zettel,(eds) Anscombe,G.E.M. & Von Wright,G.H., Trans.Anscombe,G.E.M., Blackwell Oxford,1967.

4. Griffin, J. "Wittgenstein's Logical Atomism" Oxford,Clerenden Press,1964.

5. Bogen,J. "Wittgenstein's Philosophy of Language" Pitzer College,Claremont, California, Routledge & Kegen Paul, New York, Humanities Press,1972.

6. Anscombe,G.E.M. "An Introduction to Wittgenstein's Tractatus; Hutchinson University Library,London, 1959,editor Paton,H.J.

7. Wittgenstein,L. PI Sect.81

8. Ibid Sect. 498

9. Wittgenstein,L. Blue & Brown Books,p.39

10. Ibid P.27

11. Wittgenstein,L. Blue & Brown Books, P.13 & PI Sect. 54,82

12. Wittgenstein,L. PI Sec.85

13. Ibid Sect.43

14. Wittgenstein,L. Blue & Brown Books.

15. Wittgenstein,L. PI Sect.(184-320)

16. Ibid 'Sect.23

17. Ryle,G "Ordinary Language" PR 1953, reprinted in Ordinary Language,ed. by Chppell V.C.

18. Bogen,J. Wittgenstein's Philosophy of Language"

19. Kripke, Saul A. "Wittgenstein on rules and private Language, Oxford, Basil Blackwell, 1982, reprinted 1985.

20. Ibid " " "

21. Wittgenstein,L. PI Sect.202, 206, 211 & 217.

22. Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. Wittgenstein meaning and understanding Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell,1980 reprinted 1984.

23. Wittgenstein,L. On certainty (618)

सहायक ग्रन्थ-सूची

(Bibliography)

Anscombe, G.E.M. — An Introduction to Wittgenstein's Tractatus; Hutchinson University Library, London, 1959, editor H.J.Paton.

" " — "Mr. Copi, on Objects, Properties and Relations in the Tractatus" M.1959.

Ayer, A.J. — "Can there by a private language ?" PASS 1954.

" " — Language, Truth and Logic, 1936, 2nd ed., 1946.

" " — The revolution in Philosophy (ed.) 1956.

Ambrose, A. — Review of PI, P.P.R., 1954.

" " — "The Problem of Linguistic Inadequacy", reprinted in Philosophical Analysis, edited by Max black, 1963.

Albritton, R. — "On Wittgenstein's use of the term 'Criterian'", J.P., 1959.

Austin, J.L. — Philosophical Papers, edited by J.O. Urmson and G.J.Warnock, 1961.

" " — How to Dothings with words, edited by J.O.Urmson, 1962.

" " — Sense and sensibilia, edited by G.J.Warnock, 1962.

Allaire, E.B. "Tractatus", 6.3751, A, 1959.

Aldrich, V.C. "Pictorial Meaning, Picture thinking and Wittgensteins's theory of Aspects", M. 1958.

Alston, W.P. Philosophy of Language, Englewood Cliffs, N.J. Prentice Hall, Inc., 1964.

Black, M. A companion to Wittgenstein's Tractatus, Ithica, Cornell University Press, 1964.

" " Language and Philosophy, Ithica, Cornell University Press, 1949.

" " Some Problems connected with Language, PAS, 1938-39.

Bogen, J. Wittgenstein's Philosophy of Language, Pitzer College, Claremont, California, Routledge & Kegan Paul, New York, Humanities Press, 1972.

Baker, G.P. & Hacker, P.M.S. Wittgenstein Meaning and Understanding, Essays on the Philosophical Investigations, Basil Blackwell, 1980, Reprinted 1984.

Bernstein, R.J. "Wittgenstein's three languages" R.M., 1961,

Bambrough, R. "Universals and family Resemblances, PAS, 1960-61.

Bouwsma, O.K. "The Blue Book" J.P., 1961.

Berlin, I. "Empirical Propositions and Hypothetical Statements", M. 1950.

Bloomfield, L. "Language", London, George Allen & Unwin Ltd., 1935.

Copi, I.M. & Beard, R.W. "Essays on Wittgenstein's Tractatus" London, Routledge and Kegan Paul Ltd., 1966.

Copi, I.M. "Tractatus" 5.542, A. 1957-58.

" " Review of E.Stenius's Wittgensteins's Tractatus, PR., 1963.

Carney, J.D. "Private Language, The Logic of Wittgenstein's Argument", M. 1960.

Cavell, S. "The availability of Wittgenstein's later Philosophy", P.R., 1962.

Chadwick, J.A. "Logical Constants", M., 1927.

Cook, J.W. Wittgenstein on Privacy, P.R., 1965.

Chihara, C.S. & Fodor, J.A. "Operationalism and Ordinary Language" A Critique of Wittgenstein A.P.Q. 1965.

Chappell, V.C. (ed.) Ordinary Language, 1964.

Chisholm, R. "Review of Anscombe's Intention" P.R.1959.

Daitz, E. "The Picture theory of Meaning", M.1953.

Dimond, C. (ed.) Wittgenstein's Lectures on the foundations of Mathematics, Cambridge, 1939, Harvester Press, Sussex, 1976.

Donagan, A. Wittgenstein on sensation, reprinted in Wittgenstein, The Philosophical Investigations, ed. by G.Pitcher, 1966.

Dwivedi, D.N. A Study of Wittgenstein's Philosophy, 1977.

Edwards, Paul Editor in Chief ; The Encyclopedia of Philosophy; Volume - 1,2,3,4,7 & 8. Macmillan Publishing Co., Inc. & The Free Press, New York, Collier Macmillan Publishers, London.

Evans, E. "Tractatus, 3.1432", M.1955.

Evans, J.L. "On Meaning & Verification", M. 1953.

Feyerabend, P.R. "Wittgenstein's Philosophical Investigations" P.R., 1955.

Flew, A.G.M. (ed.) "Logic and Language" I series, 1953, II series 1961.

Findley, J.N. Language , Mind and Value, 1963.

" " Meinong's Theory of Objects; Oxford University Press, 1933.

Frege, G. Translations from the Philosophical writings of Gottlob Frege, ed. by P.Geach and M.Black, Basil Blackwell, Oxford, 1952.

" " Negation, Philosophical writings, ed. Geach and Blackwell, 1952.

Flew, A. A Dictionary of Philosophy, Pan Books, 1979.

Griffin, J. "Wittgenstein's Logical Atomism" Oxford, Clerenden Press, 1964.

Gellner, E. Words and things.

Garver, N. "Wittgenstein on Private Language" P.P.R., 1959-60.

Gasking, D.A.T. & Jackson, A.C. "Ludwig Wittgenstein" Memorial notice, A.J.P., 1951.

Ganguly, S.N. "Wittgenstein's Tractatus" Vishwa Bharti Shanti Niketan West Bengal, India, 1968.

Guinness, B.M. (ed.) Wittgenstein and the Vienna Circle, Basil Blackwell, 1979, reprinted, 1983.

Gupta, S. "A Critique of Wittgenstein" Intellectual PublishingHouse, New Delhi, 1986.

Hartnack, J. Wittgenstein and Modern Philosophy, Methuen & Co. Ltd., II, New Fetterlane, London, 1965.

Hintikka, M.B. and Hintikka, Jaakko — Investigating Wittgenstein, Basil Blackwell, 1986.

Hintikka J. — "On Wittgenstein's Solipsism" M.1958.

Harvey, H. — "The Problem of Model Language-game in Wittgenstein's Philosophy", P.1961.

Hertz, H. — The Principles of Mechanics, Trans. D.E.Jones and J.T. Walley, 1894-1899.

Heller, E. — "Ludwig Wittgenstein" Encounter, 1959.

Hampshire, S.N. — "The Interpretation of Language", British Philosophy in the mid-century, ed. by C.A.Mace, 1957.

Heath, P.L. — "The appeal to ordinary language" reprinted in Clarity is not enough, ed. by H.D.Lewis.1963

Harper and Brothers — "The Blue and Brown Books, 1958.

Jarvin, J. — "Professor Stenius on the Tractatus" J.P., 1961.

Katz, J.J. — The Philosophy of Language, London, 1966.

Keyt, D. — "A New interpretation of the Tractatus Examined", P.R. 1965.

Khatchadourian, H. — "Common names and family resemblances, P.P.R., 1957-58.

Keyt, D. "Wittgenstein's Picture Theory of Language" reprinted in Essays in Wittgenstein's Tractatus, ed. by Copi and Beard.

Kenny, A. "Cartesian Privacy" reprinted in Wittgenstein - The Philosophical Investigations, Edited by G.Pitcher, 1966.

" " The Legacy of Wittgenstein, Oxford, Basil Blackwell, 1984.

Kripke, Saul A. "Wittgenstein on Rules and Private Language" Oxford, Basil Blackwell, 1982, reprinted 1985.

Lagune, T.D. Review of Tractatus, P.R., 1924.

Linsky, L. "Wittgenstein on Language and some problems of Philosophy" J.P. 1957.

Malcolm, N. Ludwig Wittgenstein, A Memoir, Oxford University Press, London, 1958.

" " Knowledge of Other Minds, J.P., 1958.

" " "Moore and Ordinary Language" reprinted in Ordinary Language, ed. by V.C.Chappell.

Maslow, A. A Study in Wittgenstein's Tractatus, Berkley and Los Angeles, University of California Press, 1961.

Moore, G.E. — Philosophical Papers, London, George Allen & Unwin, 1959.

" " — Wittgenstein's Lectures in 1930-33, M. 1954-55, reprinted in Philosophical Papers.

Mcguinness, B.F. — "Pictures and form in Wittgenstein's Tractatus" A.F., 1956.

Mishra, K.P. — Wittgenstein, 1978, Bhubaneswar, Orissa, India.

Ogden, C.K. and Richards, I.A. — The Meaning of Meaning, London, Kegen Paul, Trench Trubner, New York, Harcourt Brace, 1923, 6th ed. 1953.

O, Connor, O.J. — "Philosophy and ordinary Language" J.P. 1961.

Pandey, R.P. — Tark avam Darshan Ka Vivechan, Rajasthan Hindi granth Academy, 1971.

Passmore, J. — Wittgenstein's Article on some remarks on Logical form, Volume 9, 1929.

" " — A hundred years of Philosophy, London, Gerald Duckworth and Co.Ltd., 1957.

Pole, D. — The Later Philosophy of Wittgenstein, London, The Athaone Press, University of London, 1958.

Paul, G.A. — "Is there a problem about sensdata ?" PASS, 1936, reprinted in Logic and Language I, ed. by A.Flew.

Pitcher, G. — The Philosophy of Wittgenstein, Princeton University, Prentice hall of India, Private Limited, New Delhi, 1972.

" " — Wittgenstein, The Philosophical Investigations, Macmillan, London, 1966.

Pears, D.F. and Mcguinness B.F.(Trans.) — Tractatus Logico Philosophicus, Routledge and Kegan Paul, 1961.

Ramsey, F.P. — The Foundations of Mathematics and other Logical Essays, London, Routledge and Kegan Paul, 1931.

" " — "Critical Notice of the Tractatus" M, 1923, reprinted in his foundations of Mathematics.

Rhees, R. — (ed.) The Blue and Brown Books, Blackwell, 1958.

" " — (ed.) Philosophische Bermerkungen, Blackwell, 1965.

" " — The discussions of Wittgenstein, Routledge and Kegan Paul, London, 1970.

" " — (ed.) Philosophical Grammar, Trans. A.J.P.Kenny, Blackwell Oxford 1974.

Russell, B. The Philosophy of Logical atomism, Monist Article, 1918-19, reprinted in logic and Language, ed. R.C.Marsh.

" " Introduction to Tractatus Logico Philosophicus.

" " Introduction to Mathematical Philosophy.

" " The Principles of Mathematics, London, Cambridge University Press, 1903, 2nd ed., 1937.

" " Analysis of mind, London, George Allen and Unwin, 1921.

" " "Ludwig Wittgenstein" M. 1951.

Ryle, G. "Ludwig Wittgenstein" A. 1951-52.

" " "Ordinary Language" P.R., 1953, reprinted in Ordinary Language, ed. by V.C.Chappell.

Stenius, E. Wittgenstein's Tractatus; A Critical exposition of its main lines of thought, Oxford, Blackwell, 1960.

" " Wittgenstein's Picture Theory, A reply to Mr. H.R.G.Schwyzer, I., 1963.

Saxena, Lakshmi (ed.) Samkalin Paschatya Darshan

Schwyzer, H.R.G. — "Wittgenstein's Picture theory of Language" I. 1962, reprinted in I.M. Copi and R.Beards, ed. Routledge and Kegan Paul, 1966.

Staten, H. — Wittgenstein and Derrida, Basil Blackwell, 1985.

Stegmuller, W. — Main Currents in Contemporary German, British and American Philosophy, Published by Alfred Krener Stuttgart, 1969 (4th Edition).

Strawson, P.F. — "On Referring" M. 1950.
"Review of Wittgenstein's Philosophical Investigations" M. 1954.

" " — An Introduction to Logical Theory, London, 1952.

" " — "Critical Notice of P.I." M. 1954.

Sellars, W. — "Naming & Saying" PSC, 1962.

Shwayder, D.S. — "On the picture theory of Language", Excerpts from a review, M. 1963.

" " — Critical Notice

Thomson, J.J. — "Professor Stenius on the Tractatus", J.P. 1961.

Urmson, J.O. — Philosophical Analysis, Oxford Clarenden Press, 1956.

Veinberg, J.R. "Are there ultimate simples in Essays in Wittgenstein's Tractatus, ed. by I.M.Copi and R.Beard.

Von Wright, G.H. Wittgenstein, Basil Blackwell, Oxford, 1982.

Von Wright, G.H., Rhees, R. and Anscombe, G.E.M. (eds.) Remarks on the foundations of Mathematics, Trans. by G.E.M.Anscombe, Blackwell, 1956.

Van Peursen, C.A. Ludwig Wittgenstein, An Introduction to his Philosophy, Trans. by Ambler Rex, Faber and Faber, London, 1969.

Warnock, G.J. English Philosophy since 1900, London, Oxford University Press, 1958.

"Verification and the use of Language", 1951

"Every event has a cause" in logic and language II, ed. by A.Flew.

Williams, B. and Montefire, A. (eds.) British Analytic Philosophy, London, 1967.

Wisdom, J. Logical Constructions, Vol. 2, M. 1931-33.

"Ludwig Wittgenstein" M. 1952

"A Feature of Wittgenstein's Technique", PASS, 1961.

Wellman, C. "Wittgenstein and the Egocentric Predicament", M. 1959.

"Wittgenstein's Conception of a Criterian", P.R., 1962.

Winch, P. Studies in the Philosophy of Wittgenstein, Routledge and Kegan Paul, London, 1969.

Waismann, F. The Princples of Linguistic Philosophy, ed. R.Harre, Macmillan and St.Martin's Press, London and New York, 1965.

Wittgenstein, L. The Blue and Brown Books, Oxford, Basil Blackwell, 1958.

Note books 1914-16, Edited by G.H.Von Wright and G.E.M.Anscombe, with an English Translation by G.E.M.Anscombe, Oxford, Basil Blackwell, 1961.

Philosophical Investigations, ed. G.E.M.Anscombe and R.Rhees, Trans. by G.E.M.Anscombe, Oxford, Basil Blackwell, 1953, 2nd edition, 1958.

Remarks on the foundations of Mathematics, ed. by G.H.Von Wright, R.Rhees and G.E.M. Anscombe, Trans. by G.E.M. Anscombe, Oxford, Basil Blackwell, 1956.

Notes on Logic, J.P. 1957.

Wittgenstein, L. Tractatus Logico Philosophicus, Trans. by D.F.Pears and B.F.Mcguinness, London Routledge and Kegan Paul, New York, The Humanities Press, 1961.

On Certainty, eds. G.E.M. Anscombe and G.H.Von Wright, Trans. by D.Paul and G.E.M.Anscombe, Blackwell, 1969.

Zettel eds. G.E.M.Anscombe and G.H.Von Wright, Trans. G.E.M.Anscombe, Blackwell, Oxford, 1967.

Philosophical Investigations, eds. G.E.M.Anscombe and R.Rhees. Trans. by G.E.M.Anscombe, Blackwell, 1953.